मुगल–मराठा सम्बन्ध

पी-एच० डी० (इतिहास) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

१९९३

निर्देशक :
डा० राजीव द्विवेदी
इतिहास विभाग

शोधकर्त्री
श्रीमती आशा राय

इतिहास विभाग
मानविकी संकाय
काशी विद्यापीठ,
वाराणसी-2

काशी विद्यापीठ, वाराणसी
Kashi Vidyapith Varanasi

डॉ राजीव द्विवेदी
प्राध्यापक, इतिहास विभाग
संयोजक, अभिरुचि कार्य-केन्द्र
सहायक विनयाधिकारी
कम्पनी कमांडर 1/97,
उ० प्र० बटालियन, एन० सी० सी०

Dr. Rajiva Dwivedi
Lecturer, Deptt. of History
Co-Ordinator, Hobby Centre
Assistant Proctor
Coy. Commander 1/97, U.P. Bn. N.C.C.

आवासः
बी. २७/९३ (मुड़कट्टा बाबा)
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-२२१०१०
दूरभाषः ३११११९९

Resi:
B-27/93 Murkatta Baba
Durgakund Road, Varanasi-221 010
☎ 311199

दिनांक/Date 30/12/93

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती आशा राय, शोध-छात्रा, इतिहास विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी ने मुगल - मराठा सम्बन्ध विषय पर मेरे निर्देशन में अपना यह मौलिक शोधकार्य पूर्ण किया है ।

(डा० राजीव द्विवेदी)
निर्देशक

विषय सूची

प्राक्कथन

उत्तर मुगल कालीन भारतीय इतिहास में मुगल-मराठा सम्बन्धों का विशेष महत्व है । उत्तरी भारत की विजय पूर्ण करने के बाद अकबर के समय से ही मुगल सम्राट दक्षिण भारत की ओर अपने साम्राज्य का विस्तर करने में लगे थे। दूसरी ओर सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से मराठे भी, शिवाजी के नेतृत्व में, दक्षिण भारत की एक शक्ति बन कर उभर रहे थे । इस प्रकार मुगलों के साथ मराठों के राजनीतिक सम्बन्ध बनने की सभी सम्भावनाएं पैदा हो गई थीं, किन्तु इन सम्बन्धों में आपसी प्रतिस्पर्धा के महत्वपूर्ण युग का प्रारम्भ शाइस्ता खाँ के दक्षिण में मुगल सूबेदार बनने के साथ होता है । यही प्रतिस्पर्धा थोड़े बहुत अन्तर से किसी न किसी रूप में पानीपत के तृतीय युद्ध तक बनी रही । मुगलों और मराठों के आपसी सम्बन्धों ने न केवल अन्य समकालीन राजनीतिक शक्तियों को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया अपितु आने वाले भारतीय इतिहास पर भी एक अमिट छाप छोड़ी । विषय की रोचकता एवं इसके महत्व ने ही मुझे इस विषय पर शोध करने की प्रेरणा प्रदान की ।

सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित करके 17वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य अपनी शक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था । उसके विस्तार के लिए अब दक्षिण का क्षेत्र ही बचा था । शाहजहाँ के काल तक खानदेश और अहमदनगर मुगल साम्राज्य में विलीन हो चुके थे । अत: औरंगजेब का लक्ष्य दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा को जितना था । इन्हीं राज्यों में मराठे भी अपनी शक्ति के स्रोत एवं विस्तार के अवसर खोज रहे थे । ऐसी स्थिति में मुगलों के साथ उनके स्वार्थों का टकराना अवश्यम्भावी था । मुगलों के साथ मराठों का राजनीतिक सम्बन्ध जहाँगीर के समय से स्थापित हो चुका था और अनेक मराठा सरदार मुगल सेवा में रह चुके थे । किन्तु शिवाजी का लक्ष्य बिखरी मराठा शक्ति को संगठित करके एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना था न कि एक मुगल मनसबदार बनना । अत: शिवाजी के समय में मुगलों के साथ टकराव की घटनाएं

बढ़ती चली गयीं ।

औरंगजेब एक कट्टर, कूटनीतिज्ञ और दृढनिश्चयी सम्राट था । दक्षिण से उसे विशेष लगाव था । उसने अपने जीवन व बादशाहत का लगभग आधा समय दक्षिण में रहकर वहाँ की समस्याओं से जूझते हुए बिताया था, यहाँ तक कि उत्तर भारत में रहते हुए भी उसका ध्यान दक्षिण से कभी हटा नहीं था । इतना समझदार बादशाह जिस समस्या को सुलझाने में बराबर लगा रहा हो और वही समस्या उसके जीवन की सबसे बड़ी असफलता साबित हो तो उसे मात्र संयोग मानकर टाला नहीं जा सकता । मराठा नीति में औरंगजेब की असफलता का कारण उसके उद्यमों में कमी उतनी नहीं थी जितना कि शिवाजी की चतुरता एवं दृढ़निश्चय उसके लिए उत्तरदायी था । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आरम्भ में औरंगजेब की दक्षिण नीति का लक्ष्य केवल गोलकुण्डा व बीजापुर के शिया राज्य ही थे किन्तु आखिरी दिनों में उसकी एक मात्र समस्या मराठे ही थे ।

उपर्युक्त के परिपेक्ष्य में मुगल-मराठा सम्बन्धों को देखने से यह ज्ञात होता है कि औरंगजेब आरम्भ में मराठा समस्या को ठीक से समझ नहीं सका था, और बाद में उसे सुलझाने की कोई निश्चित नीति नहीं निर्धारित कर सका इसीलिए इस दिशा में उसके किए गए प्रयास दिशाहीन और तदर्थ साबित हुए । औरंगजेब मराठा समस्या को सुलझाने के लिए एक प्रकार से मुगल साम्राज्य के समस्त स्रोतों को झोंककर, अनेक विषम परिस्थितियों में वहाँ रहकर, अपने अनेकानेक वर्षों का बहुमूल्य समय दक्षिण में व्यय कर रहा था जबकि मराठे इस संघर्ष को सहज भाव से इसे अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रश्न व कर्तव्य मान कर कर रहे थे । युद्धप्रिय मराठों की दृष्टि में मातृभूमि के लिए संघर्ष करना उनका एक महान लक्ष्य था । इस प्रकार संघर्ष तो दोनो कर रहे थे किन्तु मराठो का मनोबल मुगलों से कहीं ऊपर था और इसी क्षेत्र में मुगल उनसे मात खाते थे ।

मराठो के साथ औरंगजेब का यह संघर्ष 1707 में उसकी मृत्यु तक चलता रहा । औरंगजेब के बाद मुगल साम्राज्य की परिस्थितिया तेजी के साथ बदली और बाद के मुगल सम्राटों ने इसे व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न भी नहीं बनाया । अत: दक्षिण में वे मराठो का प्रतिरोध उस स्तर तक करने की स्थिति में नहीं थे, जिस स्तर तक औरंगजेब कर रहा था किन्तु जहाँ तक मराठों का प्रश्न है -

उन्हें इस काल तक सतत संघर्ष की आदत पड़ चुकी थी । औरंगजेब जैसे बादशाह से लड़ चुकने के बाद उसके कमजोर उत्तराधिकारियों से निश्चय ही मराठों को कोई भय नहीं था । इस समय दक्षिण भारत में भी कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो मराठों के प्रभाव के लिए बाधा साबित होती । ऐसी स्थिति में मराठों का उत्तर की ओर बढ़ना और मुगलों से संघर्ष करना इतिहास का एक तर्क संगत कदम था । वैसे भी राजनीतिक सम्बन्धों में स्थिरता (स्टेगनेशन) जैसी कोई स्थिति नहीं होती है, या तो उत्थान होता है या पतन । अठारहवीं शताब्दी में मुगल मराठा सम्बन्धों की स्थिति यह रही कि मराठों का उत्थान हो रहा था और मुगलों का पतन ।

मराठों के समस्त क्रिया-कलाप और उपलब्धियां मुगल सीमा के अन्तर्गत हो रही थी । किन्तु इस समय तक मुगल साम्राज्य इतना अशक्त हो गया था कि वह मराठों का प्रतिरोध भी नहीं कर पा रहा था । उसका यह दायित्व कभी अवध के नवाब, कभी रूहेले तो कभी जाट उठा रहे थे । यदि मराठे इन परिस्थितियों का विवेकपूर्ण लाभ उठा पाते तो इतिहास शायद कुछ और होता, किन्तु पेशवाओं के काल से मराठों ने अपनी युद्धशैली बदल दी थी जिससे उनके सैनिक व्यय बहुत बढ़ गये और उनकी युद्ध लड़ने के नैसर्गिक प्रतिभा में भी कमी आई थी। दूसरे मराठों ने सबसे बड़ी भूल यह की कि उन्होंने उत्तर भारत की राजनीतिक शक्तियों (जाट, राजपूत, सिक्ख, रूहेले आदि) अथवा जनता, किसी के साथ सौहार्द और विवेकपूर्ण सम्बन्ध नहीं रखे ।

सम्पूर्ण भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना की इच्छा रखने वाले मराठों के हिन्दू, जाटों और राजपूतों के साथ तक तनावपूर्ण सम्बन्ध थे । उन्होंने अपने साथ सदैव मित्रता की आकांक्षा रखने वाले जाटों तक के साथ द्वेष, दुराग्रह और उपेक्षा का सम्बन्ध रख कर उनकी सहानुभूति खो दी थी । इसीलिए जब

1761 में मराठों का अफगानों के साथ पानीपत के मैदान में संघर्ष हुआ तो मराठे अपने विदेशी शत्रुओं की तुलना में भी कम स्थानीय सहयोग और सहानुभूति के साथ लड़ रहे थे। उनके लिए धन ही नहीं, अन्न-जल भी मिलपाना भी एक समस्या हो गयी थी। परिणामस्वरूप उनकी भयंकर हार हुई और इसी के साथ उत्तर भारत की शक्ति के रूप में उनका वर्चस्व सदैव के लिए समाप्त हो गया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ही मुगल मराठा सम्बन्धों को देखने का प्रयास इस शोध-प्रबन्ध में किया गया है। उत्तर मुगल काल के अनेक उत्तर भारतीय एवं मराठी विद्वानों ने मराठों तथा मुगलों के सम्बन्ध में बहुत सी मूल्यवान कृतियों की रचना की है और इस विषय को प्रकाशमान किया है। इस प्रकार इसकाल के इतिहास पर लिखी गई पुस्तकों की संख्या कम नहीं है किन्तु मेरा उद्देश्य केवल आलोच्य काल के इतिहास का वर्णन करना मात्र नहीं है बल्कि मैंने अपने अध्ययन को लगभग एक शताब्दी के मुगल मराठा सम्बन्धों तक सीमित रखा है ताकी मैं इस गूढ़ विषय पर अधिकाधिक प्रकाश डाल सकूं। इस विषय पर हिन्दी भाषा की पुस्तकों का पर्याप्त अभाव रहा है। मेरा प्रयास है कि मैं उस कमी को भी पूरा कर सकूं। अपने शोध-प्रबन्ध को प्रामाणिक बनाने के लिए मैंने उपलब्ध अधिकाधिक मूल एवं आधुनिक फारसी, मराठी, उर्दू, एवं हिन्दी स्रोतों का उपयोग किया है। इसी से विषय का तुलनात्मक अध्ययन मेरे लिए सम्भव हो सका है।

अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को सात अध्यायों विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में मराठों का उत्कर्ष और स्थानीय भौगोलिक स्थिति का विवेचन है। द्वितीय अध्याय में औरंगजेब के कालतक मुगल मराठा सम्बन्ध एवं मुगल सम्राटों की मराठों के प्रतिनीति की समीक्षा है। तृतीय अध्याय

में मराठा राज्य का पुनर्गठन और मुगल दरबार की आन्तरिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है । चौथा अध्याय पेशवाओं के काल में मराठा शक्ति का विवेचन किया गया है । पांचवें अध्याय में मराठा रुहेला एवं मराठा जाट सम्बन्ध विवेचित है । इसी प्रकार छठवें अध्याय में मराठों के राजपूतों और बुन्देलों के साथ सम्बन्ध तथा सातवें अध्याय में 1761 में पानीपत के युद्ध में मराठों की हार की परिस्थितियों का विवेचन किया गया है ।

इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा मुझे अपने गुरूवर तथा निर्देशक डा0 राजीव द्विवेदी से प्राप्त हुई है । मुझे यह कहने में रंचमात्र भी संकोच नहीं है कि मेरे इस प्रयास में यदि कुछ बन पड़ा है तो उसका सम्पूर्ण श्रेय डा0 द्विवेदी को है और त्रुटियों का सम्पूर्ण दायित्व मेरा है । उन्होंने अथक प्रयास करके इस कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने में मेरा सहयोग किया है ।

मैं इतिहास के विभागाध्यक्ष प्रो0 महेन्द्र प्रताप सिंह की विशेष रूप से आभारी हूँ । उन्होंने आवश्यकतानुसार बराबर मेरा सहयोग किया है इसके इतिरिक्त मैं विभाग के वरिष्ट गुरुजनों डा0 बी0 डी0 मिश्रा, डा0 शैलेन्द्र पाथरी, डा0 परमानन्द, डा0 महेश विक्रम सिंह, डा0 राघवेन्द्र पाथरी आदि की भी आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मार्ग दर्शन करके मुझे प्रेरित किया है ।

मैं उन सभी ग्रन्थकारों, विचारकों एवं मनीषियों की आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थो और विचारों का उपयोग मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया है । मैं काशी विद्यापीठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पब्लिक लाइब्रेरी इलाहाबाद, लखनऊ विश्वविद्यालय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के ग्रंथालयों की आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अपेक्षित ग्रंथों को अध्ययन के निमित्त सुलभ कराया है ।

आशा राय
(आशा राय)

28 दिसम्बर 1993

भूमिका -

मुगल - मराठा सम्बन्ध

मुगल - मराठा सम्बन्ध

भूमिका -

18वीं शताब्दी भारतीय इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण काल है । मराठों की शक्ति का चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर पतनोन्मुख होना विशाल शक्तिशाली और वैभव सम्पन्न मुगल साम्राज्य का पतन, जाटों एवं सिक्खों का उत्कर्ष तथा अंग्रेजों का भारत की भूमि पर कब्जे की नीयत से पैर फैलाना आदि इस काल की वे प्रमुख घटनाएँ हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास की धारा को ही मोड़ दिया था । जहाँतक प्रश्न मुगल-मराठा सम्बन्धों का है, मुगल सम्राट औरंगजेब से लेकर 1761 में पानीपत के तृतीय संग्राम तक का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है । औरंगजेब की नीतियों ने मुगल वंश के भावी विनाश की आधारशिला रख दी थी, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि जीवन के अन्तिम काल तक जूझते हुए उसने मुगल साम्राज्य विरोधी शक्तियों से दृढ़ता पूर्वक बड़े धैर्य के साथ लोहा लिया और कम से कम वह स्वयं असफल नहीं रहा । परन्तु उसके उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की स्थिति बनाए रखने में सफल नहीं रहे । मुगल दरबार वजीर पद के लिए आन्तरिक षड्यन्त्रों का केन्द्र बन गया । सम्राटों को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि ये लोग अकबर, शाहजहाँ और औरंगजेब के वंशज हैं । दूसरी ओर थी शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा शक्ति जो मूलत: थी तो दक्षिण की परन्तु जिसकी महात्वाकांक्षा सम्पूर्ण भारत पर अपना राज्य स्थापित करने की थी । मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख होने का लाभ वैसे तो राजपूतों, सिक्खों, अफगानों और जाटों ने भी उठाया पर मराठों ने तो एक प्रकार से उस शक्ति शून्यता को ही भरने का प्रयास किया जो मुगलों के पतन से भारत में पैदा हुई थी ।

मुगलों का मराठों के साथ सम्बन्ध नया नहीं था । मराठों की शक्ति 17वीं शताब्दी में निरन्तर बढ़ती रही । अकबर के दक्षिण अभियान के बाद

दक्षिण रियासतों के शासक और मुगल सम्राट दोनों के लिए मराठा सरदारों की मैत्री और उनके फौजी दस्तों का प्रयोग महत्वपूर्ण हो गया । मलिक अम्बर की मराठा सरदारों के साथ मैत्री करने की नीति का उल्लेख सब जगह मिलता है किन्तु मुगल सम्राट स्वयं भी मराठों के स्थानीय प्रभाव तथा रण कुशलता से परिचित थे और उनके सहयोग के प्रति उदासीन नहीं थे । जहाँगीर के काल में उदाजीराय, तुलाजी जाधव इत्यादि कई प्रमुख मराठा सरदारों को शाही मनसब प्रदान की गई थी । 1626 में शाहजहाँ ने जब अहमदनगर विजय का अभियान चलाया तो मुगलों के साथ पाँच पंच-हजारी मराठा मनसबदार थे । स्पष्ट है कि औरंगजेब के काल के पूर्व भी मुगलों और मराठों के बीच पर्याप्त सम्बन्ध विकसित हो चुके थे ।

औरंगज़ेब के शासन के प्रारम्भिक काल में उसकी मराठों के प्रति नीति स्पष्ट है । आरम्भ में उसकी नीति मराठों को मुगल सेवा में लेकर उन्हें सल्तनत से इस प्रकार दूर रखने की थी कि वे सल्तनत को हानि न पहुँचा सकें और साम्राज्य की दक्षिणी सीमा के विस्तार में बाधक शियाओं को सहयोग भी न दे सकें । शिया-रियासतों को हस्तगत करने के बाद औरंगजेब ने मराठों पर आधिपत्य जमाने और उनकी शक्ति को नियन्त्रित करने का प्रयास किया । उसकी इस नीति में मराठा विरोधी एवं मराठा मैत्री दोनों तत्व मौजूद थे ।

जिस समय औरंगजेब सिंहासन पर बैठा, शिवाजी ने बीजापुर राज्य के बहुत से जिले और इलाके हस्तगत करके शाहजी की पूना जागीर का पर्याप्त रूप से विस्तार कर लिया था । औरंगजेब के आदेश पर मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी पर चढ़ाई की और उसे पुरन्द के किले में घेरकर (1665 ई0) सन्धि के लिये बाध्य किया । यह सन्धि बहुत महत्वपूर्ण थी । जयसिंह के इस आश्वासन पर शिवाजी आगरा दरबार में उपस्थित हुए कि उन्हें आधिपत्य स्वीकार करने पर मुगल शासन में उच्च मनसब प्रदान किया जायेगा, पर औरंगजेब ने मैत्री की

भावना के बदले शिवाजी के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाई और हाथ में आया अवसर गंवा दिया । उसने शिवाजी को कैद कर लिया किन्तु शिवाजी आगरा से किसी प्रकार भाग निकला । दक्षिण वापस आकर कुछ समय शान्त रहने के बाद स्वतंत्र मराठा राज्य स्थापित करने की उसकी महत्वाकांक्षा पुन: बलवती हो उठी । 1674 में उसने अपना राज्याभिषेक कराया और छत्रपति की उपाधि धारण की । 1680 में मृत्यु होने तक शिवाजी ने निरन्तर संघर्ष करके अपने राज्य की सीमा का और विस्तार किया । इस काल में उसने दक्षिण रियासतों - बीजापुर एवं गोलकुण्डा के साथ दृढ़ मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित किये । 1676 में औरंगजेब ने शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को 6000 सवार का मनसब प्रदान करके परोक्ष रूप से उसने शिवाजी की उच्च मनसब की आकांक्षा को पूरा करने का प्रयास तो किया किन्तु बहुत देर से । चौथ एवं सरदेशमुखी के प्रश्न को लेकर इस काल में मुगलों एवं मराठों के बीच संघर्ष होते रहते थे । 1680 में एक मजबूत और बड़े मराठा राज्य को छोड़कर शिवाजी चल बसा । उसके बाद उसका पुत्र शम्भाजी मराठों का छत्रपति बना । वीर होते हुए भी चरित्र एवं संगठन के मामले में वह शिवाजी के विपरीत था ।

मराठा आन्दोलन के स्वरूप और उनके साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के महत्व को औरंगजेब कभी भी पूरी तरह से समझ नहीं सका । 1689 में शम्भाजी की हत्या करवाना भी उसकी राजनीतिक भूल थी । परन्तु दूसरी ओर शम्भाजी की हत्या करवाने के बाद भी औरंगजेब ने उसके 9 वर्षीय पुत्र शाहू को परिवार सहित अपने संरक्षण में ले लिया और कालान्तर में उसे 7000 जात एवं 7000 सवार का मनसब, राजा की उपाधि एवं शिवाजी की भवानी तलवार प्रदान की । इस प्रकार मराठों तथा मुगल सम्राट दोनों की दृष्टि से शाहू ही शम्भाजी का उत्तराधिकारी था । राजाराम ने भी अपने को शाहू का नायब ही घोषित किया पर राजाराम के मरणोपरान्त ताराबाई ने औरंगजेब के पास यह प्रस्ताव भेजा कि यदि उसके पुत्र शिवाजी द्वितीय को शम्भा का उत्तराधिकारी मान लिया जाय तो वह (शिवाजी द्वितीय) मुगल आधिपत्य में मनसबदार बनने को तैयार है । परन्तु औरंगजेब ने

इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया । मृत्यु के समय तक औरंगजेब न तो मराठों का पूर्ण रूपेण दमन कर सका और न ही उनके साथ शान्ति पूर्ण सम्बन्ध ही स्थापित कर सका । उसकी इस द्विविध नीति के कारण ही निरन्तर मराठे शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी होते गये । औरंगजेब की मृत्यु के बाद शाहू मुगल आधिपत्य से मुक्त कर दिया गया ।

1707 से 1749 तक मराठा राज्य का स्वामित्व छत्रपति शाहू के हाथ में था । शाहू के महाराष्ट्र में पुन: लौट आने से मराठों में दो दल हो गये । बालाजी विश्वनाथ की सहायता से शाहू ने ताराबाई को खेड़ के मैदान में पराजित किया । सतारा के मुगल किलेदार शेख मीर ने शाहू को असली उत्तराधिकारी स्वीकार करते हुए किले के द्वारों को उसके लिए खोल दिया । शाहू एक अधीन शासक के रूप में मुगल शासकों से संघर्ष करता रहा । बहादुरशाह ने मराठों की इस आन्तरिक समस्या के प्रति कोई स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं अपनाया । उसने शाहू एवं ताराबाई दोनों के नाम सरदेशमुखी प्राप्त करने की सनद दे दी और चौथ का मामला स्थगित कर दिया । अन्त में दाऊद खाँ पन्नी ने गुप्त समझौते के द्वारा दक्षिण की चौथ व सरदेशमुखी शाहू को देने का वायदा किया गया।

पेशवा परिवार का उदय इस काल के मराठा इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी । 1713 में बालाजी विश्वनाथ सर्वप्रथम शाहू का पेशवा बना । इसके बाद मराठा शक्ति क्रमश: राजा के हाथ से निकल कर पेशवा के हाथ में चली गई । शाहू की सबसे बड़ी समस्या थी अपने सरदारों के ऊपर नियंत्रण स्थापित करना, क्योंकि ये लोग ताराबाई से मिलकर शाहू के विरुद्ध षणयंत्र किया करते थे ।

बालाजी विश्वनाथ ने कान्हो जी आग्रे जैसे कई मराठा अधिनायकों को अपनी बुद्धिमत्ता से शाहू के पक्ष में कर लिया । बालाजी विश्वनाथ की महत्वपूर्ण

सफलता 1719 में मुगलों के साथ की गयी सन्धि थी, जिसने न केवल बालाजी अपितु शाहू की हैसियत को भी बढ़ा दिया ।

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बाजीराव 1720 में 20 वर्ष की आयु में ही पेशवा बन गया। बालाजी विश्वनाथ ने महाराष्ट्र में शाहू की स्थिति को दृढ़ करके उसे मराठों में निर्विवाद बना दिया था किन्तु उसकी समस्याओं का समाधान बाजीराव प्रथम ने ही किया । इस समय दक्षिण में मुगल सूबेदार महान् कूटनीतिज्ञ निजाम उल मुल्क था । वह दक्षिण में स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखता था । निजाम से बाजीराव का सम्पर्क 1720 में हुआ । निजाम ने 1719 में हुई मुगल मराठा सन्धि की उपेक्षा की और मराठों को दक्षिण के सूबों की चौथ व सरदेशमुखी देने से इनकार कर दिया । बाजीराव ने मराठा सरदारों को धन का लालच देते हुए युद्ध के लिए तैयार किया, किन्तु जब 1726 में बाजीराव कर्नाटक पर हमले के लिए गया हुआ था, उसी समय निजाम ने शाहू के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया । 1728 में पालम्बेद नामक स्थान पर बाजीराव ने निजाम को बुरी तरह घेरकर ऐसी कठिन स्थिति में डाल दिया कि वह बिना युद्ध किए ही मराठों से सन्धि करने पर विवश हो गया । उसने मराठों के साथ मुगीशेगांव की सन्धि करली । ~~किन्तु~~ इस सन्धि के बाद भी निजाम की महत्वाकांक्षा शान्त नहीं हुई । सम्राट ने भी उसे मराठों के विरूद्ध उकसाया । निजाम ने मराठों के विरूद्ध दिल्ली से सैनिक अभियान शुरू किया और मालवा पहुँच गया । किन्तु अन्त में बाजीराव के समक्ष बिना युद्ध किये ही निजाम को 1738 में दुरई सराय की सन्धि करने के लिए विवश होना पड़ा । इस लज्जा-जनक पराजय के बाद निजाम ने बाजीराव से फिर कभी मुठभेड़ न करने का फैसला कर लिया ।

1735 तक सम्पूर्ण गुजरात मराठों के अधीन हो गया था । मुगलों ने मराठों को मालवा सौंप दिया । 1729 में बुंदेलखण्ड के शासक छत्रशाल ने

मुहम्मदशाह वंगश के विरुद्ध पेशवा बाजीराव से सहायता माँगी । 1729 में बाजीराव ने स्वयं पहुँचकर छत्रसाल की मदद की । छत्रसाल ने बुंदेलखण्ड का लगभग एक तिहाई भाग पेशवा बाजीराव को दे दिया । इस प्रकार झांसी, कालपी आदि प्रदेश जो दिल्ली व आगरा के निकट थे मराठों को प्राप्त हो गये ।

अब मराठों ने दोआब, राजस्थान तथा दिल्ली के निकट मुगल सीमाओं पर हमले शुरू कर दिये । अन्त में 1736 में मुगल सम्राट ने मराठों को इन क्षेत्रों से चौथ व सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार दे दिया । किन्तु इतने से ही बाजीराव सन्तुष्ट नहीं हुआ । उसने 1737 में अवध पर हमला करके मुगल सेना को बुरी तरह परास्त किया । मुगल सम्राट ने मालवा के अतिरिक्त 13 लाख रूपया भी मराठों को देना स्वीकार किया । ऐसा प्रतीत होने लगा कि शीघ्र अथवा कुछ समय बाद ही सम्पूर्ण भारत पर मराठों का प्रभुत्व स्थापित हो जायेगा ।

मराठा अपना ध्येय पूरा कर पाते, इससे पूर्व ही नादिरशाह ने अपने आक्रमण से मराठों के लिए एक नया संकट उपस्थित कर दिया । मराठे उत्तर पश्चिमी सीमा से होने वाले आक्रमण की सम्भावना को प्राय: भूल गये थे । इस संकट का सामना करने के लिए शाहू ने पेशवा व अन्य सरदारों को एकत्रित होने के लिए निर्देश दिये । शाहू ने यह भी कहा 'हमने औरंगजेब से वायदा किया था कि जब (मुगल) सल्तनत पर खतरा आयेगा हम मदद करेंगें,' किन्तु बाजीराव पुर्तगालियों के विरुद्ध वसई के अभियान में संलग्न था । अत: नादिरशाह के विरुद्ध मराठों की योजना फलीभूत नहीं हुई ।

नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल साम्राज्य की वास्तविक दुर्बलता सर्वविदित कर दी । इस काल में मराठे, मुगल बादशाह तथा अमीरों से मित्रता चाहते थे । अत: पेशवा एवं निजामुलमुल्क में पुन: सन्धि हो गयी । निजाम ने पेशवा को 15 लाख रूपये तीन किस्तों में देने का भी वायदा किया । इस समझौते

से ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल बादशाह ने मराठों के लिए दक्षिण में अपना प्रभाव बढ़ाने का मार्ग खोल दिया। किन्तु इसी बीच 1740 में महान लड़ाकू पेशवा बाजीराव की मृत्यु हो गयी। बाजीराव की मृत्यु के बाद उसका उन्नीस वर्षीय पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा नियुक्त किया गया। उसने अपने पिता की तुलना में शत्रु कम और मित्र अधिक बनाये। अपने पिता के समान उसने भी साम्राज्य विस्तार की नीति अपनायी और मराठों की शक्ति को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। उसके काल में मुगल सम्राट मराठों के हाथ की कठपुतली बन गये। मराठे लगभग सम्पूर्ण भारत में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने लगे तथा उत्तर से दक्षिण तक उनके प्रभाव का विस्तार हो गया, किन्तु राजपूतों व जाटों को असन्तुष्ट कर बालाजी बाजीराव ने महान भूल की और साथ ही ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि भारतीय मुसलमान बाहर से सहायता माँगने को बाध्य हो गये। मराठों ने जाट राजा सूरजमल का मैत्री प्रस्ताव एवं उसकी सलाहें ठुकराकर महान भूल की। परिणामस्वरूप अहमदशाह अब्दाली द्वारा पानीपत के तृतीय युद्ध में 14 जनवरी, 1761 को मराठों की निर्णायक हार हुई। इसमें पेशवा की शक्ति पूर्णतया क्षीण हो गई। यद्यपि अहमदशाह अब्दाली को शीघ्रतापूर्वक भारत से लौट जाना पड़ा किन्तु अब मराठे उसके जाने का लाभ उठाने की स्थिति में नहीं रहगए थे। इसने शीघ्रता से फैलते हुए मराठा साम्राज्यवाद के समक्ष गम्भीर प्रतिबन्ध उपस्थित कर दिया था। इसी के साथ मराठों के सम्पूर्ण भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्न का भी अन्त हो गया।

नि:सन्देह मराठों का उत्साह, महत्वाकांक्षा और उनकी सफलता अद्वितीय थी पर सम्पूर्ण भारत पर शासन करने की अभिलाषा व शक्ति प्राप्त करलेने के बाद भी मराठे अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति से उबर नहीं सके। राजपूतों और जाटों के साथ हिन्दू होने के बाद भी उनका सामंजस्य स्थापित न हो पाना

इसका सबसे बड़ा प्रमाण एवं भारतीय इतिहास की त्रासद घटना थी। अन्यथा पानीपत का तृतीय युद्ध मराठों के लिए इतना हारिकर नहीं होता और अंग्रेजों के लिए भारत में जड़े जमाना संभवतः इतना आसान न होता। विशेषकर जाटों के साथ सामंजस्य स्थापित न हो पाना समकालीन मराठा इतिहास की एक बड़ी त्रासदी थी। प्रतिभाशाली और सुलझे हुए व्यक्तित्व के स्वामी जाट राजा सूरजमल के नेतृत्व में जाटों ने मामूली स्थिति से उठकर एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना करली थी और वे उत्तरी भारत की एक निर्णायक शक्ति बन चुके थे। परन्तु मराठों ने उसकी शक्ति को नहीं पहचाना। इसी का यह परिणाम था कि पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठा शक्ति का अहमदशाह अब्दाली के हाथों विनाश हो गया। मराठे इस सुदृढ़ स्थिति का लाभ उठाने से अन्तिम क्षणों में चूक गये।

आशा राय

(आशा राय)

शोध-छात्रा

प्रथम अध्याय

मराठों का उत्कर्ष और स्थानीय भौगोलिक स्थिति

प्रथम अध्याय

मराठों का उत्कर्ष और स्थानीय भौगोलिक स्थिति

मराठों का उदय मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना है । क्योंकि उनके बढ़ते हुए प्रभुत्व ने मुगल साम्राज्य को जहाँ विनाश के गर्त में धकेला वहाँ एक लम्बे अर्से तक उन्होंने भारत में अपने प्रभुत्व का डंका भी बजाया । एस० आर० शर्मा का कथन अधिक समीचीन है, इस सम्बन्ध में कि भारत में मुगलों की राजनीति सत्ता के उत्तराधिकारी वास्तव में अंग्रेज नहीं अपितु मराठे थे । विशेषकर अठारहवीं शताब्दी में पेशवाओं एवं उनके सहायक सरदारों का लगभग सम्पूर्ण भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व छाया रहा और मुगल सम्राटों को वे अपने हाथ का खिलौना बनाए रखे ।[1]

इतिहासकारों के लिए यह प्रश्न विचारणीय रहा है कि क्या दक्षिण में मराठा शक्ति का अभ्युदय और उत्थान एक आकस्मिक घटना थी ? ग्राण्ट डफ ने मराठों के उदय और उत्कर्ष को सहयाद्रि पर्वत के वनों में एकाएक प्रगट होने वाली अग्नि की तरह बतलाया है ।[2] परन्तु यह कथन भ्रम मूलक है । अब यह मत सुस्थापित है कि मराठों का अभ्युदय और उत्थान भारत के इतिहास की एक आश्चर्यजनक घटना तो थी, परन्तु यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी ।[3] इस सुस्थापित मत के पीछे इतिहासकारों ने अनेक तथ्यपूर्ण तर्क प्रस्तुत किए हैं:-

"यह मराठों का उत्कर्ष एक असम्बद्ध घटना नहीं है । शिवाजी मराठों का उत्कर्ष का एक प्रबल और प्रमुख कारण था । परन्तु यह उसका एक मात्र कारण नहीं था । नि:सन्देह शिवा जी ने अपनी निर्भीकता, साहस और विजयों से रेत

1- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज आफ दि मराठा पावर, पृ० 8.

2- पी० एस० सरदेसाई, ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, भाग 1, पृ० 28.

3- टेम्बल, ओरियण्टल एक्सपीरियन्स, पृ० 245.

के कणों जैसी बिखरी मराठा जाति को संगठित करके उसे शक्तिशाली बनाया" ।[1] मराठों को एक प्रबल बलशाली शक्ति के रूप में उभारने में शिवाजी का बड़ा भारी योगदान रहा । परन्तु इस उत्कर्ष के लिए शिवाजी ही अकेले अंग नहीं थे । मराठों की शक्ति प्राप्त कर लेना शिवाजी की व्यक्तिगत वीरता और विजय का उतना ही परिणाम था, जितना कि महाराष्ट्र की विचित्र भौगोलिक स्थिति, मराठों का राष्ट्रीय चरित्र तथा पंद्रहवीं और सोलहवीं शदी में लोगों में उत्पन्न हुई नवीन आशाओं व आकांक्षाओं से परिपूर्ण धार्मिक भावनाओं का एवं राजनीतिक व आर्थिक दुरावस्था का फल था ।[2] धर्म की नवीन भावनाओं और उमंगों ने महाराष्ट्र के लोगों को एक नवीन संगठित सूत्र में बांध दिया था ।[3] इस प्रकार मराठों का अभ्युत्थान किसी एक विशिष्ट व्यक्ति के कार्यों की या कुछ व्यक्तियों के समूहों के कार्यों की और नीति की परिणति नहीं थी, यह किसी तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम भी नहीं था ।[4] मराठों के अभ्युदय और उत्कर्ष का क्षेत्र तैयार करने का कार्य कुछ तो महाराष्ट्र की प्रकृति ने किया, कुछ इस प्रदेश के प्राचीन इतिहास में, और कुछ धार्मिक और सांस्कृतिक जागृत और आन्दोलन ने तथा उस शस्त्र विद्या की शिक्षा ने किया जिसे मराठों ने मुस्लिम शासन के दो सौ वर्षों में ग्रहण किया था ।[5] वास्तव में मराठा शक्ति के उदय और विकास में महाराष्ट्र की विगत 500 वर्षों की राजनीतिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जागृति और

1- वी०एन० लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ० 38.

2- आर०वी० नदकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अन्त, पृ० 13.

3- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ० 22.

4- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज आफ् मराठा पावर, पृ० 18.

5- पेशवा दफ्तर जि० 22, पृ० 168.

व्यापक आन्दोलन रहे हैं ।[1] उनमें विगत पांच शताब्दियों का राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास छिपा है परन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि मराठों का उत्कर्ष और विकास जनता का था । जिसमें हिन्दू धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता की अदम्य भावनाएँ थीं ।[2]

मराठों के अभ्युत्थान उत्कर्ष और विकास में अधोलिखित परिस्थितियों और तत्वों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

1- महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति -

महाराष्ट्र प्रदेश विन्ध्य तथा सतपुड़ा पर्वत माला से घिरा हुआ एक दुर्गम प्रदेश था, प्रारम्भ में महाराष्ट्र तीन पृथक् भागों में विभक्त था । §1§ विदर्भ, §वरार§ प्रदेश, §2§ गोदावरी घाटी क्षेत्र, तथा §3§ कृष्णा घाटी का कोंकण प्रदेश । इसमें पश्चिमी तटवर्ती कोंकण प्रदेश भी सम्मिलित था ।[3] महाराष्ट्र प्रदेश के इस सीमा की पुष्टि 634 ई० के एगोल लेख से भी होती है ।[4] सरदेसाई के शब्दों में "इस प्रकार नर्मदा तथा ऊपरी कृष्णा के बीच का प्रदेश मुख्य महाराष्ट्र है, जिसमें मराठी भाषा बोली जाती है तथा जो एक समकोण त्रिभुज के रूप में है जिसकी एक भुजा दमन से कारवार तक के समुद्र तट से बनती है, दूसरी ताप्ती नदी के तटवर्ती सीधी दमन से नागपुर तक जाती है तथा इसका कर्ण एक अनिश्चित रेखा है जो गोन्दिया से वेलगांव, शोलापुर और विदर्भ होती हुई कारवार तक जाती है" ।[5] महाराष्ट्र का सहयाद्रि पर्वत श्रेणी §पश्चिमी घाट§ तथा समुद्र के बीच का प्रदेश §कोंकण§ ऊबड़-खाबड़ तथा घने जंगलों से

1- हिंगणे दफ्तर, भाग 1, पृ० 88·

2- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ० 25·

3- वी०एन० लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ० 28·

4- सरदेसाई, मराठों का नवीन इतिहास, पृ० 3·

5- वही, पृ० 4·

आवृत है जहां आवागमन के लिए केवल सकरी पगडंडियां मात्र हैं । इस तरह यह एक दुर्गम प्रदेश है । इन पर्वत श्रेणियों तथा दुर्गम क्षेत्रों में मराठों को लूट-पाट कर कन्दराओं में भागकर छिप जाने में सुविधा प्रदान की ।[1] अत: लूट-मार यहां के निवासियों के जीवन निर्वाह का सामान्य साधन बन गया ।

पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहां दुर्भेद्य गढ़ों का निर्माण सुगम हुआ जो मराठों की सुदृढ़ रक्षा पंक्ति प्रदान करते थे । महाराष्ट्र का कुछ भाग उर्वर तथा जलवायु स्वास्थ्य प्रद है । जैसा कि ग्राण्ड डफ का कथन है - "महाराष्ट्र की घाटियां सिंचाई के साधनों से युक्त हैं किन्तु खेती-बारी, मिट्टी और उपज में यह भारत के अन्य भागों की समता नहीं कर सकता" ।[2] सैनिक दृष्टि से यह प्रदेश अद्वितीय है ।

महाराष्ट्र की इस प्राकृतिक स्थिति से यहां के निवासियों में विशेष मानव गुणों का प्रादुर्भाव हुआ तथा वे दुर्जेय योद्धाओं के रूप में उजागर हुए । सर देसाई के कथनानुसार "पश्चिमी घाट को इस दुर्जेय पर्वत माला ने ही मराठों को इस योग्य बनाया कि वे मुसलमान विजेताओं के विरूद्ध विद्रोह कर सके, मुगलों की सुसंगठित शक्ति के सामने अपनी राष्ट्रीयता को पुन: प्रदर्शित कर सके और अपना साम्राज्य स्थापित कर सके" ।[3] महाराष्ट्र प्रदेश की प्राकृतिक स्थिति का मराठा स्वभाव पर प्रभाव का विश्लेषण करते हुए डा० यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "मराठों की स्वतन्त्रता प्रियता तथा पृथकता की मनोवृत्ति को प्रकृति से अत्यधिक सहायता मिली जिसके द्वारा उनको बने-बनाए तथा संरक्षित गढ़ उपलब्ध हुए जहां वे तुरन्त भागकर शरण ले सकते थे तथा जहां से वे प्रबल प्रतिरोध कर सकते थे । उनके देश की जलवायु ने उनको फुर्तीला, प्रतिशोधी,

---

1- ग्राण्ट डफ, मराठों का इतिहास, पृ० 9.

2- वही, पृ० 10.

3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, पृ० 28.

उग्र तथा उत्तम सैनिक बना दिया । उनमें पर्वतीय जातियों के सभी गुण विद्यमान थे । घने जंगलों, ढालू पहाड़ियों और दुर्गम गढ़ों ने उनमें वीरता के भाव भरे हैं । वे जन्मजात् घुड़सवार तथा साहसी होते हैं" ।[1] ऐसी स्थिति में यदि उनमें स्वराज्य स्थापित करने का उत्साह जगा और सफलता पूर्वक मुगल शक्ति का प्रतिशोध किया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । अपितु यह एक स्वाभाविक तथा सामयिक घटना समझीजानी चाहिए ।[2]

2- <u>मुसलिम शासकों की धार्मिक कट्टरता के विरूद्ध हिन्दू प्रतिक्रिया</u> -

नि:संदेह मुसलिम शासकों की नीति हिन्दुओं के प्रति प्राय: असहिष्णु ही थी । उत्तरी भारत में वे हिन्दुओं पर छा गये तथा हिन्दू अपनी कमजोरियों के कारण जिनमें भौगोलिक अवरोध का अभाव भी एक कारण था, यह सब कुछ सहते चले गये ।[3] किन्तु दक्षिण की स्थिति दूसरी थी । यहाँ के निवासियों ने मुसलमानों के इस धार्मिक अभियान और अत्याचारों का डटकर मुकाबला किया । मुहम्मद तुगलक ने प्रभावी ढंग से दक्षिणी प्रदेशों के दमन के उद्देश्य से देवगिरि §दौलताबाद§ को अपनी राजधानी बनाया, किन्तु वह दुर्दमनीय मराठों को नियन्त्रण में न ला सका था । लोग प्राण दे देते थे, किन्तु अत्याचार के सम्मुख आत्म समर्पण नहीं करते थे । विरोध की भावना इतनी उग्र थी कि सन्त साधु भी मैदान में उतर आये ।[4] श्रृंगेरी मठ के तत्कालीन शंकाराचार्य स्वामी माध्वाचार्य ने सक्रिय भाग लिया और हरिहर और बुक्का नाम के दो भाइयों को, जो मुहम्मद तुगलक के आदेश से मुसलमान बन गये थे, और जिन्हें हिन्दुओं

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 5·

2- सी0ए0 किनकैड एण्ड डी0बी0 परसनिस, ए हिस्ट्री आफ़ दि मराठा पीपुल, पृ0 14·

3- एलफिन्स्टन, हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, पृ0 38·

4- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज़ आफ़ दि मराठा पावर, पृ0 20·

का विद्रोह शान्त करने के लिए दक्षिण भेजा गया था, पुन: हिन्दू धर्म में दीक्षित कर प्रसिद्ध विजय नगर राज्य की स्थापना कराई जिसमें दक्षिण में मुस्लिम प्रतिरोध का काम दिया ।[1] कापालिक, शैव, मानभाव आदि धार्मिक सम्प्रदाय इस्लाम के विरोध में डट गये । मुसलमानों की हिन्दू विरोधी नीति तथा अत्याचारों ने मराठों में प्रतिशोध की भावना जागृत की, और वे दक्षिण में संगठित होकर शिवाजी के नेतृत्व में स्वराज्य की स्थापना में जुट गये ।[2] सर देसाई का यह मत सही है कि "यदि बीजापुर के सुल्तान मुहम्मद आदिल शाह ने अपने पिता की सहिष्णुता की नीति का त्याग कर हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करने तथा अपहरण के पुराने तरीकों को न अपनाया होता तो सम्भव था कि शिवाजी स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना का कार्य अपने हाथ में न लेते" ।[3] औरंगजेब द्वारा अकबर की सहिष्णुता की नीति को त्यागकर हिन्दुओं के दमन की नीति अपनाए जाने के कारण मराठा आन्दोलन की आवश्यकता अनुभव की गई ।[4] फाल्टन के बाबा निम्बालकर को बीजापुर द्वारा बलात् मुसलमान बनाए जाने से मराठे भड़क उठे । धार्मिक नेताओं ने घूम-घूम कर हिन्दू संगठन का बिगुल बजाया ।[5]

3- दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में हिन्दुओं का प्रभाव -

दिल्ली के सुल्तानों की दमन पूर्ण नीति से दक्षिण में विजय नगर के हिन्दू राज्य की स्थापना हो चुकी थी ।[6] उसकी देखा-देखी महाराष्ट्र में भी प्रतिक्रिया

1- प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 16.

2- राजवाड़े, मराठा इतिहास चीं साधने, जि0 14, पृ0 27.

3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, पृ0 22.

4- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 1, पृ0 47.

5- अलीमुहम्मद खाँ, मीराते अहमदी, पृ0 433.

6- तारीखे अहमदशाही, पृ0 348.

हुई । विद्रोह दबाने के लिए मुहम्मद तुगलक ने जिस मुसलमान अधिकारी को भेजा, उसने स्वयं दिल्ली सल्तनत के विरूद्ध बगावत कर दी और दक्षिण में स्वतन्त्र बहमनी राज्य की स्थापना कर दी ।[1] कुछ समय बाद वह राज्य पांच स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया । §1§ वीजापुर, §2§ गोलकुण्डा, §3§ अहमदनगर, §4§ वीदर, §5§ वरार । इनमें वीजापुर, गोलकुण्डा तथा अहमदनगर शक्तिशाली हो गये ।[2] इन राज्यों के शासक यद्यपि मुसलमान थे तथापि वे हिन्दुओं के प्रति सहिष्णु थे तथा शासन कार्यों में मराठों का सहयोग लेते थे। श्री महादेव गोविन्द रानाडे का कथन है कि "शासन के विभागों में मराठा राजनीतिज्ञों तथा सैनिकों का नियन्त्रण था तथा मुसलमान शासकों को उनपर निर्भर रहना पड़ता था । ये पर्वतीय दुर्ग मराठा सरदारों के हाथ में ही थे । मुसलमान शासकों का उनपर नाममात्र का ही प्रभुत्व था"।[3] इस स्थिति में मराठा शक्ति के उदय का मार्ग प्रशस्त किया और शिवाजी को स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई । शिवाजी के पिता शाह जी भोंसले स्वयं वीजापुर राज्य के एक उच्च्व पदाधिकारी थे, जिससे उसके किलों पर अधिकार करने में शिवाजी का साहस बढ़ा ।[4]

4- दक्षिणी मुसलमान राज्यों की पतनावस्था -

दिल्ली के मुगल सम्राटों की विशेषकर औरंगजेब की नीति हिन्दू विरोधी ही नहीं थी अपितु दक्षिण की शिया मुसलमान रियासतों की विरोधी भी थी ।[5]

1- पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द 14, पृ0 21·

2- हिंगले दफ्तर, जिल्द 2, नं0 5, पृ0 70·

3- सर देसाई, मराठी, रियासत, भाग 2, पृ0 11·

4- इतिहासिक पत्रें यदि वगारा लेख, पृ0 468·

5- तारीखे मुजफ्फरी, पृ0 540·

औरंगजेब इन रियासतों को पद दलित करने के लिये हर सम्भव उपाय का सहारा ले रहा था । अहमदनगर की शक्ति को नष्ट कर वह बीजापुर और गोलकुण्डा को विजित करने के लिये अग्रसर हुआ । इससे इन रियासतों की स्थिति दुर्बल होती गई तथा इनका पतन समीप आता दिखाई दिया ।[1] मराठों ने ऐसी स्थिति से लाभ उठाया और अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया । इन राज्यों ने परस्पर संघर्षों में अपनी शक्ति को नष्ट किया ।[2] मराठे कभी किसी राज्य की तथा कभी किसी राज्य की सहायता करते थे । मुगलों ने अपनी कूटनीति से इन राज्यों को समय-समय पर आपस में भिड़ाया और अपना उल्लू सीधा किया ।[3] इन राज्यों की शक्ति क्षीण होती गई । मराठों ने ऐसी स्थिति में बहुत से दुर्ग अपने अधिकार में कर लिए और एक स्वतन्त्र मराठा राज्य का स्वप्न साकार किया ।[4]

5- धार्मिक पृष्ठभूमि -

मराठों के उत्थान में महाराष्ट्र के साधु-सन्तों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । मुसलमानों के दक्षिण की ओर बढ़ने के साथ ही महाराष्ट्र में हलचल मच गई और सन्तों ने जन-जागरण का बीड़ा उठाया ।[5] उन्होंने महाराष्ट्र के उत्थान के लिए आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि तैयार की । तेरहवीं सदी में सन्त ज्ञानेश्वर ने जन-मानस में उत्साह का संचार किया और लगभग तभी "मानवभाव" आन्दोलन शुरू हुआ जिससे धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में क्रान्ति

1- यदुनाथ सरकार, फाल आफ् द मुगल ऐम्पायर, भाग 1, पृ0 38.

2- एस0 आर0 शर्मा, फाउण्डींग्स आफ् मराठा फ्रीडम, पृ0 84.

3- सी0ए0 किनकैड, विद्रोही महावीर, पृ0 26.

4- म0तु0 कुलकर्णी, राष्ट्रगुरू समर्थ जीवन दर्शन, पृ0 35.

5- राजेन्द्र सिंह गौड़, दक्षिण के देशरत्न, पृ0 63.

उत्पन्न कर दी ।[1] इस आन्दोलन से स्वतन्त्र विचारों को प्रोत्साहन मिला । पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में भी धार्मिक आन्दोलनों द्वारा जागरण की परम्परा चालू रही । सन्त तुकाराम, रामदास, श्रमेन्द्र स्वामी, वामन पण्डित आदि ने अपने उपदेशों से महाराष्ट्र में प्राण फूंक दिया ।[2] रानाडे का मत है कि यह धार्मिक पुनर्जागरण किसी वर्ग विशेष का न होकर एक जन-आन्दोलन था जिसके फल स्वरूप हिन्दू एकता की भावना स्थापित करने के लिए स्थान-स्थान पर मेले लगने लगे । पंडारपुर धार्मिक क्रान्ति का केन्द्र बन गया तथा विट्ठोवा के लिए महाराष्ट्र की जनता को एकता के सूत्र में पिरोया गया ।[3] इससे मराठों के राजनीतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ, क्योंकि इससे मराठों में राष्ट्रीय एकता का संचार हुआ ।

6- मराठी भाषा तथा साहित्य -

जिस प्रकार भारत के अन्य भागों में प्राकृतिक भाषाओं का आविर्भाव हुआ उसी प्रकार महाराष्ट्र में भी यह मराठी कहलाई । "इसका क्षेत्र एक समय में उत्तर में मालवा तथा राजस्थान की सीमाओं से लेकर दक्षिण में कृष्णा और तुंगभद्रा तक विस्तृत था" ।[4] मराठी भाषा तथा साहित्य ने महाराष्ट्र के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित के भक्ति गीत तथा नीति वचन मराठी भाषा-भाषियों के प्रत्येक घर में गाये जाते थे । श्री धर की पोथी का पाठ गांव-गांव में होता था और धार्मिक वृत्ति का मराठा बड़ी तन्मयता के साथ भाव-विभोर होकर इसे सुनता था । प्रारम्भिक मराठा समाज की सादगी तथा एकरूपता मराठी भाषा में

1- पांगारकर लक्ष्मण रामचन्द, श्री तुकाराम चरित, भूमिका, पृ0 8.
2- मैनी डा0 धर्मपाल, सन्तों के धार्मिक विश्वास, (शोध ग्रन्थ), पृ0 105.
3- रानाडे, राइज आफ दी मराठा पावर, पृ0 86.
4- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, पृ0 6.

भी प्रतिविम्बित हुई ।[1] मराठी गीतों ने जनमानस को निकटता से स्पर्श किया । गोधाली नायक समूचे महाराष्ट्र के गांव-गांव में भ्रमण कर जनता को वीर गाथाएं सुनाकर मन्त्र मुग्ध करता था तथा अपनी जाति के गौरव से उद्धृत करता था ।[2] एक वर्ष का हवाला देते हुए सरदेसाई कहते हैं कि - "सम्पूर्ण देश में एक नवीन राष्ट्रीय जीवन की धारा प्रवाहित होने लगी" । यदुनाथ सरकार के शब्दों में - शिवाजी द्वारा राजनीतिक एकता स्थापित होने से पूर्व ही महाराष्ट्र में 17 वीं शताब्दी में भाषा, नस्ल और जीवन में एकता स्थापित हो गई थी, जो कुछ थोड़ी बहुत कमी थी वह शिवाजी द्वारा पूरी कर दी गई ।[3]

7- <u>मराठों की कूटनीतिज्ञता और यथार्थवादिता</u> -

प्रकृति ने मराठों को यथार्थवादी बना दिया था । कोरा भावुकतावादी नहीं । अपनी स्वाधीनता की सुरक्षा के लिए वे शत्रु से युद्ध करते थे, परन्तु बड़े शत्रु को कुटिलता और कूटनीति से भी परास्त करने की क्षमता उनमें थी ।[4] दक्षिण के मुस्लिम सुल्तानों और उनके अधिकारियों के सम्पर्क से उन्हें कूटनीतिक और राजनीतिक दांव-पेंचों का समुचित अनुभव हो गया था ।[5] वे अपनी विजय के लिए वीरता और साहस के साथ कूटनीति का समावेश भी करते थे । साधारणतया वे आश्रित पर दयालु और अपने वचनों व प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहे । परन्तु तुर्कों के प्रभुत्व के दुष्परिणामों को समाप्त करने के लिए उन्होंने चतुराई से कुटिलता और अवसरवादिता को भी अपना लिया ।[6] मराठों में राजपूतों जैसी शान और

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 9-10.

2- वी0का0 राजवाड़े, ऐतिहासिक प्रस्तावना, भाग 1, पृ0 25-26.

3- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 11.

4- वी0एन0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 23.

5- ग्राण्टडफ, हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़, पृ0 28.

6- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़, भाग 1, पृ0 47.

कुलीनता का अहं नहीं था । उनमें राजपूतों जैसी विलासिता और दूरदर्शिता भी नहीं थी । मराठे मानाभिमान के अहं और पचड़े में पड़कर अपने जीवन या लक्ष्य की बलि देने की कल्पना भी नहीं करते थे ।[1] वे अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए किसी भी साधन को प्रयुक्त करने में आगा पीछा नहीं सोचते थे और अपनी सफलता व उपलब्धियों के हेतु अपने व्यक्तिगत सुखों को तिलान्जलि देकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति और जीवन की बाजी लगा देते थे ।[2] एलफिंस्टन के अनुसार मराठा सैनिक एक भयानक शत्रु है जो धैर्य, युद्ध कौशल और चालाकी से लड़ता है, समय पड़ने पर साहस और चतुरता से समरनीति और कर्मठता से काम लेना जानता है ।

8- मराठों में स्वतन्त्रता और विद्रोह की भावना -

"प्रकृति ने मराठों के हृदय में सहज ही स्वातन्त्र्य प्रेम भर दिया था" ।[3] मराठा स्वभाव से बराबर विद्रोही बना रहा । स्वावलम्बी, परिश्रमी, संघर्ष-प्रिय मराठा जाति विद्रोही और स्वतन्त्रता प्रिय रही । मराठों ने विदेशी सत्ता का प्रभुत्व हृदय से कभी स्वीकार नहीं किया । मुस्लिम आक्रमणकारी और विजेता भी उन्हें अधिक समय तक अपने नियन्त्रण में नहीं रख सके ।[4] मराठों के देश पर मुसलमानों का आधिपत्य कभी सशक्त या स्थायी नहीं हो सका । महाराष्ट्र में स्वायत्त शासन की प्रचलित प्रणाली के अनुसार जनता स्वाधीनता, न्याय और सुरक्षा के मामले में सुरक्षित रही । वहाँ सदियों तक स्थानीय जमींदारों ने व्यवहार में स्वतन्त्रता का उपयोग किया ।[5] इससे लोगों में स्वायत्त

1- एस0 एन0 सेन, दी मिलीट्री सिस्टम आफ् दी मराठाज़, पृ0 93.

2- राविल्सन, शिवाजी, दी मराठा, पृ0 15.

3- सर देसाई, दी मेन करेण्ट्स आफ् मराठा हिस्ट्री, पृ0 205.

4- एस0 आर0 शर्मा, दी मेकिंग आफ् माडर्न इण्डिया, पृ0 37.

5- टेम्पल सर रिचर्ड, वर्थ प्लेस एण्ड क्रेडिल आफ् मराठा पावर, - ओरियण्टल एक्सपिरिएन्स, पृ0 34.

शासन और स्वाधीनता की भावनाएं विकसित हुई और बनी रही। इनको संगठित करने के लिए सुयोग्य प्रतिभा सम्पन्न नेताओं की आवश्यकता थी। जिसे शिवाजी और बाद में पेशवाओं और अन्य सेनानायकों ने पूरा किया।[1]

9- शिवा जी का नेतृत्व -

शिवा जी स्वयं प्रेरणा का स्रोत था। उसके वंश तथा राजत्व की परम्परा ने मराठा शक्ति के उदय में गति तथा सुविधा प्रदान की। शिवाजी की माता जीजाबाई जाधवों के उच्च-कुल से थी तथा उसने अपने पिता का राजकीय वैभव देखा था।[2] शिवा जी के पिता शाहजी का जीवन विजय नगर राज्य की भूमिका से अनुप्राणित था। विजय नगर राज्य का प्रभाव महाराष्ट्र पर भी पड़ा।[3] विजय नगर के शासकों के साम्राज्य-विस्तार की कहानियों ने मराठों में भी हिन्दू राज्य स्थापित करने की भावना जाग्रत की। शिवाजी के पिता शाह जी ने अपने जीवन भर विजय नगर साम्राज्य के क्षेत्र में ही कार्य किया था।[4] शिवाजी के गुरू कोंणदेव तथा रामदास ने उनमें वीरता, निर्भीकता तथा स्वतन्त्रता की भावना कूट-कूट कर भर दी थी।[5]

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों ने शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति के उदय में सहायता की।

10- आर्थिक दुरावस्था -

महाराष्ट्र में राजनीतिक जागृति और क्रान्ति का तथा मराठों के

1- आर०वी० नदकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अन्त, पृ० 213.
2- प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ० 27.
3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज्, भाग 1, पृ० 116.
4- औरंगजेबनामा, पृ० 513.
5- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज् टाइम्स, पृ० 25.

अभ्युदय और उत्कर्ष का एक महत्वशाली कारण महाराष्ट्र की राजनीतिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था थी ।[1] अलाउद्दीन खिलजी द्वारा दक्षिण की प्रथम विजय से शिवाजी के अभ्युदय तक दक्षिण की राजनीतिक तथा आर्थिक अवस्था किसी भी परास्त, विजित और गुलाम जाति की भाँति अत्यन्त विपन्न थी । राजनीतिक परवशता और पराधीनता से आर्थिक दासता भी आई थी । फलत: सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में मराठे राजनीतिक क्रान्ति के लिए तैयार हो गये ।[2] सर देसाई ने लिखा है -"राजनीतिक हीनता और दासता से धार्मिक अत्याचारों और प्रशासकीय अनाचारों से शिवाजी के जन्म के लगभग 75 वर्ष से मराठा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयास कर रहे थे" ।[3] रालिसन के मतानुसार "भारत में अशान्ति का मूल कारण आर्थिक है । शिवाजी को लोगों में लोक प्रिय बनाने का श्रेय मुख्यत: उनके आर्थिक सुधारों को था" ।[4] मराठा निश्चय ही स्वराज्य को अपनी आर्थिक समस्याओं को दूर करने का एकमात्र साधन मानते थे । दयनीय आर्थिक स्थिति राजनीति में क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए परिपक्व थी और शिवाजी ने उसका प्रवर्तन किया ।[5]

शिवाजी के मरणोपरान्त औरंगजेब के दक्षिण के सैनिक अभियानों और युद्धों का महाराष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर जो कुप्रभाव पड़ा, उससे इस तर्क को बल मिलता है कि मराठों के उत्कर्ष का एक ~~[illegible]~~ महत्वपूर्ण कारण आर्थिक भी था ।[6]

1- एस0आर0 शर्मा, दी फाउण्डीग्स् आफ् मराठा फ्रीडम, पृ0 47.

2- वी0एन0 लूनियां, मराठा प्रभुत्व, पृ0 23.

3- सर-देसाई, मेन करेण्टस् आफ् मराठा हिस्ट्री, पृ0 54.

4- रालिंसन, शिवाजी दी मराठा, पृ0 64.

5- डी0एफ0 कर्क, शिवाजी, पृ0 18.

6- धनाडे, राइज् आफ् दी मराठा पावर, पृ0 49.

मराठों और औरंगजेब के बीच हुए स्वातन्त्र्य युद्ध के अठारह वर्षों की अवधि में महाराष्ट्र जो एक सौ वर्ष से भी अधिक सर्वनाशी युद्धों और संघर्षों के पंजों में जकड़ा हुआ था, सर्वाधिक भीषण विपत्तियों का शिकार रहा ।[1] विशाल शत्रु सेनाओं के सैनिक अभियान, प्रति अभियान युद्ध, मराठा गुरेलों और अश्वारोहियों के लुटेरे दल, गोलकुण्डा तथा वीजापुर राज्यों के विघटित सैनिकों की टुकड़ियाँ मुगल साम्राज्यी विशाल सैनिक काफिला और विशाल भव्य मुगल सैनिक शिविर सभी लूटमार मचाते, कृषि, व्यापार, उद्योग-धन्धों को नष्ट-भ्रष्ट करते और प्रदेश को उजाड़ और निर्जन बनाते रहे ।[2] वे जिधर से गुजरते वहाँ खेतों में फसल नहीं रहती । जमीन पर पेड़ नहीं रहते । उसके स्थान पर आदमी तथा पशुओं की अस्थियाँ बिखरी रहतीं । हरियाली के स्थान पर सभी कुछ वीरान वंजर । सारा देश इस प्रकार उजाड़ और विरान था कि चार छ: मील की यात्रा के दौरान कहीं जलता चूल्हा अथवा दिये की लौ नहीं दीख पड़ी ।[3] 1702 से 1704 ई0 में दक्षिण के सूबों में प्लेग का प्रकोप हुआ । इन दो वर्षों में बीस लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हो गई । यह आँखों देखा वर्णन विदेशी यात्री मनूची का है ।[4] औरंगजेब ने अपने युद्धों से जीवन निर्वाह के समस्त शान्तिपूर्ण साधनों का विध्वंस कर दिया था । "व्यापर तथा भूमि-कर वसूली और संचयन बहुत दिलों से बन्द हो गया था । दोनों पक्षों की ओर से इतनी लूट-पाट हुई थी कि लूटने को कुछ नहीं रह गया था" ।[5] इस दयनीय आर्थिक

1- वी0एन0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 30-31.

2- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 47.

3- एस0एन0 सेन, दी मिलीट्री सिस्टम आफ् मराठाज्, पृ0 53.

4- सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 5, पृ0 18.

5- आर0वी0 नदकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अंत, पृ0 247.

विपन्नता के त्रास के निराकरण के लिए मराठा विदेशी विधर्मी राज्य का अन्त कर अपना ही स्वतन्त्र स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे ।[1] इस प्रकार शिवाजी के अधीन मराठा राज्य के उदय तथा उनके मरणोपरान्त उनके पुनर्जन्म का मुख्य कारण था । मराठों की अत्यधिक दयनीय विपन्न आर्थिक दशा ।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों ने वीर शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति के उदय और विकासमें सहायता की । शिवाजी के नेतृत्व में बढ़ती हुई मराठा शक्ति औरंगजेब के लिए एक चुनौती थी । बिना उसका दमन किए उसका सम्पूर्ण भारत का एक छत्र सम्राट बनने का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता था । दक्षिण में, शाहजहाँ के समय अपनी सूबेदारी की अवधि में औरंगजेब ने मराठों की अपेक्षा बीजापुर और गोलकुण्डा के शिया राज्यों को अधिक खतरनाक समझा और राज्यारोहण के बाद पता चला कि मराठे अधिक खतरनाक हैं ।

दक्षिण भारत की राजनीतिक विश्रृंखलता -

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में मराठा शक्ति का उत्कर्ष भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी । मराठा राज्य की स्थापना छत्रपति शिवाजी ने की थी, किन्तु राज्य स्थापना का विचार उनके पूर्वजों के मस्तिष्क की महान उपज थी ।[2] मुगल साम्राज्य के प्रसार, मुगल अधिकारियों के अत्याचार आदि से वैसे तो समस्त भारतीय जन-मानस प्रभावित था, किन्तु इसकी प्रतिक्रिया दक्षिण के मराठवाड़ा प्रान्त में सबसे अधिक हुई थी ।[3] इसी प्रतिक्रिया की एकान्त प्रेरणा के फलस्वरूप मराठा राज्य की उत्पत्ति की परिस्थितियाँ तैयार हुई । महाराष्ट्र के एक स्थानीय राज्य के रूप में मराठों की उत्पत्ति हुई । बाद

1- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 19-20.

2- वही, औरंगजेब, पृ0 178.

3- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 12.

में इसी छोटे से राज्य ने मुगलों की नींव हिला दी ।[1] मराठों का यह छोटा सा राज्य विशाल मुगल साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण बना । मराठों के उत्कर्ष में अनेक परिस्थितियों ने योगदान दिया था ।[2] प्रस्तुत अध्याय में उन परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है ।

मराठों के उत्कर्ष के पूर्व दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति का जो स्वरूप दिखलाई पड़ता है वह अत्यन्त त्रासपूर्ण है । सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों तथा मुगलों का आगमन न केवल महाराष्ट्र अपितु सारे भारत के लिए एक नई राजनीतिक परिस्थिति का सूचक था ।[3] पुर्तगाल सम्राट "इमैनुअल" के आदेश पर साहसी नाविक वास्कोडिगामा ने 3 जुलाई, 1497 को चार जहाजों के एक बेड़े के साथ भारत की ओर प्रयाण किया । यह बेड़ा अफ्रीका के पश्चिमी समुद्र का दौरा लगाता हुआ भारत की ओर आया ।[4] कालीकट के किनारे इस जहाजी बेड़े ने अपने लंगर डाले । वहाँ के हिन्दू राजा समूरी के दरबार में उसे ले जाया गया । किन्तु राजा ने उसे मुक्त कर दिया । उसने एक रहस्य की खोज की, जिसने पुर्तगालियों के सम्मान को चरमसीमा पर पहुँचा दिया ।[5] वास्कोडिगामा के बाद कनराल उसके बाद पुन: पुन: वास्कोडिगामा, एलमिडेस, अल्बुकुर्क भारत यात्रा पर आये, जिन्होंने कोचीन किल्लन और दीव में किले बनाये । 1510 ई0 में अल्बुकुर्क ने बीजापुर के राजा से गोवा का प्रदेश छीन लिया, जिसे उन्होंने अपने पूर्वी साम्राज्य की राजधानी बनाया ।[6] इस प्रकार

1- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज आफ दी मराठा पावर, पृ0 8.

2- भीमसेन, विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ0 25.

3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, पृ0 22.

4- डा0 आर0सी0 वर्मा, फारेन पालसी आफ दी ग्रेट मुगल्स, पृ0 5.

5- फिन्केड ( ), ए हिस्ट्री आफ दी मराठा पिपुल, भाग 1, पृ0 4.

6- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डिंग आफ मराठा फ्रीडम, पृ0 38-39.

योरोपीय शक्ति का आगमन महाराष्ट्र के तटों से हुआ । इन पुर्तगालियों के साथ मुख्य संघर्ष भी महाराष्ट्र के लोगों का ही हुआ ।

16वीं शताब्दी के आरंभ में भारत में बाबर के रूप में दूसरी बड़ी शक्ति का प्रवेश हुआ । 1526 ई0 में पानीपत के मैदान में दिल्ली के अफगान सुल्तान इब्राहिम लोदी को परास्त करके बाबर ने भारत में सदियों तक चलने वाली मुगल सत्ता की नींव डाली ।[1] बाबर ने अपने भारत प्रवास को निष्कंटक बनाने के लिए खानवा, चंदेरी और घाघरा के प्रसिद्ध युद्ध जीते । यद्यपि उसके पुत्र हुमायूँ को प्रसिद्ध अफगान शेरशाह सूरी ने भारत से खदेड़ दिया और पुन: दिल्ली पर अफगान सल्तनत की स्थापना की, तथापि बाबर का उद्यम पूर्णतया निरर्थक नहीं गया ।[2] हुमायूँ के पुत्र अकबर ने विपरीत परिस्थितियों में 13 वर्ष की अवस्था में न केवल मुगल-गद्दी सम्हाली अपितु भारत में मुगलों के पैर पुन: जमाये । साम्राज्य का विस्तार सम्पूर्ण उत्तर भारत में ही नहीं, दक्षिण भारत में भी किया ।[3] अकबर दक्षिण की ओर साम्राज्य विस्तार करने वाला प्रथम मुगल सम्राट था । यद्यपि उसका यह विस्तार एक सीमा तक ही था । अकबर के बाद जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने दक्षिण विजय के उद्यम को आगे बढ़ाया ।

दक्षिण के राज्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली दक्कन का बहमनी राज्य था । इसका आधिपत्य काल भी अपेक्षाकृत अधिक लम्बा था । दक्षिण भारत में बहमनी वंश का अधिकार 1347 ई0 से 1526 ई0 तक चलता रहा ।[4] इसके अधिकांश शासकों ने शक्ति संवर्द्धन एवं सुव्यवस्था की सफल चेष्टाएँ की थी। इनके प्रश्रय में इस्लामी संस्कृति को बढ़ने का पर्याप्त अवसर मिला, किन्तु युग की

1- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगल इम्पायर, खण्ड 1, पृ0 40.

2- मीर खाँ, जफरनामा, ए आलमगीरी, पृ0 12.

3- वी0एन0 लूनिया, मुगल कालीन भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ0 .

4- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 29.

सामान्य राजनीतिक प्रवृत्ति, युद्ध, विद्रोह एवं पारस्परिक संघर्ष से यह वंश भी नहीं बच सका था । 15वीं शताब्दी की समाप्ति के साथ ही बहमनी साम्राज्य का दीपक भी बुझ गया और महाराष्ट्र में निजामशाही और आदिलशाही के रूप में अहमद नगर तथा बीजापुर राज्य का उदय हुआ । बहमनियों के पतन के पश्चात् बरार, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा तथा बीदर के जो मुसलमान राज्य खड़े हुए थे उनमें धार्मिक असहिष्णुता पूर्ववत बनी रही ।[1] हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति के पूर्व-मध्यकालीन प्रतिपोषक सुप्रसिद्ध विजय नगर राज्य से सुद्धरत रहने में इन राज्यों ने भी वही उत्साह दिखाया था और अवसर हाथ लगने पर हिन्दुओं तथा मन्दिरों के विध्वंस में इन्होंने उसी लगन एवं उत्साह का परिचय दिया था ।[2]

समकालीन हिन्दू राज्यों में विजयनगर, उदयपुर त था उड़ीसा के राज्य मुख्य थे । दक्षिण भारत के मुसलमानी राज्यों से लोहा लेने में विजयनगर के राज्य ने अदम्य उत्साह तथा धैर्य का परिचय दिया था । उसने 1557 ई0 में बीजापुर तथा गोलकुण्डा के मुसलमानी राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया ।[3] कहा जाता है कि इसने न केवल इन राज्यों का विध्वंश किया अपितु दूसरे मुसलमानी राज्य अहमदनगर पर आक्रमण करके मस्जिदों एवं कुरान का अपमान भी किया ।[4] किन्तु 1564 ई0 के तालीकोट के निर्णायक युद्ध में अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा तथा बीदर के मुसलमानी राज्यों ने संगठित होकर विजयनगर पर आक्रमण करके भीषण नरसंहार एवं विध्वंस किया ।[5] पाँच महीनों तक विजयनगर में अशान्ति

1- रतिभानु सिंह नाहर, भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ0

2- आर0सी0 मजुमदार, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ् दि इण्डियन पिपुल, भाग 5, पृ0225·

3- किनकेड, ए हिस्ट्री आफ् द मराठा पिपुल, भाग 1, पृ0 187·

4- रिपर्ट सीवेल, ए फारगाटेन इम्पायर, पृ0 25·

5- गुप्ता एवं शर्मा, मध्यकालीन भारत, पृ0 310·

छाई रही । शत्रु विनाश के उद्येश्य से आये थे और वे अविश्रान्त रूप से अपने ध्येय की पूर्ति में लग गये । बर्बर्तापूर्वक नरसंहार किया गया । यहाँ के सारे मन्दिरों तथा प्रासादों को इस प्रकार ध्वस्त कर दिया गया कि कुछ पाषाण-निर्मित विशाल मन्दिरों तथा दीवारों को छोड़कर उस समृद्ध नगर का कोई चिन्ह शेष नहीं रह गया । मन्दिरों के मूर्तियों तक को ध्वसित कर दिया गया । यहाँ तक कि नरसिंह की विशाल प्रतिमा भी खण्डित कर दी गई । उन्होंने नदी तट पर स्थित विट्ठलस्वामी के मन्दिर के भव्य भवन में प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित कर दी और इसकी प्रस्तर कलाओं को राख कर दिया । अग्नि तथा तलवार, भाले और कुल्हाड़ेसे वे पूरे-पूरे दिन विनाश का ताण्डव कराते रहे । इतने अल्प समय में तथा अकस्मात रूप से विश्व के इतिहास में ऐसे भव्य एवं समृद्ध नगर का ऐसा विनाश सायद कभी नहीं हुआ था ।[1]

परन्तु जिस समृद्धि और सांस्कृतिक समृद्धि की उच्चतम सीढ़ी पर विजय-नगर पहुँच चुका था, उसका सर्वनाश केवल वाह्य रूप में ही मुसलमान कर सके थे । हिन्दुओं की आत्मा विजयनगर के पतन के पश्चात् भी दबी नहीं और आगामी शताब्दियों में मराठों के रूप में विकसित हुई ।[2] महाराष्ट्र में शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने जो शक्ति केन्द्रित की थी वह इसी विध्वंश तथा धार्मिक असहिष्णुता की परिणति थी ।

मराठों का अभ्युदय और शाह जी भोंसले -

अहमद नगर साम्राज्य के पतन से मराठों का इतिहास प्रारम्भ होता है । निजामशाही, आदिलशाही और कुतुबशाही के पराभव काल में जिन मराठों ने तत्कालीन राजनीति में भाग लिया उनमें भोसला वंश मुख्य था ।[3] भोंसा जी

1- रिवर्ट सिवेल, ए फारगाटेन इम्पायर, पृ0 27.

2- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डिंग आफ् मराठा फ्रिडम्, पृ0 52-53.

3- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 52.

नाम के एक पुरूष से ये लोग भोंसले कहलाने लगे थे। इनका प्रामाणिक विवरण शिवाजी के पितामह सम्भा जी से शुरू होता है।[1] सम्भाजी के लड़के बापजी भोंसले का जन्म सन् 1533 ई0 में हुआ। बापजी के मालोजी और विठोजी नामक दो पुत्र थे। उनका जन्म सन् 1550 और 1553 ई0 में हुआ था। आरम्भ में दोनों भाई जाधन राव नामक एक सरदार के पास बारगीर बन कर रहने लगे। मालोजी शरीर से पूरा ऊँचा आदमी था। इस कारण उसके पास घोड़े न टिकते थे। अन्त में जाधव राव ने उसे अपने घर पर द्वार पाल की नौकरी दी। परन्तु वह महात्वाकांक्षी और कृर्तृत्वान व्यक्ति था। द्वारपाल की नौकरी छोड़कर वह फलटण के सरदार निम्बालकर के पास गया। वहाँ उसने बहुत नाम कमाया, जिससे जगपाल राव निम्बालकर ने अपनी बहन दीपाबाई का विवाह उससे कर दिया।[2] मालोजी की होशियारी देखकर सन् 1577 ई0 में जाधवराव ने निजामशाह से उसकी भेंट करवा दी, और सिफारिश करवा के सरकारी सेना में नौकरी, सिलेदारी दिलवा दी। इसके बाद वह अपनी निजी-पागा रखकर सरकारी नौकरी करने लगा।[3] उसके भाई विठोजी के आठ पुत्र हुये, मगर वह सन्तान हीन ही था। उसकी स्त्री दीपाबाई ने अनेक मन्नते मानी। उसी में नगर नामक शहर के पीरशाह शरीफ मुसलमान साधु की यह मन्नत भी थी कि यदि मेरा पुत्र होगा तो मैं उसको आपको ही दूँगी। इसके बाद सन् 1594 ई0 में उसको पहला पुत्र हुआ और उसका नाम उस पीर के नाम से शाह जी रखा गया।[4] फिर सन् 1597 ई0 दूसरा पुत्र हुआ। उसका नाम शरीफ जी रखा गया। शाह जी का विवाह जाधव राव की पुत्री जीजाबाई से हुआ। इस बीच में मालोजी ने

1- किनकैड, ए हिस्ट्री आफ् मराठा पिपुल, भाग 1, पृ0 153.

2- गोपाल दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 58.

3- महादेव गोविन्द, रानाडे, राइज आफ् मराठा पावर, पृ0 82.

4- भीम सेन विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ0 20.

अपनी अच्छी उन्नति कर ली थी। वह पाँच हजारी मनसबदार हो गया था। वह राणा का खिताब पा चुका था और शिवनेर और चाकण के किले तथा पूना और सूपा के दो परगने जागीर में उसने प्राप्त कर लिये। थोड़े समय में वह इतना महत्वपूर्ण हो गया कि मलिक अम्बर को उसकी सहायता की आवश्यकता जान पड़ी। उसकी बहुत-सी जागीर मुगलों तथा आदिलशाही राज्य में थी, परन्तु अपनी योग्यता से उसने अपनी सब जागीर का बचाव किया और अपने घराने को समृद्ध बनाया।[1] सन् 1619 ई0 में उसकी मृत्यु हुई।

मालोजी के बाद उसके पुत्र शाहजी ने भोसले वंश का नाम और बढ़ाया। पिता के मरने पर शीघ्र ही वह मनसबदार हो गया। मालिक अम्बर ने जब मुगलों को हराया था, उसमें शाहजी का भी काफी भाग था। इस लड़ाई के बाद शाहजी ने जिस युद्ध में विशेष नाम कमाया और पराक्रम दिखलाया, उसे भववड़ी का युद्ध कहते हैं।[2] यह सन् 1624 ई0 में हुआ था। इस युद्ध के बाद भाई-बन्धुओं तथा मलिक से बचने के कारण शाहजी बीजापुर दरबार में चला आया, जहाँ उस समय इब्राहिम आदिलशाह राज्य करता था। वहाँ उसने अनेक पराक्रम करके खूब नाम कमाया। इस समय बीजापुर और निजामशाही के बीच युद्ध चल रहा था। सम्भवतः इसी समय शाहजी ने कर्नाटक तथा केरल पर भी चढ़ाई की। इब्राहिम के बाद उसका लड़का सुलतान महमूद तख्त पर बैठा। इस समय बीजापुर में बड़ी गड़बड़ मची; अनेक सरदारों का अपमान भी हुआ।

इसी समय शाहजहाँ ने निजामशाही को जीतने के लिये फौज भेजी। सन् 1627 ई0 में मलिक अम्बर की मृत्यु हो चुकी थी।[3] उसके बाद उसका पुत्र फतेह खाँ वजीर हुआ। परन्तु वजीर और शाह में न पटी। शाह ने फतेह खाँ

1- तारीखे फिरिस्ता, पृ0 212.

2- सर यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 14.

3- तुजुके जहाँगीरी, सैयद् अहमद, पृ0 124.

को कैद में डाल दिया, लखुजी जाधव राव पहले मुगलों से जा मिला था। फतेह खाँ के कैद में होने पर वह निजामशाही में वापस आया। परन्तु शीघ्र ही मारा गया। यह बात सुनकर शाही जी पूना की ओर चला गया, और वहाँ आदिलशाह के राज्य में गड़बड़ मचाने लगा।[1] बीजापुर दरबार ने मुरार जागदेव नामक सरदार को उससे लड़ने को भेजा। तब वह एक स्थान से दूसरे स्थान को भागने लगा। इसी बीच शिवनेरी में उसने अपने लड़के सम्भा जी का विवाह किया और अपने समधी के सम्मति से अपने गर्भवती स्त्री जीजाबाई को शिवनेरी में रख दिया।[2] उसने देखा कि इधर आदिलशाह की सेना मेरे पीछे पड़ी है और निजामशाही में रहना किसी प्रकार सुरक्षित नहीं है। इसलिये उसने मुगल सेनापति आजम खाँ के पास सन्देश भेजा कि यदि मुझे मुगल बादशाह का आश्रय मिले तो मैं आपके पास आना चाहता हूँ। शाहजहाँ ने तुरन्त ही उसे पाँच हजार का मनसबदार बना दिया।[3] दरियाँ खाँ और खानेजहाँ नामक दो मुगल सरदार इस समय बागी बन कर निजामशाही में चले आये थे। दरिया खाँ का पीछा करने का काम शाहजी को करना पड़ा। इसी बीच जीजाबाई ने शिवनेरी में एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम शिवाजी रखा गया। दरिया खाँ के मारे जाने पर शाहजी शिवनेरी को वापस आया, इस समय तक शिवाजी का अन्न-प्राशन संस्कार भी हो चुका था।[4]

इधर मुगलों का हमला दिनों दिन बढ़ता देखकर निजामशाह ने फतेह खाँ को कैद से मुक्त किया और फिर से वजीर बनाया। परन्तु अब वजीर ने शाह को कैद में डालकर शीघ्र ही मरवा डाला। उसके बाद एक लड़के को गद्दी पर

1- गोपाल दामोदर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 60.

2- सर देसाई, मराठी रियासत, भाग 1, पृ0 138.

3- द0 वि0 आपटे, महाराष्ट्र इतिहास मंजरी, पृ0 59-60.

4- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 48.

बैठया और स्वयं मुगलों से दोस्ती करने की सांठगांठ करने लगा। मुगलों का हमला देखकर आदिलशाह को अब अपनी सूझी, क्योंकि निजामशाही के नष्ट होने पर बीजापुर के राज्य पर उनका हमला होने का डर स्पष्ट दीख पड़ा।[1] उधर शाहजी का मुगलों से मन मुटाव हो गया और वह उन्हें छोड़कर चला आया। इस समय निजामशाही को बचाने का बहुत प्रयत्न हुआ। उसने बीजापुर से मिलता की सन्धि की और मुगलों से लड़ने के लिये फौज एकत्र की। इसपर मुगलों की बड़ी भारी फौज दिल्ली से आयी। शाहजी ने मुगल सेनापति महावत खाँ को बुरहानपुर तक खदेड़ दिया, परन्तु दक्षिण के मुसलमान सरदार एक हिन्दू सरदार का नेतृत्व मानने को तैयार न थे। इसी समय बीजापुर दरबार में बड़ी गड़बड़ पैदा हुई, जिसके फलस्वरूप बीजापुर वाले मुगलों से मिल गये और अन्त में सन् 1633 ई0 में निजामशाही का अन्त हो गया।[2] निजामशाह का अन्त होने पर भी शाह जी ने उसके पुनरूद्धार का प्रयत्न नहीं छोड़ा। निजामशाह वंश के मुर्तिजा नामक एक लड़के को पेमगिरी में गद्दी पर बैठाकर शाहजी स्वयं कारबार देखने लगा। उसने कोंकण का बहुत सा भाग जीत लिया। यह देखकर शाहजहाँ स्वयं दक्षिण में आया।[3] शाहजहाँ के आगमन से अपनी स्थिति कमजोर पड़ता देखकर शाहजी ने बीजापुर से पुन: मित्रता करली। शाहजहाँ ने आदिलशाह को शाहजी का साथ छोड़ने की चेतावनी दी किन्तु आदिलशाह ने उसकी बात नहीं मानी।[4] इसलिए मुगलों ने अपनी सेना के अब कई भाग किये और शाहजी का पीछा करना शुरू किया तथा बीजापुर के राज्य में घुस गये।[5] अन्तत: आदिलशाह

1- सर यदुनाथ सरकार, हाउस आफ शिवाजी, पृ0 68.

2- जे0एन0 सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम, पृ0 128.

3- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 85.

4- वी0डी0 सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 28.

5- गोपाल, दामोदर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 62-63.

ने मुगलों से सन्धिकर ली । हताश शाहजी कुछ दिनों तक इधर-उधर भागता फिरा, किन्तु अन्त में उसने शाहजहाँ के समक्ष समर्पण करके उसकी शरण प्राप्त की ।[1] मुगल सम्राट ने पूना और सूपा के परगने उसके पास बने रहने दिये । इसके बाद शाहजी पुन: बीजापुर की नौकरी में चला गया ।[2] इस प्रकार निजामशाही के पुनरूद्धार या शाहजी का प्रयास निष्फल सिद्ध हुआ ।

शिवाजी का अभ्युदय

विजय नगर के विनाश के बाद कर्नाटक में कई छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गये थे । ये राज्य आपस में संघर्षरत रहते थे । बेदनूर में बीरभद्र का शासन था । जब केङ्ग· ने बीरभद्र के विरूद्ध बलवा किया, तब बीरभद्र ने उसके विद्रोह को कुचलकर उसकी जागीर जब्त कर ली ।[3] इसपर केङ्ग· नायक ने बीजापुर दरबार से सहायता माँगी, बीजापुर दरबार ने उसकी सहायता करना स्वीकार कर, शाहजी और रण दुल्लार खाँ को कर्नाटक भेजा । इस प्रकार बीजापुर की नौकरी में आने पर शाहजी को शीघ्र ही कर्नाटक पर हमले के लिए जाना पड़ा ।[4] इस चढ़ाई में मलिक रेहान नामक एक सरदार 4000 सवारों के साथ आया था । इन सबने मिलकर बीरभद्र के बेदनूर के किले को घेर लिया । अन्त में 30 लाख हूण देने की शर्त पर उसने बीजापुर वालों से संधि कर ली । इसमें 16 लाख उसने तुरन्त दे दिया और शेष 14 लाख हूण तीन किस्तों में देने का वादा किया ।[5]

1- सिंह तथा ओझा, मुगल कालीन भारत, पृ0

2- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 12·

3- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 132·

4- सर देसाई, मराठी रियासत, भाग 1, पृ0 216·

5- गोपाल, दामोदर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 65·

रणदुल्ला खाँ के जाने पर बाकी के हूण देने में बीरभद्र टाल-मटोल करने लगा और उसने केंग नायक पर फिर से हमला कर दिया । इसलिए बीजापुर से सेना आई और उसने वीरभद्र का सारा राज्य ले लिया ।[1] रणदुल्ला खाँ की इस चढ़ाई में बीजापुर ने बेंगलौर और शिरीन नाम के दो परगने ले लिये थे । इनकी देख-रेख शाहजी को सौंपी गई ।[2]

इस चढ़ाई के बाद शाहजी को श्रीरंगपट्टनम् के कण्डीनखनरस नामक राजा पर चढ़ाई करनी पड़ी । इस चढ़ाई के परिणाम स्वरूप कर्नाटक बालवार नामक भाग बीजापुर के राज्य में मिला लिए गये ।[3] इनमें से बेंगलौर, हुयेसकोटे, कोलार, दोड्ड, बालापुर और शीरीन जिस सूबे में शामिल थे, वह बालघाट सूबा शाहजी को जागीर के रूप में दे दिया गया ।[4] अब तक लोगों की यह समझ थी कि एकबार जीजाबाई को शिवनेरी के किले में शिवाजी के जन्म के पहले छोड़ने के बाद शाहजी ने कदाचित ही उसे अपने पास रखा । इसी बीच शाहजी ने मोहने सरदार की पुत्री तुकाबाई से विवाह कर लिया था ।[5] इसलिए माना जाता है कि जीजाबाई से शाहजी का प्रेम कम हो गया था, इस कारण से शाहजी ने जीजाबाई तथा शिवाजी को शिवनेरी में ही और फिर बाद को पूना में दादोजी कोंडदेव की देख-रेख में रख दिया था ।[6] परन्तु यह कल्पना "शिव-भारत" नामक ग्रन्थ से सत्य नहीं प्रतीत होती है । इस ग्रन्थ से यह ज्ञात होता

1- वी0एन0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 24.

2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 26.

3- सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 1, पृ0 22.

4- प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 40.

5- शतीशचन्द्र मित्तल, अ मराठा शक्ति का उदय, पृ0 48.

6- रावील्सन, शिवाजी द मराठा, पृ0 134.

कि शाहजी जब उपर्युक्त चढ़ाई के समय में गया, उस समय वह जीजाबाई और शिवाजी को अपने साथ ले गया था और ये दोनों शिवाजी के 12 वर्ष के होने तक शाहजी के पास ही रहते थे ।[1] शाहजी ने कर्नाटक की अपनी जागीर अपने बड़े लड़के सम्भा जी के नाम कर दी थी । और पूना की जागीर का थोड़ा सा हिस्सा, शिवाजी के नाम लिख दिया था । शिवाजी की उम्र 12 वर्ष की होने पर शाहजी ने जीजाबाई तथा कुछ अनुभवी नौकरों का साथ देकर उसे पूना भेजदिया । ऐसा करने के पीछे उसके मस्तिष्क में परिवार की सुरक्षा का विचार सर्वोपरि था । शाहजी के संभावित कोष से अपने परिवार को बचाने के लिए उन्हें पूना भेजना शाहजी को आवश्यक प्रतीत हुआ ।[2] इसी लिये उसने जीजाबाई और शिवाजी को पूना और सूपा की जागीर सम्भालने के लिए भेज दिया और सम्भाजी के साथ स्वयं कर्नाटक में रहने लगा ।

इस प्रकार शिवाजी का बचपन कुछ शिवनेरी में और कुछ कर्नाटक में बीता । शाहजी का अधिकांश समय लड़ाई में बीता था । इसलिए जन्म से ही शिवाजी का परिचय युद्ध की बातों और युद्ध सामग्री से होने लगा था । शिवाजी हाथी-घोड़े पर बैठना, तलवार, धनुष, भाला, बरछी आदि शस्त्रों का उपयोग करना तथा निशाना मारना बचपन से ही धीरे-धीरे सीखने लगा था । सात वर्ष की अवस्था होने पर शाहजी ने और लड़कों के साथ उसे भी गुरू के सुपुर्द कर दिया ।[3] गोविन्द सखाराम सर देसाई का मत है कि शिवाजी शिक्षित थे ।[4] श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने शिवाजी के साक्षर होने के प्रमाणस्वरूप साक्ष्य

1- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 40.

2- शतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 52.

3- सहस्त्रबुद्धे, छत्रपति शिवाजी, भाग 1, पृ0 36-37.

4- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 103.

प्रस्तुत किया है और बतलाया है कि उन्हें अनेक भाषाओं का ज्ञान भी था। औंछानरेश के अमूल्य संग्रहालय में शिवाजी द्वारा लिखे गये अक्षर यह प्रकट करते हैं कि शिवाजी को लिखने का ज्ञान था।[1] कदाचित शिवाजी अनपढ़ होते तो वे विशाल मराठा राज्य का संचालन इतने सुचारू रूप से नहीं कर पाते।[2] शिवाजी के बचपन, जीवन और व्यक्तित्व पर अनेक लोगों का प्रभाव पड़ा था, किन्तु सबसे अधिक वे अपनी माता जीजाबाई और गुरू दादा कोण्डदेव से प्रभावित थे। शिवाजी को प्रभावित करने वालों में समर्थ गुरू रामदास और स्वामी तुकाराम जैसे महान, वैष्णव संत भी थे। इस प्रकार योरोपीय इतिहासविदों का यह विचार कि शिवाजी अनपढ़ थे और बचपन से लूटमार में लगे रहते थे, सत्य नहीं माना जा सकता है।[3]

जीजाबाई एक महत्वाकांक्षी तथा स्वाभिमानी स्त्री थीं। उसने निजामशाही का अन्तिमकाल देखा था, और मुगल सेना ने जब शाहजी को एक सथान से दूसरे स्थान को खदेड़ा था, तब राज्य हीन होने का अनुभव भी उसने प्राप्त किया था। वह धर्म में विशेष श्रद्धा रखती थीं।[4] जीजाबाई स्वयं शिवाजी को रामायण, महाभारत, जैसे ग्रन्थों की कथायें सुनाया करती थीं। बाल्यावस्था में ही जीजाबाई ने मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण, धनुर्धर अर्जुन, महाबली भीम, बालवीर अभिमन्यु तथा सत्यवादी हरिश्चन्द्र की सत्कीर्तियों से परिपूर्ण गौरव गाथाएं सुना-सुना कर शिवाजी का हृदय महान हिन्दू जाति के विगत् गौरव से परिपूर्ण कर दिया था।[5] इनके फलस्वरूप उनके

1- दामोदर सातवलेकर, "श्री छत्रपति शिवाजी महाराज की राजनीति, अर्जुन - 2 सितम्बर, 1924 ई0, पृ0 8-12.

2- गोपाल दामोदर तावसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 67.

3- सर रिसर्च टेम्पल, बर्दप्लेस एण्ड कैण्डिल आफ मराठा पावर, पृ0 43; एवं जेम्स डगलस - ए बुक आफ बाम्बे, पृ0 18.

4- रानाडे, राइज़ आफ दि मराठा पावर, पृ0 28.

5- दामोदर सावरकर, हिन्दू पदपादशाही, पृ0 5.

हृदय में उसी प्रकार के उत्साह शौर्य और आशा के बादल घुमड़ने लग गये थे ।[1] यही करण है कि बड़े होने पर शिवाजी कोई भी कार्य करने के पहले अपनी माता से सलाह लिया करते थे ।[2] नि:सन्देह अनुभवी जीजाबाई एवं दादा कोण्ड देव में उचित सलाह देने की योग्यता थी [3] । दादा 'कोण्ड देव पहले हिगड़ी, बीबड़ी, देवुल गाँव आदि स्थानों का दरबारी था । पूना और सूपा की जागीर पाने पर शाहजी ने इसे उसकी व्यवस्था सौंप दी । शिवाजी ने युद्ध शिक्षा इसी के पास आने पर पायी ।[4] कोणदेव का निजी जीवन अनुसरणीय और प्रभाव कारक था । वह बहुत ईमानदार, धार्मिक तथा लोक-हितकारी व्यक्ति था । उसने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह बड़ी ईमानदारी से किया । शिवाजी ने राज्य प्रबन्ध की अनेक बातें उसीसे सीखी थी ।[5] इस प्रकार इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी पर कोण्डदेव का प्रभाव जीजाबाई के समान ही पड़ा था । जीजा-बाई और दादा कोण्डदेव के बाद शिवाजी के जीवन पर सन्त तुकाराम तथा समर्थगुरू रामदास का सर्वाधिक प्रभाव दिखायी देता है । सन्त तुकाराम से उनका सम्पर्क 1646 से 1649 ई0 के बीच हुआ । इस समय शिवाजी युवक हो चुके थे तथा उन्होंने स्वराज्य स्थापन के प्रयास प्रारम्भ कर दिये थे । तुकाराम ने अपने उमंगों द्वारा तत्कालीन परिस्थिति का यथार्थ चित्रण कर समाज में जागृति पैदा की थी ।[6] जब शिवाजी ने उन्हें भेंट देकर अपने यहाँ आमन्त्रित किया तो उन्होंने नौ अभंगों का एक पत्र लिखा जो "तुकाराम चरित" के नाम से प्रसिद्ध है ।[7]

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 24.

2- भीमसेन, बीर मराठे, पृ0 29.

3- वी0एन0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 32.

4- रानाडे, राइज़ आफ़ दि मराठा पावर, पृ0 70.

5- सर देसाई, राजा शिवाजी, पृ0 37.

6- मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 81.

7- रामचन्द्र पाकारकर, श्री तुकाराम चरित, पृ0 502-505.

सन्त तुकाराम के सिपाही बाने के 11 अभंग भी प्रसिद्ध है, जिसमें वीरत्व के गुणों का वर्णन किया गया है । एक अभंग में सन्त तुकाराम ने कहा है कि सिपाहियों को चाहिए की, आत्मरक्षा करें, परकियों को लटें, उनका सर्वस्व छीन लें, अपने ऊपर चोट न आने दे, शत्रु को अपना पता भी न लगने दें । ऐसा जो सिपाही होता है, दुनियाँ उसे अपना नाथ मानती है । तुका कहता है, ऐसे जिसके सिपाही हैं, वही तीनों लोकों का अमिट पराक्रमी सेना-नायक है ।[1] तुकाराम जी के इस प्रकार के तरंगों का शिवाजी के ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा था । इसी प्रकार शिवाजी पर समर्थ गुरू रामदास का भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था । निःसन्देह समर्थगुरू रामदास शिवाजी की भाँति महाराष्ट्र के जन-जीवन में व्याप्त है । उनकी अमर रचना 'दासबोध' सर्वाधिक प्रचलित है । प्रो० श्रीराम शर्मा ने उनकी तुलना सन्त दामोनिक पिटर डी अर्मोंठ, व इंगनेशियस लोयोल से की है ।[2] यह कहा जा सकता है कि माँ जीजाबाई ने शिवाजी के बचपन को नई-नई भावनाओं से श्रृंगार किया था ।[3] दादा कुण्डदेव ने उनके किशोरावस्था में उन भावनाओं को वीरता के साँचे में ढाला था और राजगुरू रामदास ने वीरता के साँचे में ढले हुए उनको राष्ट्रीयता और धार्मिकता की खराद पर चढ़ाकर चमका दिया था ।[4]

इतिहासकार राजवाड़े ने मराठा उत्थान का श्रेय स्वामी रामदास को दिया है । उनका कहना है कि रामदास स्वामी के 12 अनुयायी चारों ओर फैले हुए थे । उन्होंने उनके विचारों तथा कार्यों का प्रचार महाराष्ट्र भर में किया । शिवाजी ने समर्थगुरू रामदास से प्रेरणा पाकर स्वराज्य की स्थापना की थी ।[5]

1- शतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 84.

2- एस०आर०_शर्मा, द फाउण्डींग आफ दी मराठा फ्रीडम, पृ० 284.

3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ० 285.

4- राजेन्द्र सिंह गौड़, दक्षिण के देशरत्न, पृ० 15.

5- तर्क तीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी (स०), राजवाणी - लेख संग्रह (संकीर्ण लेख संग्रह), पृ० 258-59.

यदुनाथ सरकार के अनुसार शिवाजी महत्वपूर्ण कार्य समर्थगुरू रामदास से पूछकर ही करते थे। उनके मतानुसार रामदास शिवाजी के लिए वही स्थान रखते थे जो डैलफाई की भविष्यवाणी ग्रीक वासियों के लिए थी। इन्होंने समर्थगुरू माना है।[1] लाकाकोघ और किलुसकर ने लिखा है कि 1672 ई0 से पूर्व शिवाजी तथा रामदास की प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई थी।[2] वास्तव में महाराष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना का जितना श्रेय मराठों के वीरता एवं एकता को देते हैं उतना ही अथवा उससे भी अधिक समर्थ रामदास के उपदेशों को देना होगा। शाहजी के काल में मराठा लोग यवनों की सेवा करना बुरा नहीं समझते थे। रामदास ने इस देशघाती तथा राष्ट्र-घाती विचार प्रवाह को मोड़कर शिवाजी को उच्चतम् राष्ट्रीयकरण की सलाह दी थी।[3] इस प्रकार शिवाजी का उदय महाराष्ट्र के अनेक धर्मगुरूओं का परिणाम था। शिवाजी ने अनेक लोगों से प्रभावित होकर ही हिन्दवी स्वराज्य स्थापित करने की प्रतिज्ञा की थी। मराठा राज्य की स्थापना हिन्दू राज्य की स्थापना थी और इस कार्य को शिवाजी ने कर-के दिखाया था।

मराठा राज्य की स्थापना -

मराठा राज्य की स्थापना का विचार सर्व-प्रथम किसके मन में जागृत हुआ था, इसके विषय में विद्वाना एकमत नहीं है, किन्तु अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि महाराष्ट्र में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना शिवाजी के पिता शाहजी की थी।[4] जबकि दूसरे विद्वानों का कहना है कि स्वराज्य

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 382.

2- लाकाकोघ एण्ड सन0एस0 केलुस्कर, लाइफ आफ शिवाजी, पृ0 538.

3- तर्क तीर्थ लक्ष्मणशास्त्री, राजवाणी लेख संग्रह (ऐतिहासिक प्रस्तावना), पृ0210.

4- तर्क तीर्थ लक्ष्मणशास्त्री, जोशी, (सं0) राजवाड़े लेख संग्रह, (राधामाधव विलास चम्पू), पृ0 224.

की सारी कल्पना शिवाजी के ही मस्तिष्क की उपज थी और उसने चुपचाप इस कार्य की तैयारी की ।[1] वास्तव में मराठा राज्य की स्थापना शिवाजी ने ही की थी, किन्तु इसकी सारी पृष्ठभूमि इसके पिता शाहजी के समय में ही तैयार हुई थी ।

मराठा राज्य की स्थापना तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की उपज थी । दक्षिण भारत में विद्यमान मुसलमानी राज्य हिन्दुओं के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते थे जिस प्रकार उत्तर भारत में मुगलों ने किया था । उनकी धार्मिक कट्टरता ने हिन्दुओं में एक प्रकार का विक्षोभ पैदा कर दिया था[2] । अत: वे विद्रोह के लिए प्रयत्नशील रहते थे । मराठा विद्रोही अपने नायक शाहजी के नेतृत्व में इधर-उधर लूट-पाट करते थे । अन्त में दादा कोण्डदेव की सलाह से शाहजी ने मावल में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का विचार किया ।[3] अफजल खाँ, मालोजी घोंखडे आदि बीजापुरी सरदार द्वेष के कारण शाहजी का पैर कर्नाटक में टिकने नहीं देते थे । संभवत: इसी विचार से स्वदेश में अर्थात् सहयाद्रि से लगे हुए भाग में कहीं न कहीं स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने का विचार शाहजी के मन में आया था ।[4]

वास्तव में शाहजी ने अपनी सामर्थ्य से महाराष्ट्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था । 1624 ई0 में भातवड़ी का युद्ध तथा 1636 ई0 में बीजापुर राज्य में जाना उनके जीवन की दो मुख्य विभाजक घटनाएं हैं । भातवड़ी के युद्ध में वे प्रथम श्रेणी के सैनिक के रूप में सामने आये तथा 1636 ई0 में निजामशाही का साथ छोड़ गये । 1636 ई0 से पूर्व उसने निजामशाही के टूटते हुए महल को बनाये रखने की कोशिश की थी । यही भूमिका बाद में सिंन्धियाओं ने दिल्ली में मुगल बादशाहों के साथ निभाई । इस प्रकार

1- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डींग्स् आफ् दि मराठा फ्रीडम, पृ0 107-108·
2- रानाडे, राइज़ आफ् दि मराठा पावर, पृ0 17-18·
3- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 3·
4- गोपाल दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 76·

शाहजी स्वयं राजा न बनकर 'सम्राट निर्माता' बने । संभवत: अभी स्वयं राजा बनने का समय नहीं आया था ।[1] डा० शर्मा का कहना है कि शाहजी ने अपने पुत्र के लिए राजनैतिक तथा सैनिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी ।[2]

प्रसिद्ध मराठा इतिहासकार राजवाड़े ने लिखा है कि स्वराज्य स्थापना का स्वप्न चाहे यह धुंधला और अल्प ही क्यों न हो; सर्वप्रथम जिसने देखा वह व्यक्ति शाहजी भोसले ही था ।[3]

वास्तव में तथ्यों की विवेचना तथा घटनाओं की स्वाभाविकता को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि मराठा राज्य की स्थापना शिवाजी ने की थी, तथापि शिवाजी के पूर्व शाहजी ने 1629 ई० से 1661 ई० के बीच जीवन में अनेक बार स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया था ।[4] 1629 ई० में मुगल सुबेदार खानेजहाँ लोदी के विद्रोह के समय शाहजी ने प्रगट रूप में स्वराज्य का प्रयत्न किया किन्तु शाहजहाँ व बीजापुर के आदिलशाह के संयुक्त मोर्चे के कारण सफल नहीं हो सका ।[5]

1633 ई० में उसने निजामशाही के नाम मात्र के शासक को बैठाकर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का पुन: प्रयत्न किया, परन्तु इसबार भी सफलता नहीं मिली । प्रच्छन्न स्वराज्य का यह प्रयत्न शाहजहाँ द्वारा विफल कर दिया गया ।[6] सन् 1648 ई० तक कर्नाटक प्रदेश में हिन्दू नायकों के साथ उदार

1- शतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 69.

2- एस०आर० शर्मा, द फाउण्डिंग्स् आफ् दि मराठा फ्रीडम, पृ० 107-108.

3- तर्कतार्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, (सं०) राजवाड़े लेख संग्रह (राधा माधव विलास चम्पू), पृ० 224.

4- यदुनाथ सरकार, शिवाजी का राजवंश, पृ० 28-29.

5- मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 70.

6- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ० 90-91.

व्यवहार कर उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया किन्तु वह स्वयं यह जानता था कि उनका प्रयास स्थायी नहीं होगा। अत: कर्नाटक में माण्डलिक स्वराज्य का तीसरा प्रयत्न भी सफल न हो सका। उसका चौथा प्रयत्न बंगलूर में रहते हुए शिवाजी के माध्यम से हुआ था। इस प्रयास में वे सफल हुए थे।[1] सर देसाई का कहना है कि शिवाजी को प्रेरित करने का एकमात्र श्रेय शाहजी को ही था।[2] इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शाहजी ने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के लिए शिवाजी की भूमिका तैयार कर दी थी।

शिवाजी की दिग्विजय एवं मराठा साम्राज्य का विस्तार

हिन्दवी स्वराज्य -

शाहजी की प्रेरणा तथा अपने अन्य सहयोगियों के योगदान से शिवाजी ने जिस मराठा साम्राज्य की स्थापना की वह "हिन्दवी स्वराज्य" के नाम से जाना जाता है।[3] वस्तुत: शिवाजी केवल महाराष्ट्र निवासियों के ही नेता नहीं थे। अपितु वे दक्षिण से उत्तर-भारत तक की हिन्दू जनता की आकांक्षाओं को मूर्तरूप देने के लिए संघर्षरत एक शूरवीर और पराक्रमी जन-नायक भी समझे जाते थे। भारतीयों के हृदय में आशा की एक ऐसी किरण प्रस्फुटित हो गई थी, जिसके आलोक में उसे यह दिखाई देने लगा था कि शिवाजी ही वह पुरुष है जिसके हाथों हिन्दू जाति और हिन्दुस्तान का उद्धार संभव है।[4]

1- लक्ष्मण शास्त्री जोशी, राजवाड़े लेख संग्रह, पृ0 229-31.

2- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 94-95.

3- विनायक दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 7-8.

4- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 42.

महाराष्ट्र की सीमा के बाहर निवास करने वाली विधर्मी सत्ता से त्रस्त हिन्दू जनता की इस मनोदशा को शिवाजी ने समझा । शिवाजी का सर्वस्व हिन्दुत्व की रक्षा हेतु समर्पित था । अत: उसका शान्त रहना ऐसे में संभव नहीं था ।[1] प्रसिद्ध मराठा सेनापति हम्मीर राव ने बीजापुर की सेना को अनेक युद्धों में परास्त किया और हिन्दुओं को मुक्ति दिलाई ।[2]

16 वर्ष की अल्पायु में ही शिवाजी ने पूना और सूपा की जागीरों को समुचित प्रशासन व्यवस्था प्रदान की एवं अपने अधीन मावलो §जिलों§ को भी पूर्ण-रूपेण संगठित कर लिया । इसके बाद अपने कतिपय चुने हुए प्रमुख वीर सहयोगियों की सहायता से उसने अपने प्रदेश के तोरण एवं अन्य सुप्रसिद्ध दुर्गों पर धावा बोलकर प्रचण्ड शौर्य और निपुणता के साथ शत्रुओं को परास्त किया ।[3] सेनापति अफजल खाँ के नेतृत्व में युद्धरतावीजापुर की सेनाओं को पराजित करने के बाद शिवाजी ने दक्षिण स्थित मुगल शक्ति को भी चुनौती देना आरम्भ कर दिया ।[4] शिवाजी का रणकौशल चातुर्यपूर्ण था । उसने सहसा आक्रमण करके शत्रु को हानि पहुँचा कर हटजाने की छापामार युद्धनीति अपनाई । नि:संदेह शिवाजी की युद्ध-नीति का मराठा प्रदेश में मुगल सेनापतियों के पास कोई जबाब नहीं था ।[5] युद्ध-स्थल में एक के बाद पुन:-पुन: मिलने वाली दूसरी पराजय ने शत्रु दलों का साहस तोड़ दिया एवं उसके मन में ऐसा भय और आतंक व्याप्त हो गया कि अन्तत: मुगल सम्राट् औरंगजेब ने भी कुछ समय के लिए

1- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डींग्स आफ दि मराठा फ्रीडम, पृ0 57.

2- रानाडे, राइज़ आफ़ मराठा पावर, पृ0 103.

3- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 47.

4- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, पृ0 27.

5- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 105.

युद्ध-विराम में ही बुद्धिमत्ता देखी ।[1] उसने तदुपरान्त शिवाजी को प्रलोभनों के भ्रमजाल में फंसाने का फैसला किया, परन्तु औरंगजेब की चालों को शिवाजी भली-भाँति समझता था । उसने औरंगजेब की आशा को निराशा में परिणत कर दिया ।[2] शिवाजी आगरा दुर्ग के कारागार से सुनियोजित योजना के द्वारा सकुशल निकलने में सफल हुआ और रायगढ़ दुर्ग में पहुँचकर उन्होंने पुन: मुगलों से तुमुल संग्राम का सिंहनाद कर दिया । युद्ध का क्रम पुन: प्रारम्भ हुआ और सिंहगढ़ दुर्ग पर पुन: हिन्दुत्व स्वर्णगैरिक की पताका फहरा उठी ।[3] शिवाजी के कई अन्य सेनापतियों ने भी मुसलमान सैनिकों के बढ़ते हुए हौसले परास्त कर दिये और यश अर्जित कर दिखाया । अन्त में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक कराकर हिन्दू-धर्म और सभ्यता का संरक्षक अर्थात् क्षत्रपति बनने में ही स्वहित के दर्शन किये ।[4] वस्तुत: विजयनगर के वैभवशाली हिन्दू साम्राज्य के पतन के उपरान्त किसी भी हिन्दू शासक में यह साहस नहीं हो पाया था कि वह स्वतन्त्र छत्रपति के रूप में राजमुकुट से अपने शीश को सुशोभित कर सके ।[5] शिवाजी द्वारा किये गये राज्याभिषेक ने मुसलमानों के साम्राज्य विस्तर की प्रवृत्ति को पद-दलित कर दिया ।[6] राज्याभिषेक के बाद शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने जितने भी युद्ध किये प्राय: उन्हें सफलता मिली । मुगल साम्राज्य इसके पश्चात् पतन की ओर अग्रसर होने लगा ।[7] औरंगजेब ने साम्राज्य निर्माण

1- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 11·
2- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम, पृ0 152·
3- सहसबुद्धे, छत्रपति शिवाजी, भाग 1, पृ0 142·
4- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 60-61·
5- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 12·
6- पी0डी0 गुप्ता; एम0एल0 शर्मा, मध्यकालीन भारत, पृ0 343·
7- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 28·

का विशेष प्रयास किया, किन्तु उसे प्राय: सर्वत्र असफलता मिली । शिवाजी के नेतृत्व में मराठा साम्राज्य का निर्माण हुआ और एक बार पुन: हिन्दुओं की विजय पताका फहराने लगी ।[1]

महाराष्ट्र देश की प्राकृतिक दशा ने भी मराठा जाति के राज्य निर्माण में विशेष योगदान दिया । वास्तव में इस देश की उत्तर और पूर्व में विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ फैली हुई है तथा पश्चिम में पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ हैं । इस कारण यह देश बड़ा सुरक्षित है ।[2] भूमि कंकरीली पथरीली है और वर्षा भी कम होती है । खेती-बारी की स्थिति अच्छी नहीं है । जनसंख्या कम है किन्तु यहाँ के लोग अत्यन्त परिश्रमी होते हैं ।[3] इस प्रकार उनका चरित्र बहुत सीमातक भौगोलिक परिस्थितियों के कारण बना है ।

दिग्विजय एवं साम्राज्य विस्तार -

हिन्दवी स्वराज्य स्थापना तथा उसका विस्तार शिवाजी के अनुभवों तथा कार्यकुशलता का परिणाम था । वास्तव में शिवाजी जब 19 वर्ष के थे, तभी से उनके मस्तिष्क में स्वराज्य स्थापन तथा उसके विस्तार की योजना उनके मस्तिष्क में विद्यमान थी । उन्होंने अपना राजनैतिक लक्ष्य निर्धारित कर लिया था ।[4] 19 वर्ष की अवस्था तक उनके पास केवल पूना की पैत्रिक जागीर ही थी । किन्तु उनके पास एक भी किला नहीं था । सर्वप्रथम उन्होंने कुछ किलों पर आधिपत्य जमाने का विचार किया था ।[5] शिवाजी के योजना

1- सावरकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 14.

2- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 22.

3- बाम्बे गजेटियर, पृ0 47.

4- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डिग्स आफ दि मराठा फ्रीडम, पृ0 137-38.

5- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 104.

का श्रीगणेश तोरण दुर्ग के आधिपत्य से हुआ । यह किला यद्यपि बहुत छोटा था तथापि पूना के दक्षिण-पश्चिम में स्थित होने के कारण सामरिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था ।[1] किले की दिवारें बड़े-बड़े अनगढ़े पत्थरों से बनी हुई थी । इसलिए बरसात के दिनों में यहाँ की रहने वालों के लिए अत्यधिक कष्टदायक था । चक्करदार पहाड़ियों के रास्ते किले तक पहुँचने का मार्ग बहुत दुर्गम-सा हो जाता और किले में रहने वाले तो कभी-कभी भगवान् के सहारे ही छोड़ दिए जाते ।[2] इस किले की तरफ बीजापुर के शासक का भी कोई ध्यान नहीं था । किले का नायक एक साधारण-सा मुसलमान था ।[3] कहा जाता है कि शिवाजी ने एक रात्रि को किला जीतने की योजना बनाई और अपने मित्रों की एक छोटी-सी टोली को लेकर सीधे किले में पहुँच गये । बिना किसी संघर्ष के शिवाजी ने किले के मुख्य भाग पर भगवा झण्डा लहरा दिया ।[4] टूटे-फूटे स्थानों की मरम्मत करवाई और ऐसा कहा जाता है कि यहाँ उन्हें जमीन में गड़ा हुआ दो लाख हूण भी प्राप्त हुआ । जिसे दैवी सहायता समझा गया । किले का नाम प्रचण्डगढ़ रखा गया, लेकिन यह नाम ज्यादा प्रसिद्ध नहीं हुआ ।[5]

तोरण किले से जो धन प्राप्त हुआ वह तोरण से पाँच मील पूर्व की ओर गुरूमदेव के पहाड़ पर एक और निर्माण कार्य में लगाया गया । ऐसा कहा जाता है कि इस पहाड़ी पर एक अधूरा किला पड़ा हुआ था ।[6] शिवाजी ने

1- गोपाल दामोदर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ० 104.
2- सर देसाई, राजाशिवाजी, पृ० 51.
3- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम, पृ० 60.
4- एस०आर० शर्मा, द फाउण्डिंग्स आफ् मराठा फ्रीडम, पृ० 156.
5- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 38.
6- प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ० 37.

इसकी दिवारों को और ऊँचा किया और इसे एक मजबूत किला बनाया तथा इसका नाम राजगढ़ रख दिया गया ।[1]

इस तरह राजगढ़ को केन्द्र बनाकर और आस-पास के छोटे-बड़े किले शिवाजी ने जीतने प्रारम्भ किये । पूना के पश्चिम में पौड़ घाटी है वहाँ के देशमुखों के अधीन कुंवारी गढ़ था, बिना खन-खराबा किये शिवाजी ने उस किले पर भी अपना अधिकार जमा लिया ।[2] इन छोटे-बड़े किलों को जीतते हुए शिवाजी ने इन किलों की सुव्यवस्था की, युद्ध सामग्री और शस्त्र इकट्ठे किये ।[3]

तोरण के दुर्ग तथा अन्य छोटे-मोटे दुर्गों की विजय से आस-पास के मुस्लिम प्रदेशों में बेचैनी हुई । शिवाजी के इन आक्रामक प्रयासों की शिकायतें बीजापुर के दरबार तक पहुँची ।[4] स्वयं दादा कोण्डदेव को भी अच्छा न लगा । उन्होंने शिवाजी के पिताजी को भी पत्र लिखा था, जिसमें आने वाली विपत्तियों के बारे में शाहजी को चेतावनी थी ।[5] लेकिन शाहजी ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था । शिवाजी भी बीजापुर दरबार को अभी नाराज नहीं करना चाहते थे, क्योंकि एक तो उनके पिता बीजापुर के दरबार में नौकरी करते थे । दूसरे शिवाजी अभी शक्तिशाली भी नहीं थे । शिवाजी ने अपने कार्यों को उचित बतलाते हुए अपना एक दूत बीजापुर भेजा ।[6] राजभक्ति का

1- जोशी श्रीपाद, बीर शिवाजी, पृ0 82·
2- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज़ आफ़ द मराठा पावर, पृ0 134·
3- एस0एन0 सेन, द मिलिट्री सिस्टम आफ़ द मराठाज़, पृ0 39-40·
4- डफ, हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़, भाग 1, पृ0 364·
5- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासाची साधनें, भाग , पृ0 28·
6- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 84·

नाम लेते हुए यही कहा गया है कि तोरण का दुर्ग बीजापुर राज्य की भलाई के लिए ही लिया गया है । किले का नायक अच्छा नहीं था इसलिए उसपर आधिपत्य किया गया है । शिवाजी ने वफादारी का आश्वासन दिया तथा इस जीते हुए प्रदेश का कर भी अधिक देने का वायदा किया । बीजापुर के कुछ मुख्य दरबारियों को रिश्वत भी दी गई ताकि वे तोरण दुर्ग से प्राप्त धनराशि के बारे में अधिक चर्चा न करें और बीजापुर दरबार में शिवाजी का पक्ष लें ।[2] शिवाजी ने 1647 ई0 में कोण्डाना का विजय किया । इतिहासकारों में इस बारे में मतभेद है कि शिवाजी ने यह दुर्ग कब जीता ? कुछ इतिहासकार इसकी विजय तोरण दुर्ग से पूर्व मानते हैं ।[2] परन्तु प्रमाणों को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह दुर्ग 1647 ई0 में ही विजित किया गया था ।[3] यह किला पूना से दक्षिण-पश्चिम में ग्यारह मील पर स्थित है इस किले का रक्षक मियाँ रहीम महमूद नामक मुसलमान था, जिसकी अभी नियुक्ति हुई थी । इस किले को भी बिना रक्तपात किये शिवाजी ने प्राप्त किया था ।[4] ऐसा कहा जाता है कि मियाँ रहीम जब किले का चार्ज लेने गये तो उसने किले पर झण्डा लहराता देखा, उसने बीजापुर जाकर दुखी होकर यही समाचार दिया कि 'शिवाजी ने कोण्डाना जीत लिया है'।[5] कुछ इतिहासकारों के अनुसार मियाँ रहीम को इसके लिए रिश्वत देकर भगा दिया गया था ।[6] इस प्रकार हम

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम, पृ0 65.

2- वी0एम0 दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ0 287.

3- डा0 भगवान दास गुप्त, महाराज छत्रसाल, पृ0 34-35.

4- सर देसाई, राजा शिवाजी, पृ0 46.

5- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डिंग्स आफ् द मराठा फ्रीडम, पृ0 160.

6- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 107.

देखते हैं कि शिवाजी ने 1647 ई0 में कोण्डाना की विजय कर ली थी ।

इसी बीच ऐसी दो घटनाएँ हुईं जिसके कारण शिवाजी को अपने दुर्गों के अभियान में कुछ समय तक विश्राम लेना पड़ा था ।[1] इन घटनाओं में पहली घटना 1647 ई0 में दादा कुण्डदेव की मृत्यु और 1649 ई0 में शिवाजी के पिता शाहजी की बीजापुर के शासक द्वारा गिरफ्तारी थी । शिवाजी का इन घटनाओं से परेशान होना स्वाभाविक था ।[2]

वास्तव में शिवाजी शाहजी की गिरफ्तारी से एक असमंजस की अवस्था में पड़ गये थे । अतः उन्होंने अपने पिता को बचाने के लिए कूटनीति का मार्ग अपनाया था । मुगल बादशाह बीजापुर के शासकों के परम्परागत शत्रु थे । बीजापुर शासक के विरुद्ध कोई भी विद्रोह मुगल बादशाह की प्रसन्नता का कारण बनता था ।[3] शिवाजी ने दक्षिण के मुगल वायसराय शाहजादा - मुराद बख्श को एक पत्र लिखा जिसमें अपने आत्मसमर्पण तथा अपने पिता शाहजी की मुक्ति कराने की बात कही गयी थी । शाहजी को मुक्त कराने में शिवाजी को आंशिक सफलता मिली थी ।[4] सिंहगढ़ का किला देने पर शाहजी की मुक्ति हो गई थी । इस घटना के बाद शिवाजी ने पूना से 18 मील दूर पुरंदर का किला जीता । पुनः पूना के उत्तर में चाकण का प्रसिद्ध किला ले लिया । सूपा का किला भी पूना के निकट ही था । एक अंधेरी रात में शिवाजी ने इस किले पर आक्रमण कर कब्जा कर लिया ।[5] पुनः

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी और उनका युग, पृ0 116.

2- तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 56.

3- यह मुस्लिम बादशाहों के पत्रों से स्पष्ट होता है - देखिए - सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी का राजवंश, पृ0 104-111.

4- गोपाल दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 104.

5- सर देसाई, मराठी रियासत, भाग 1, पृ0 72-73.

जावली के मोरे पर आक्रमण कर शिवाजी ने उस पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार 1656 ई0 तक शिवाजी का पूना जागीर के साथ पुरंदर, राजगढ़, तोरण आदि प्रमुख किलों पर पूर्ण हो गया था । इसके अतिरिक्त शिवाजी ने रोहिणा, तिकोना लोहगढ़, राजमाछी आदि के किले भी विजित कर लिये थे ।[1] इस प्रकार जावली के मोरे के पतन के साथ ही शिवाजी की सफलता का प्रथम चरण पूरा हुआ । वास्तव में जावली के मोरे के पतन से शिवाजी का राज्य स्थापित हो गया था । आस-पास की सम्पूर्ण जनता ने उन्हें उस प्रदेश का वास्तविक शासक स्वीकार कर लिया था ।[2] शिवाजी ने भी मोरे की तरह एक मुद्रा संस्कृत भाषा में बनवायी जिस पर लिखा था कि यह मुद्रा शाहजी के पुत्र शिवाजी की है जो प्रतिपदा की चंद्रकला के समान बारीक है, किन्तु दिनों-दिन बढ़ती हुई उत्तरोत्तर जगन्मान्य होने वाली है और यह लोक-कल्याण के लिए निर्मित हुई है ।[3]

शिवाजी ने विजयदशमी के पर्व पर व्यवस्थित रूप से शासन व्यवस्था प्रारम्भ कर दी थी । इसमें उन्होंने यह घोषणा की थी कि "राजगढ़ राजा का, प्रतापगढ़ जीजाबाई का, हिन्दू धर्म पर आधारित शिवाजी की शासन व्यवस्था का प्रारम्भ यहीं से माना जाता है ।

शिवाजी का राज्य विस्तार 1657 ई0 से 1658 ई0 तक निरंतर होता रहा । इन्होंने बीजापुर के कुछ प्रदेश जीतने की योजना बनायी और

1- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 111.

2- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डिंग्स आफ् द मराठा फ्रीडम, पृ0 160.

3- सर देसाई, राजा शिवाजी, पृ0 46 पर उद्धृत,-पृ0

प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णु विश्ववन्दिता ।
शाहसूनो: शिवस्यैषा मुद्रामुद्राय राजते ।।

नई महाराष्ट्र की सरकार ने अपनी स्थापना के पर्व पर ऐसी ही मुद्रा प्रचलित की, जिसपर लिखा था -

प्रतिपच्चन्द्र लेखेव वर्धिष्णु विश्ववन्दिता ।
महाराष्ट्रस्य राजस्य मुद्रामुद्राय राजते ।।

देखिए मित्तल, वही, पृ0 113, नोट 1.

यह प्रयत्न किया कि इसमें औरंगजेब बाधक न बने। 30 अप्रैल 1657 ई० को शिवाजी ने जुन्नार पर आक्रमण कर दिया। जुन्नार नगर पर रस्सी के सहायता से मराठे नगर में घुस गये तथा लूटमार की। इस लूट में मराठों को तीन लाख हूण, दो सौ घोड़े, कीमती वस्त्र तथा आभूषण मिले।[1]

शिवाजी ने अहमद नगर को भी लूटने की योजना बनायी। मीनाजी भोंसले ने तीन हजार घुड़ सवारों के साथ भीमा नदी को पार करके चमार, गुण्डा इत्यादि मुगलों के गाँवों को लूटा।[2] मराठों ने अहमद नगर के कुछ भाग को भी लूटा। किन्तु किले की अपार सम्पत्ति शिवाजी के हाथ न लग सकी। उन्हें 700 घोड़े कुछ हाथी तथा कुछ अमूल्य धन ही लूटकर संतोष करना पड़ा।[3] तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए 1657 ई० के मध्य में शिवाजी ने कुछ नये प्रदेशों को भी जीतने की योजना बनायी। उन्होंने पश्चिमी समुद्रतट पर बसे जंजीरा नामक प्रदेश पर, जिसके शासक सिद्दी कहलाते थे, अपना राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। पुन: कल्याण की विजय की तथा अपार धन सम्पत्ति अपने अधिकार में कर लिया।[4] 8 जनवरी, 1658 ई० को महौली के किले पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार कोंकड़ का प्रदेश शिवाजी के अधिकार में आ गया। पुन: शिवाजी ने सुरगढ़, वीरवाणी, घोषालगढ़, सुद्धागढ़, कनगोरी, रायरी आदि किलों पर आधिपत्य स्थापित किया।[5] कल्याण को केन्द्र मानकर शिवाजी ने पुर्तगाली बस्तियों

1- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ० 53.

2- रानाडे, राइज़ आफ़ दि मराठा पावर, पृ० 122.

3- डफग्राण्ड, हिस्ट्री आफ़ द मराठा, पृ० 205.

4- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 118-19.

5- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ० 135-36.

पर भी आक्रमण किया तथा असेरी के किले पर अधिकार कर लिया । पुर्तगालियों ने यहाँ वार्षिक-कर देना स्वीकार किया ।[1] इस प्रकार प्रायः सारा उत्तरी कोंकण शिवाजी के आधिपत्य में आ गया ।

औरंगजेब से प्रत्यक्ष को खतरा न होने पर शिवाजी ने बीजापुर के प्रदेश पर आक्रमण शुरू कर दिये । उन्होंने रामबाग तथा अड़गल तक का प्रदेश जीत लिया ।[2] शिवाजी के साथ साबन्त के प्रसिद्ध वकील पीताम्बर सेड़नी ने शिवाजी से एक समझौता किया । जिसमें यह व्यवस्था थी कि उडाल प्रदेश का आधा भाग स्वराज्य में मिला लिया जायेगा तथा तीन हजार सैनिक जब भी आवश्यकता होगी, स्वराज्य की सेवा में उपस्थित होंगे ।[3] इस सन्धि का परिणाम यह हुआ कि रूस्तम जमाल की लखम साबन्त पर आक्रमण करने की हिम्मत न हुई । इस संधि से शिवाजी के अधीन प्रदेश तथा प्रतिष्ठा भी बढ़ गयी। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवाजी का साम्राज्य चारो तरफ दूर-दूर तक फैल गया था ।

इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजनीतिक विश्रृंखलता तथा मुगलों की धार्मिक कट्टरता के परिपेक्ष्य में मराठा साम्राज्य का अभ्युदय हुआ । महाराष्ट्र के अनेक धार्मिक गुरूओं ने मराठा सरदार शाहजी भोंसले को 'हिन्दूपद पादशाही' राज्य की स्थापना के लिए न केवल प्रेरित किया अपितु उन्हें पर्याप्त सहायता प्रदान की । यद्यपि शाहजी भोसले अपने स्वराज्य स्थापन में सफल न हो सके, तथापि उन्होंने अपने पुत्र - शिवाजी के लिए मराठा राज्य की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार कर दी । शिवाजी ने अनेक बार अपने राजनीतिक कार्यकुशलता का जो परिचय दिया वह सम्राट औरंगजेब के लिए अत्यन्त भयंकर साबित हुआ । उसके अनेक दक्षिणी सरदार मारे गये

1- किनकैड, ए हिस्ट्री आफ् दि मराठा पिपुल्स, भाग 1, पृ० 46.

2- यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ० 70.

3- सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 120.

तथा मराठा राज्य का विस्तार उत्तर-भारत तक हो गया । मराठों का उत्कर्ष मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बना । सन् 1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के बाद जो भी मुगल बादशाह हुए वे केवल नाम मात्र के बादशाह हुए । उनके साथ शिवाजी के उत्तराधिकारियों का जो सम्बन्ध रहा उसका विवेचन अगले अध्यायों में किया गया है ।

द्वितीय अध्याय -

औरंगजेब के कालतक मुगल-मराठा सम्बन्ध एवं मुगल सम्राटों की मराठों के प्रति-नीति

द्वितीय अध्याय

औरंगजेब के कालतक मुगल-मराठा सम्बन्ध एवं मुगल सम्राटों की मराठों के प्रति-नीति

मुगलों के साथ मराठों के औपचारिक सम्बन्धों की शुरूआत शाहजहाँ के काल से मानी जाती है । शाहजहाँ ने दक्षिण भारत में मुगल सत्ता को विस्तार देने के लिए पर्याप्त प्रयास किये थे ।[1] इस समय तक मराठा साम्राज्य का अभ्युदय नहीं हुआ था । शिवाजी के पिता शाहजी एक छोटी-सी जागीर के सरदार थे ।[2] उनके नेतृत्व में मराठों का संगठन हो रहा था । शाहजहाँ के पश्चात् उसका पुत्र औरंगजेब पहले तो दक्षिण का सूबेदार था, किन्तु बाद में मुगल सम्राट बना ।[3] इसका शासन काल सन् 1658 ई० से 1707 ई० तक था ।[4] औरंगजेब के शासन काल में मुगल-मराठा सम्बन्धों में अनेक उतार-चढ़ाव दिखाई देते हैं । प्रस्तुत अध्याय में मराठों के अभ्युदय से औरंगजेब के समय तक मुगल-मराठा सम्बन्धों की विवेचना की गई है ।

शाहजी भोसले और मुगल सम्राट - शिवाजी के पिता शाहजी भोसले सन् 1628 ई० में बीजापुर के शासक मुहम्मदशाह की नौकरी करते थे । इसी समय इन्हें पूना की जागीर प्राप्त हुई थी ।[5] पूर्वी खान देश में पराजय के बाद शाहजी मुगलों की सेवा में चले गये थे, किन्तु अधिक दिनों तक नहीं रह पाये थे और दो वर्ष के अन्दर ही मुगलों की नौकरी छोड़ दी थी ।[6]

1- डा० सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी और उनका युग, पृ० 84.
2- डा० प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ० 38.
3- वी०एन० लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ० 30-31.
4- श्री वी०का० राजवाड़े, मराठ्यांचा इतिहासांची साधने, पृ० 58.
5- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज़ आफ़ द मराठा पावर, पृ० 40.
6- पादशाहनामा, आई०ए०, पृ० 497.

वास्तव में व्यवहारिक रूप से पूना पर बीजापुर की आदिलशाही का प्रभुत्व था। खानदेश में शाहजी की पराजय के बाद निजामशाह के षड़यन्त्रकारी दरबारी शाहजी की तलाश करने लगे थे। बीजापुर के आदिलशाह ने भी एक सेना शाहजी के दमन के लिए पूना भेज दी थी। शाहजी अपनी पत्नी जीजाबाई को शिवनेरी के किले में छिपाकर स्वयं भी लुकी-छिपी रहने लगे थे।[1] शिवनेरी के किले का स्वामी विजय राव था। इसकी कन्या जयन्ताबाई का विवाह शाहजी के बड़े पुत्र शम्भाजी के साथ होने वाली थी। बीजापुर के आदिलशाह के आदेश पर पूना उजाड़ दिया गया था। अत: इस परिस्थिति में शाहजी ने अपने श्वसुर के भाई जगदेव राव की तरह मुगलों की शरण में जाने का विचार किया था। पूना से उन्होंने मुगल बादशाह शाहजहाँ से शरण माँगी।[2] आज्ञा मिलने पर शाह जी नवम्बर, 1630 ई0 में 2000 घुड़सवारों के साथ मुगल सूबेदार की अधीनता में आ गये थे। आते ही शाहजी को 5000 घुड़सवारों का सेनापति बनादिया गया था।[3] और परिन्दा के निकट कुछ प्रदेश जीतने को कहा गया। शाहजी केवल दो वर्ष (1630-1632 ई0) तक मुगलों की सेवा में रहे थे। इस बीच उन्होंने 1631 ई0 में निजामशाही तथा आदिलशाही के कुछ प्रदेशों को जीता तथा लूटा था।[4] इस प्रकार की अराजकता तथा अपहरण के कार्यों को सुनकर बीजापुर के वजीर खवास खाँ ने बीजापुर से मुरारी पण्डित को एक बड़ी सेना के साथ उसे जड़ से उखाड़ने के लिए भेजा था। बसातिन-उस-सलातीन से स्पष्ट होता है कि मुरारी पण्डित ने पूना, इन्दौर तथा अन्य ग्रामों एवं शाहजी के निवास स्थानों को जला

1- गणेपाल दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 60; यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 28.

2- पादशाहनामा, आई0ए0, पृ0 331.

3- वही, पृ0 335.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 56.

दिया था ।[1] चूँकी शाहजी के पास रहने के लिए कोई स्थान नहीं था, इसलिए उसने भीमगढ़ की वीरानभूमि पर शाह गढ़ नामक एक दुर्ग बनवाया था ।[2] उसने इसे अपना गढ़ बनाकर पाँच-छ: हजार सैनिकों को एकत्र किया और पुन: पड़ोसी देशों तथा किलों को लूटना प्रारम्भ कर दिया ।

सन् 1632-33 ई0 के दो वर्ष महाराष्ट्र के इतिहास में अकाल तथा अत्यन्त संकट के समय थे । फतह खाँ ने निजामशाही के गिरते हुए स्तम्भों को रोकने की बड़ी कोसिश की परन्तु उसे सफलता नहीं मिल सकी । उसने मुगलों की ओर सहायता के लिए देखा तथा 1632 ई0 के मध्य में शाहजहाँ को अधीनता के लिए प्रार्थनापत्र भेजा ।[3] शाहजहाँ ने प्रार्थना स्वीकार कर फतह खाँ को वह जागीर दे दी जो शाहजी को मुगलों की अधीनता में दी-गई थी । इसके बाद शाहजी तुरन्त बीजापुर पहुँचे । उसे दौलताबाद जीतने के लिए बीजापुर के शासक ने एक सेना दी ।[4] इसपर फतह खाँ ने मुगल सूबेदार को लिखा कि "शाहजी मेरे विरूद्ध आ-रहा है, किले में कोई खाद्य-सामग्री नहीं है । आप शीघ्र आये और हमें बचायें, मैं सम्राट का दास बन जाऊगा" ।[5] महावत खाँ ने उसकी मदद के लिए तत्काल एक सेना भेजी । लेकिन इसी बीच फतह खाँ ने विचार बदल दिया तथा बीजापुर के शासक ने रणदुल्ला के नेतृत्व में एक सेना भेजी । खिड़की नामक स्थान पर जो आज औरंगाबाद कहलाता है, संयुक्त सेनाओं ने मुगलों को रोक दिया । यह संघर्ष पाँच-महीने तक

1- बसातिन-उस-सलातीन, पृ0 287·

2- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 29·

3- तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी (सं0) राजवाड़े - लेख संग्रह (राधा-माधव विलास चम्पू), पृ0 224·

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 59·

5- पादशाहनामा, आई0ए0, पृ0 498·

चलता रहा । इसमें शाहजी बीजापुर की ओर से लड़ रहे थे । कुछ समय बाद महावत खाँ भी स्वयं पहुँच गया । फतह खाँ ने बीजापुर से और सैनिक मदद माँगी । आदिलशाह ने मुरार पण्डित को एक विशाल सेना देकर भेजा ।[1] बीजापुर की सेना मुरार पण्डित के नेतृत्व को मानने को तैयार नहीं थी । अत: जब फतह खाँ ने किले में अन्न भेजने की प्रार्थना की तो मुरार पण्डित ने पहले दौलताबाद का किला सौंपने को कहा । इसलिए फतह खाँ ने 17 जून, 1933 ई0 को सन्धि करके यह किला मुगलों को सौंप दिया ।[2] इस प्रकार निजामशाही का पतन हो गया ।

निजामशाही का अन्त होते ही शाहजी का मुगलों से विरोध हो गया किन्तु शाहजी ने निजामशाही की शेष सेना के सहयोग से पुन: अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ कर दी ।[3] इसे देखकर मुगलबादशाह शाहजहाँ ने शाहजी पर एक विशाल सेना के साथ आक्रमण कर दिया ।[4] मई 1636 ई0 में बीजापुर के शासक ने शाहजहाँ से एक सन्धि भी की जिसमें यह वादा किया कि वह बीजापुर के दरबार में शाहजी को कोई स्थान नहीं देगा । जब तक कि वह शाहजहाँ को जुन्नार, त्रयम्बक तथा अन्य किले लौटा नहीं देता ।[5] शाहजहाँ को इस आक्रमण में सफलता मिली और शाहजी पूरी तरह कुचल दिया गया । शाहजी माहुली के किले में आत्म समर्पण कर दिया तथा जुन्नार तथा अपने आदमियों के अधीन छ: अन्य किलों के साथ मुगलों को दे दिया ।[6] इसके पश्चात् वह

1- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 31·

2- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 61·

3- बी,एस0 जेचे, पृ0 306; पादशाहनामा, आई0ए0, पृ0 402·

4- पादशाहनामा, आई0बी0, पृ0 135-136·

5- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब का इतिहास, भाग 1, पृ0 3·

6- पादशाहनामा, आई0 बी0, पृ0 225-230·

बीजापुर के दरबार में चला गया ।

बीजापुर में शाहजी ने नौकरी की, किन्तु उन्हें यहाँ के द्वेषी सेनापतियों के कारण कोई महत्वपूर्ण पद नहीं मिल सका । आपसी संघर्ष या विरोध के भय से 25 जुलाई, 1648 को शाहजी को गिरफ्तार कर लिया गया था किन्तु शिवाजी ने अपने कूटनीतिक चाल से उन्हें छुड़ा लिया था ।[1] इस समय तक मुगल सम्राट शाहजहाँ से शाहजी का कोई टकराव नहीं हुआ था । इसकी जानकारी 11 अप्रैल, 1654 ई0 के एक पुर्तगाली पत्र से होती है ।[2] आगे शाहजी बीजापुर की सेवा करते रहे । इस बीच 1655 ई0 में कनकागिरि के अपाखाँ के विद्रोह को दबाने में उनके पुत्र शम्भाजी की मृत्यु हो गई । वास्तव में विद्रोह को दबाने के लिए अफजलखाँ ने शम्भा जी को आगे भेज दिया था, किन्तु मौके पर मदद नहीं भेजी थी । पर्याप्त शक्ति के अभाव में शम्भाजी लड़ते हुए बीरगति को प्राप्त हो गया । इस दु:खद समाचार को सुनकर शाहजी ने कहा कि 'यह अफजल खाँ मनुष्य नहीं, जहरीला साँप है' ।[3] उनको तब सन्तोष हुआ जब उन्होंने यह सुना कि शिवाजी ने अफजल खाँ का बध कर दिया है । सन् 1663 ई0 में शाहजी की अपने पुत्र शिवाजी से भेंट हुई थी । इसके पूर्व उन्होंने महाराष्ट्र के विभिन्न धार्मिक स्थानों की यात्रा की थी ।[4] 1664 ई0 के प्रारम्भ में शाहजी अपने क्षेत्र में लौट आये । यहाँ इन्होंने बेदनूर के विद्रोहियों का दमन किया । एक बार जंगली जानवरों का शिकार करते हुए वे अचानक घोड़े से गिर गये और 23 जनवरी, 1664 को उनकी मृत्यु हो गयी ।

1- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 66.

2- इसकी जानकारी के लिए देखिए - एम0पी0 जोशी, द पोर्तुग्यूज आदि डेकेन (कोनकन) कास्ट : सिक्टीन्थ एण्ड सेविन्टीन्थ सेन्चुरी, जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री, भाग   , भाग 1, अप्रैल, 1968, पृ0 215.

3- सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी का राजवंश, पृ0 156.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 68.

उनकी मृत्यु पर 29 जनवरी, 1664 ई0 को बीजापुर के आदिलशाह ने शाहजी के दूसरे पुत्र 'एकोजी' को अपना शोक सन्देश भेजा ।[1] इसी के बाद मराठों का नेतृत्व शाहजी के स्थान पर शिवाजी के हाथ में चला आया ।

शाहजी के समय में मुगल मराठा संबन्धों में कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई किन्तु मुगल सूबेदारों और सेनापतियों की दृष्टि में उसका पर्याप्त महत्व था । उसका महत्व इसलिए भी बढ़ रहा था, चूँकि उसका पुत्र शिवाजी उत्तरोत्तर शक्तिशाली होकर एक बड़ी और चुनौतीपूर्ण ताकत के रूप में उभर रहा था ।

शिवाजी के मुगलों के साथ सम्बन्ध -

सन् 1658 ई0 में औरंगजेब सम्राट के रूप में मुगल गद्दी पर बैठा । इधर महाराष्ट्र में अनेक विजयों तथा किलों पर अधिकार के पश्चात् शिवाजी का जीवन अत्यधिक संघर्षमय हो गया था । 1660 ई0 से 1664 ई0 के बीच उनके जीवन का समय अत्यन्त संघर्षशील रहा । अफजल खाँ की मृत्यु के बाद, जाधव, पाढरे, खराटे, सिद्दी, हिलाल आदि शिवाजी के अधीन आ गये थे ।[2] औरंगजेब ने अपने सिंहासनारोहण की दूसरी वर्षगाँठ पर जुलाई, 1659 ई0 में

1- सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी का राजवंश, पृ0 80 पर उधृत -
26 जनवरी, 1664 ई0 (11 रजब 1068) का एकोजी भोंसले को सम्बोधित अली आदिलशाह द्वितीय का पत्र :-
"हमने सुना है कि हमारा पुत्र (फर्जन्द) महाराज इस लोक से परलोक चला गया है (सान्त्वना के शब्द .....) अब्दुर्रहीम बहलोल खाँ नामक बजीर की मध्यस्थता से तुम्हें हमारा राजकीय अनुग्रह प्राप्त होगा । बाद में तुम्हारे पास कौल-करार और अहद पंजा से सम्बन्धित फरमान भेजदिया जायगा" ।

2- मुहम्मद हासिम अलीखान, मुन्तखबुल लुवाब मुहमदशाही, भाग 2, पृ0 39.

प्रशासकीय परिवर्तन के आधार पर शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बना दिया ।[1] पहले इस पद पर शाहजादा मुअज्जम था । शाइस्ता खाँ के सूबेदार बनते ही मराठों से मूटनीतिक सम्बन्ध आरम्भ हो गये ।[2] शिवाजी ने अपने दूरदर्शी रानीतिक उपलब्धियों के दृष्टिकोण से मुगलों से जो सम्बन्ध स्थापित किया उसका स्वरूप तत्कालीन ऐतिहासिक विवरणों में प्राप्त होते हैं ।

शाइस्ता खाँ का पूना पर अधिकार -

शाइस्ता खाँ एक योग्य और उत्साही सेनापति था । मालवा और दक्षिण पर वह पहले भी शासन कर चुका था ।[3] औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डा के आक्रमण में उसने कुछ ही समय पूर्व नाम कमाया था । अब इसे शिवाजी को दमन करने का आदेश मिला ।[4] इस कार्य को पूरा करने के लिए सौभाग्य से उसे बीजापुर का हार्दिक सहयोग भी प्राप्त हुआ । इस कारण शिवाजी को अपनी सेना दो भागों में विभाजित करनी पड़ी और युद्ध के दोनो ही क्षेत्रों में उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा ।[5]

अफजल खाँ की नायक विहीन सेना को तथा रूस्तमे जमाँ व फजलखाँ की सम्मिलित सेना को जीतकर शिवाजी ने कोल्हापुर जिले में पन्हाला एवं रत्नागिरि में बहुत से स्थानों को अपने अधिकार में ले लिया ।[6] इधर सिद्दी जौहर ने कर्नूल की जागीर को हड़प लिया था । उसने बीजापुर को पत्र लिखा

1- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 46.

2- अयोध्या प्रसाद गोवलीय, मुगल बादशाहें की कहानी उनकी जबानी, पृ0 284-85.

3- ग्रेण्डफ, मराठा इतिहास, भाग 1, पृ0 61.

4- डा0 यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 72.

5- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 140.

6- डा0 यदुनाथ सरकार, छत्रपती शिवाजी, पृ0 165.

कि वह शिवाजी को सुल्तान के अधीन कर देगा। किन्तु बीजापुर उसकी वर्तमान स्थिति को मान्यता प्रदान करदे, अली आदिलशाह इसपर तैयार हो गया।[1] उसने सिद्दी जौहर को सल्लाबत खाँ की पदवी देकर उसके साथ एक सेना करदी ताकि शिवाजी का दमन किया जा सके।[2] जौहर ने 2 मार्च, 1660 ई0 को सरलतापूर्वक मराठों को पन्हाला के किले में खदेड़ दिया तथा 15 हजार सैनिकों के साथ किले का घेरा डाल दिया।[3] यह घेरा 5 महीने तक चला। अपने को घातक जाल में पाकर शिवाजी ने जौहर को एक गुप्त पत्र लिखा और उसके साथ मेल करने का निश्चय किया।[4] मूर्ख और द्रोही जौहर इस चाल को न समझ सका। उसने शिवाजी को उनकी रक्षा का वचन दिया तथा निरापद मार्ग-यात्रा का विश्वास दिलाया। वह शिवाजी के सहयोग से अपने निजी राज्य की स्थापना के स्वप्न देख रहा था।[5] अब दुर्ग के घिरे रहने का बहाना चलने लगा और शिवाजी के आक्रमणों से बीजापुर के सैनिक हताहत होने लगे।[6] इससे बीजापुर की सेना घबरा गई तथा फजलखाँ ने शिवाजी का स्वयं सामना करना छोड़कर पास ही में पवनगढ़ के एक दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।[7] उसने एक निकटवर्ती पहाड़ी टीले पर अपनी तोपें लगाकर कुछ अंग्रेजों की सहायता से दुर्ग पर गोलाबारी शुरू कर-दी।[8] शिवाजी

1- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 116.

2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दि मराठा, भाग 1, पृ0 353.

3- भाटिया एवं शर्मा, भारत वर्ष का इतिहास, पृ0 63.

4- इलियट और डाउसन भारतवर्ष का इतिहास, भाग 7, पृ0 186.

5- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 2, पृ0 171.

6- इण्डियन एण्टी क्यूरी, पृ0 243.

7- दामोदर टामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 120.

8- महादेव गोविन्द रानाडे, राइज़ आफ् दि मराठा पावर, पृ0 89.

ने 13 जुलाई की अंधेरी रात में कुछ सैनिकों के साथ दुर्ग से निकल कर पवनगढ़ दुर्ग के नीचे खाइयों में पड़ी बीजापुर की सेना पर धावा बोल दिया और इसके बाद वह वहाँ से पश्चिम में 27 मील दूर स्थित विशालगढ़ के किले में छिपने के लिए भाग निकले ।[1] किन्तु शीघ्र ही शिवाजी के छिपकर निकलने का पता चल गया । उनका पीछा किया गया, शिवाजी के थके सैनिकों को गन्तव्य 8 मील पूर्व गजापुर के निकट बीजापुरी सेना पकड़ने ही वाली थी कि उनके मार्ग में एक तंग घाटी आ गई । यहाँ थोड़े से साहसी सैनिक भी एक बड़ी सेना का मुकाबला कर सकते थे ।[2] यहाँ हिरदास मावल का देशपाण्डे बाजीप्रभु आधी सेना के साथ मुकाबला करने के लिए रुक गया तथा शेष सेना शिवाजी के साथ निकल गई ।[3] बाजीप्रभु ने तीन बार आक्रमण विफल किया । सूर्योदय से 5 घंटे तक संघर्ष चला, जबतक कि बन्दूक दागने की आवाज द्वारा शिवाजी के सुरक्षित पहुँचने का संकेत नहीं मिल गया ।[4] इस युद्ध में बाजीप्रभु के घातक घाव लगे । इस स्वामिभक्त ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया । बचे हुए मावली सैनिक अपने सरदार के शव को लेकर पहाड़ियों में भाग गये ।[5] अली आदिलशाह को सिद्दी जौहर के विश्वासघात की सूचना से बड़ा क्रोध आया । उसने 5 अगस्त को राजधानी से पन्हाला जिले की ओर दोनों विद्रोहियों का दमन करने हेतु प्रस्थान किया । जौहर ने 22 सितम्बर को मराठों को पन्हाला त्यागने के लिए मजबूर किया

1- एस0आर0 शर्मा, दि फाउंडिंग्स आफ मराठा फ्रीडम, पृ0 53.

2- डा0 प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 39.

3- सावरकर हिन्दू पद पादशाही, पृ0 47.

4- किनकेड, ए हिस्ट्री आफ दि मराठा पिपुल, भाग 2, पृ0 44.

5- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 116.

तथा वह दुर्ग आदिलशाह के प्रतिनिधियों को सौंप दिया ।[1]

शिवाजी के विरुद्ध अमीर उल उमरा शाइस्ता खाँ ने 25 फरवरी, 1660 ई० को औरंगाबाद से प्रस्थान किया ।[2] वह एक शक्तिशाली सेना के साथ पूना के जिले के पूर्वी भाग के सीमा के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर बढ़ा तथा मार्ग के सभी प्रमुख स्थलों पर अवस्थित रूप से कब्जा करता आया । मराठे बिना लड़े ही पीछे हटते गये ।[3] सोनवादी, और सूपा के मार्ग से होता हुआ वह 5 अप्रैल को बारामती पहुँचा । यहाँ कच्ची मिट्टी के बने दो दुर्गों को मराठों ने खाली कर दिया था । साहसी लुटेरे शिवाजी ने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि जहाँ भी वही अमीर उल उमरा की सेना के सामान "काही" (घास और अन्न) को लूटा जाये ।[4] जब अमीर को इसका पता लगा तो उसने अनुभवी अधिकारियों के नेतृत्व में 4 हजार सवार सामान की रक्षा के लिए नियुक्त किए । परन्तु प्रति मंजिल पर शिवाजी के दखिनी सिपाही सामान को घेर लिया करते थे और घोड़े और ऊँट, आदमी जो कुछ मिलता उसे ले जाते थे ।[5] जब मुगल सैनिक उनकी ओर आते तो वे भाग जाते थे । शाही सैनिक उनका पीछा करते थे और उन्हें सताते थे, तब उनका साहस भंग हो जाता था और वे लड़ाई छोड़कर भाग जाते थे ।[6] इसके बाद शाइस्ता खाँ 'होल' होता हुआ नीरा नदी की घाटी से पश्चिम की

1- सर देसाई, दि मेन करेन्स आफ् मराठा हिस्ट्री, पृ0 235.

2- डी0 एफ0 कर्क, शिवाजी, पृ0 98.

3- इलियट और भारत का इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 186.

4- राविल्सन, शिवाजी दि मराठा, पृ0 105.

5- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 48.

6- यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 80.

और बढ़ता हुआ 18 अप्रैल को शिरवाल में पहुँचा ।[1] यह स्थान पूना से दक्षिण में 26 मील की दूरी पर स्थित है । उसने चौकियों पर अपने सेना की टुकड़ियाँ भी तैनात कर दी थी, ताकि संचार व्यवस्था व दुर्गों के अधिकार में अव्यवस्था न फैले । शिरवाल के कुछ सैनिक पश्चिम में 22 मील राजगढ़ भेजकर शाइस्ता खाँ ने वहाँ के आसपास के गावों को भी अपने अधिकार में करलिया था ।[2] यहाँ से पुन: मुगल सेना नीरा नदी के किनारे-किनारे 16 मील उत्तर की ओर खेद के पास शिवापुर पहुँची और वहाँ से पूर्व की ओर गरारा होते हुए 9 मई को सासवाड़ पहुँची ।[3] यह स्थान शिवापुर से 13 मील पूर्व में और पूना से 18 मील दक्षिण-पूर्व में है ।

मराठों ने इस अभियान में मुगलों का पहला सामना 30 अप्रैल को शिवपुर से गरारा जाने वाले मार्ग के निकट किया । राव भावसिंह के नियन्त्रण में 2 हजार मराठा घुड़सवारों ने मुगल सेना के पिछले भाग पर आक्रमण करने की ठानी, किन्तु मुगलों ने उन्हें पराजित कर दिया ।[4] पुरन्दर दुर्ग के पास बसे गावों पर भी धावा बोल कर मुगलों ने उस इलाके पर विजय प्राप्त की और फिर सासवाड़ से चलकर वे रानवा में 4 दिन ठहरे । 9 मई, 1660 ई0 को शाइस्ता खाँ ने पूना में प्रवेश किया ।[5]

चाकन के दुर्ग पर नियन्त्रण -

वर्षा ऋतु में मुगल सेना का विचार पूना में ही रहने का था किन्तु

1- कनकेड, विद्रोही महावीर, पृ0 108.
2- डा0 प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 70-71.
3- डा0 यदुनाथ सरकार, शिवाजी और उनका युग, पृ0 84.
4- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 554.
5- डा0 ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 366.

यहाँ के समीपवर्ती भागों से अनाज और चारों को मराठों ने बिल्कुल नष्ट कर दिया था, और निवास स्थानों को भी मिटा दिया था।[1] वर्षा ऋतु में पूना और मुगल सेना के मध्य बहने वाली नदियों में बाढ़ आ जाने से उनके शिविर में कोई रसद नहीं पहुँच पाती थी और सेना को कठिनाई होती थी।[2] अत: शाइस्ता खाँ ने सेना को चाकन ले जाने का निश्चय किया। चाकन अहमदनगर और मुगल राज्य के निकट था। यहाँ रसद आसानी से मिल सकती थी। सैनिक दृष्टि से भी चाकन एक महत्वपूर्ण स्थान था।[3] भीमा और घोद नदियाँ इसे पूर्व की ओर शाही क्षेत्र से पृथक् करती हैं और पार करने के लिए भी कोई दुर्गम पहाड़ी नहीं है। अब उत्तर की ओर से भी मुगल सेना पर आक्रमण का कोई भय नहीं रहा।[4] चाकन भोरघाट मार्ग से केवल 31 मील दूर पूर्व में है और अहमदनगर से कोंकण जाने का सबसे छोटा मार्ग यहीं से होकर है। शाइस्ता खाँ 21 जून को चाकन के समीप आ गया।[5] यहाँ के वर्गाकार दुर्ग के सामने का भाग आगे की ओर निकला हुआ है तथा चारो ओर बुर्जियाँ हैं। ऊँची दीवारों वाले इस किले के चारो ओर 30 फुट गहरी व 15 फुट चौड़ी खाई थी। इसका पूर्व की ओर एक मात्र प्रवेश द्वार 5 या 6 फाटकों से होकर था। दीवारों के परे किसी बहुत पुराने मिट्टी के किले के खण्डहर थे जिसके चारो ओर खाई थी।[6] किले को घेर कर दीवारों की ओर खाइयाँ बनाई गई। स्थान-स्थान पर चबूतरे बनाकर, उनपर दक्षिण में स्थित

1- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ् इण्डिया, भाग 4, पृ0 269.

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 270.

3- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 143.

4- आलमगीरीनामा, पृ0 607.

5- डा0 यदुनाथ सरकार, शिवाजी और उनका युग, पृ0 276.

6- गोविन्द रानाडे, राइज़ आफ दि मराठा पावर, पृ0 135.

मुगल दुर्गों से लाई गई भारी तोपें जमा दी गई। वर्षा व दुर्ग रक्षकों के गोलों की बाधा को सहन करके भी घेरा डालने का काम तेजी से चलता रहा।[1] अन्ततः 54 दिनों के परिश्रम के बाद दुर्ग के उत्तर-पूर्वी कोने की बुर्जतक एक सुरंग तैयार करके 14 अगस्त 1660 ई0 की शाम को उसमें बारूद से विस्फोट करदिया तथा तत्काल आक्रमण भी कर दिया किन्तु 15 अगस्त को पुनः आक्रमण करने के बाद ही मुख्य किला हाथ आया।[2] टेवरनियर के अनुसार साम्राज्यवादियों को इस विजय की भारी कीमत भी चुकानी पड़ी। इसके उपरान्त भी लगभग 2 माह तक फिरंगजी रसालों ने चाकन की रक्षा की।[3] अन्त में विवश होकर उसने समर्पण किया। शाइस्ताखाँ ने इस बीर की प्रशंसा करके उसे मुगल राज्य की सेवा में एक अच्छे वेतन की नौकरी पर रहने का आग्रह किया, किन्तु फिरंगजी द्वारा मना करने पर उसे अपनी सेना सहित शिवाजी के पास जाने की आज्ञा मिल गई। बाद में शिवाजी ने उन्हें भूपाल-गढ़ का सेनापति बनाया।[4] उजवेग खाँ को चाकन का सूबेदार नियुक्त किया गया तथा इसका नाम बदल कर इस्लामाबाद रख दिया गया।[5]

शिवाजी का प्रतिरोध -

शिवाजी की पन्हाला और चाकन में पराजय के बाद 1660 ई0 के अन्तिम 3 महीने शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए। उन्होंने योजना बनाकर अपना युद्ध क्षेत्र कोंकण या सहयाद्रि के पश्चिम में परिवर्तित करने का निर्णय किया।[6]

1- किनकेड, हिस्ट्री आफ् दि मराठा पिपुल, भाग 1, पृ0 63.
2- वालाजी हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 89.
3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, 116.
4- डा0 प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 39.
5- राजवाड़े लेख संग्रह भाग 2, पृ0 90.
6- वी0डी0 सावरकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 85.

चाकन विजय करने के बाद शाइस्ता खाँ भी पूना लौट आया । उसने 20 नवम्बर, तक परेन्दा के बीजापुरी सेनापति गालिब को एक बहुत बड़ी कीमत पर अपना किला औरंगजेब को दे देने हेतु तैयार कर लिया तथा मुगल सेना के एक बड़े भाग को वहाँ भेज दिया ।[1] 1661 ई0 के प्रारम्भ में शाइस्ताखाँ ने उत्तरी कोंकण या कल्याण जिले की ओर ध्यान दिया । यहाँ तीन हजार सैनिकों के साथ इस्माइल गटा अप्रैल से ही कार्यरत था । उसने बहुत सा भाग जीत भी लिया था किन्तु मुख्य शहर कल्याण और दुर्ग पर अभी तक विजय नहीं मिली थी ।[2] कोंकण की मुगल विजय को पूर्ण करने के लिये शाइस्ता खाँ ने एक चार-हजारी उजबेक मनसबदार करतलब खाँ को अपने बहुत से राजपूत और मुसलमान मातहतों एवं स्थानीय मित्रों के साथ भेजा ।[3] करतलब खाँ पूना से लोहगढ़ होकर उदरखिण्ड में कूच करता हुआ भोरघाट से दक्षिण में एक दर्रे से कोंकण में आया ।[4] उसके सिपाही जब तोपें व अन्य युद्ध सामग्री लेकर घने जंगलों, खड़ी चट्टानों, तंग व टूटी फूटी सड़कों से गुजरने का प्रयत्न कर रहे थे तो शिवाजी ने द्रुतगति से गुप्त रूप से उनतक आकर दोनों ओर के मार्ग को रोक लिया ।[5] करतलब खाँ को भारी हानि उठानी पड़ी । अन्ततोगत्वा 3 फरवरी, 1661 ई0 को बहुत सा निस्तार धन देने के बाद ही उसकी सेना को मुक्त किया गया ।[6] अत: शिवाजी ने अपने सेना के दो भाग करके, एक को नेताजी के अधीन मुगलों का मुकाबला करने के लिए छोड़ा तथा दूसरे भाग को स्वयं लेकर कोंकण में

1- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगल इम्पायर, पृ0 137.

2- एस0पी0 वर्मा, ए हिस्ट्री इन मराठा डिप्लोमेसी, पृ0 15.

3- गोविन्द रानाडे, राइज आफ दि मराठा पावर, पृ0 120.

4- डफ ग्राण्ड, हिस्ट्री आफ दि मराठा, पृ0 134.

5- एस0आर0 शर्मा, दि फाउण्डिंग्स आफ मराठा फ्रीडम, पृ0 94.

6- सतीशचन्द मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 244.

बीजापुरी क्षेत्र पर आक्रमण करने हेतु प्रस्थान किया ।[1] कल्याणी जिले के अतिरिक्त दादा राजपुरी से हनेकर खारपत्तन तक सारी तटीय पट्टीपर शिवाजी का अधिकार हो गया ।[2] इन आक्रमणों में शिवाजी की गति इतनी तीव्र थी कि स्थानीय इतने एकतारहित और रक्षा के लिए अनुद्यत रहते कि अधिकारियों को आपस में एकत्र होकर रक्षा के उपाय कर सकने का भी अवसर नहीं मिला । वे लोग या तो मराठों के आक्रमण से भयभीत होकर भाग गये या सुलह करके उनकी अधीनता में आ गए तथा उन्हें कर देने को भी राजी हो गये ।[2]

शिवाजी ने जंजीरा से पूर्व में 22 मील दूर निजामपुर पर आक्रमण करके दाभोज के बन्दरगाह को फरवरी, 1661 ई0 में जीत लिया ।[3] संगमेश्वर का मुगल सूबेदार भी पलायन कर गया । राजापुर तक शिवाजी की विजय कूच जारी रही । नत्नागिरी के अधिकतर शहरों ने उनको चौथ देकर अपने को लुटने से बचा लिया ।[4] अब शिवाजी ने पल्लीवाना राज्य को विजय किया तथा 29 अप्रैल को श्रृंगारपुर के राजा सूर्यराय पर अप्रत्यासित हमला करके त्र्यम्बक भास्कर को वहाँ का शासन सौंप दिया ।[5]

मुगलों की कल्याण विजय -

मई 1661 ई0 में मुगलों ने मराठों से कल्याण छीन लिया, यद्यपि शिवाजी ने महाद में एक सेना द्वारा इसे हस्तगत करने का प्रयास किया तथापि

1- डा0 यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 1, पृ0 80·
2- वही, शिवाजी और उनका युग, पृ0 84·
3- लेनेपुल, स्टेनले, मीडुवल इण्डिया अण्डर मराठा रूल, पृ0 137·
4- बालाजी हार्डेकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 135·
5- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 108·

अगले 9 वर्षों तक यह बड़ा नगर मुगलों के पास ही रहा ।[1] अगस्त 1661 ई0 में वेल उपजिले में दीरी के किले को मुगल सेनापति बुलाकी ने घेर लिया किन्तु मराठों ने उसे भगा दिया । मराठों ने 1662 ई0 के आरम्भ में मीरा ढोंगर में आक्रमण किया[2], फिर पैन के धनी शहरपर हमला किया । मुगलों ने डटकर इस नगर की रक्षा की तथा शिवाजी की सेना को हताहत किया ।[3] इन दो वर्षों में हुए अभियान के फलस्वरूप मुगलों ने कोंकण के उत्तरी भाग पर अपना कब्ला बनाए रखा तथा शिवाजी कोलावा नगर के दक्षिण-पूर्व कोने और गिरि जिले के सारे भाग के स्वामी रहे ।[4] मुगलों ने शिवाजी की सेना में रिसाले के सरदार नेताजी का मार्च 1661 ई0 में बहुत दूर तक पीछा किया ।[5] सात हजार मुगलई घोड़ों ने उनका बहुत दूरतक जोरों के साथ पीछा किया । यहाँ तक कि वे बीजापुर से 15 मील की दूरीपर ही रह गये ।[6] । अन्त में रूस्तमे-जमा ने मुगलों से मिलकर यह कहकर उसको पीछा न करने को राजी कर लिया कि देश बहुत ही खतरनाक है । एक अजनवी सेना के लिए यह ठीक न होगा कि वह भीतर जाये और यह भी वचन दिया कि वह स्वयं उसका पीछा करेगा ।[7] इस धोखे से नेताजी दूर निकल गया, किन्तु उसके 300 घोड़े मारे गये और खुद भी घायल हो गया ।[8]

शिवाजी और सूरत -

सूरत भारत के पश्चिमी तट का सबसे अधिक धनी पत्तन था और

1- टामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 220.
2- कोठी अभिलेख, सूरत, पृ0 103.
3- महादेव रानाडे, मराठों का उत्कर्ष, पृ0 215.
4- राजवाड़े, सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर, भाग 2, पृ0 66.
5- सर देसाई, मराठी रियासत (मध्य भाग), पृ0 158.
6- सरकार, औरंगजेब, भाग 4, पृ0 217.
7- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगल कालीन भारत, पृ0 420.

मक्का हज करने वाले मुसलमानों के लिए अरब के धार्मिक स्थानों का द्वार था ।[1] सूरत का किला समुद्र से 12 मील दूर ताप्ती नदी के दक्षिणी तट पर विद्यमान था । यह किला अजेय माना जाता था किन्तु किले के निकट नगर में रक्षा के साधन बहुत कम थे ।[2] नगर की रक्षा के लिए कोई दीवार नहीं थी । यह नगर लगभग चार मील में बसा था । उससमय इसकी आबादी दो लाख थी । गलियाँ तंग और टेढ़ी-मेढ़ी थी और धनी व्यक्तियों के मकान नदी के तट पर बने थे ।[3]

औरंगाबाद में सूबेदारों की अदला-बदली के समय शिवाजी ने समुचित अवसर देखकर 1664 ई0 में सूरत को लूटने की योजना बनाई । सूरत के निवासियों में 5 जनवरी को उस समय आतंक छा गया जब उन्हें दक्षिण से शिवाजी के आक्रमण की सूचना मिली ।[4] लोग सपरिवार भागने लगे । शहर के सूबेदार इयानत खाँ ने शिवाजी को सन्देश भेजा कि वे धन लेकर उसकी जान बख्श दे, किन्तु उसका यह प्रलोभन बेकार सिद्ध हुआ ।

सूरत की लूट -

साइस्ता खाँ की पराजय से मराठा सैनिकों के उत्साह बहुत बढ़ गये थे अत: वे सूरत को लूटने के लिए विशेष उत्सुक थे ।[5] सूरत एक बन्दरगाह होने के कारण व्यापार का वैभवशाली नगर था । उनदिनों यहाँ पर व्यापार भी अधिक बढ़चढ़ कर हुआ करता था । जनवरी 1664 ई0 में शिवाजी ने अपने चुने हुए 4000 सिपाहियों के साथ सूरत पर धावा बोल दिया और शहर को

1- डा0 यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 38.

2- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 160.

3- बाम्बे गजेटियर, पृ0 289.

4- सरकार, औरंगजेब, भाग 2, पृ0 76.

5- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 342.

बड़ी निर्दयता के साथ लूटा ।[1] कहा जाता है कि इस लूट में शिवाजी को एक करोड़ से अधिक का माल प्राप्त हुआ जिसमें, सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात ही थे । अन्य किसी वस्तु को हाथ नहीं लगाया । उस समय सूरत में डच और अंग्रेजों की भी व्यापारिक कोठियाँ थीं । उन लोगों को भी इस घटना से बड़ी आनि उठानी पड़ी । इस लूट से शिवाजी की आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गई, जिससे उन्हें आग्र की उन्नीत में बड़ी मदद मिली ।[2]

शिवाजी और जयसिंह का संघर्ष -

सूरत की लूट के बाद शिवाजी ने मुगलों के अधीनस्थ प्रान्तों में भयानक लूट-मार आरम्भ कर दी, जिससे मुगलों को शिवाजी की ओर से बड़ी चिन्ता हुई । 1665 ई0 में औरंगजेब ने जयसिंह और दिलेर खाँ के सेनानायकत्व में एक बड़ी फौज शिवाजी को दबाने के लिए भेज दी । जयसिंह एक बुद्धमान कूटनीति-पटु तथा अनुभवी सेनापति था । अरबी, फारसी, उर्दू तथा राजस्थानी कई भाषाओं का पण्डित था ।[3] कई भाषा-भाषी सैनिकों की सेना का संयुक्त संचालन करने की योग्यता उसमें थी तथा कई युद्धों में उसे सफलता भी मिल चुकी थी । वह अत्यन्त अनुभवी सेना-नायक था । इसके साथही वह महान कूटनीतिज्ञ भी था । उसने न केवल बीजापुर के सुल्तान को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया अपितु शिवाजी के साथियों को भी साथ आने का प्रलोभन दिया तथा उसने पड़ोसी जमींदारों को भी रिस्वत देकर अपने साथकर लिया ।[4] इस प्रकार एक पूरी तैयारी के साथ जयसिंह ने शिवाजी

1- सरदेसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 175.

2- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 153.

3- वी0एम0 दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ0 287.

4- वीरेन्द्र स्वरूप भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 11.

के क्षेत्र पर आक्रमण किया और पुरन्दर का मजबूत किला भी जीत लिया। इसके बाद शीघ्र ही मुगलों ने रायगढ़ का घेरा डाला और समीपवर्ती प्रदेश में लूट-मार मचादी। रायगढ, जो कि शिवाजी की शक्ति का केन्द्र था, संकट में समझ कर शिवाजी ने मुगलों से जून सन् 1665 ई0 में पुरन्दर की सन्धि करली, जिसके अनुसार शिवाजी को 23 किले मुगलों को देने पड़े।[1] अब उनके पास केवल 12 किले ही बच रहे। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने बीजापुर सुल्तान के विरुद्ध मुगलों को मदद देने का भी बचन दिया। इसके बदले में मुगल सम्राट की ओर से बीजापुर के कुछ हिस्से से चौथ वसूल करने की शिवाजी को स्वीकृति मिल गई और उनकी विद्रोहात्मक कार्यों को भी क्षमा कर दिया गया। वास्तव में पुरन्दर की सन्धि शिवाजी की कूटनीतिक पराजय थी। इससे भी बड़ी विजय जयसिंह की यह थी कि उसने शिवाजी को आगरा दरबार में चलने के लिए राजी कर लिया।[2] इस प्रकार जयसिंह युद्ध में इतना सफल नहीं हुआ जितना कि कूटनीति में। दक्षिण के सिंह को उसी की माद में घेर कर घायल करना जयसिंह के लिए भारी प्रतिष्ठा और गौरव की बात थी।

शिवाजी शाही दरबार में -

शिवाजी के दरबार गमन के सम्बन्ध में कई मत हैं। सर देसाई का कथन है कि शिवाजी आगरा इसलिए गये कि वे स्वयं मुगल साम्राज्य तथा दरबार का व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करना चाहते थे जिससे वह समझ सकें कि उनका हिन्दू साम्राज्य स्थापन का स्वप्न कहाँतक व्यावहारिक है और मुगल शक्ति का वास्तविक स्रोत क्या है।[3] किन्तु हमें इस मत में अधिक तथ्य नहीं जान पड़ता। क्योंकि औरंगजेब के पास जाकर उसके चंगुल से निकलना बड़ा कठिन था। शिवाजी

1-वी0एम0 दीवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ0 288.

2- डा0 यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 75.

3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 180.

भी इस बात को जानते थे । वास्तव में यह उनकी कूटनीतिक हार थी, जिससे वे जयसिंह के चक्कर में आगये । जयसिंह का विचार था कि यदि शिवाजी की औरंगजेब के साथ स्थायी सन्धि हो जाय तो औरंगजेब को दक्षिण राज्यों को विजय करने में शिवाजी से बड़ी सहायता मिलेगी तथा बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतें आसानी से विजित हो जायेगी ।[1] इसी विचार से जयसिंह ने शिवाजी को दरबार में चलने के लिए राजी कर लिया तथा साथ ही बड़े सम्मान और पद दिलाने का भी प्रलोभन शिवाजी को दिया । जब उसने शिवाजी के साथ किसी प्रकार के अनुचित व्यवहार न होने का भार अपने ऊपर ले लिया तो शिवाजी आगरा दरबार में जाने को तैयार हो गये ।[2]

मई 1666 ई0 में शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी जयसिंह और उसके पुत्र रामसिंह के साथ दरबार में औरंगजेब के पास मिलने पहुँचे किन्तु वहाँ पर शिवाजी को वह मान नहीं मिला जिसकी आशा जयसिंह ने दिलाई थी । औरंगजेब ने उन्हें तीसरे दर्जे के पंच हजारी मनसबदारों में स्थान दिया । इस प्रकार के व्यवहार से अपने आप को बहुत अपमानित समझकर शिवाजी आपे से बाहर हो गये और औरंगजेब को कुछ अपशब्द भी कह डाले । रामसिंह आदि के समझाने पर भी वे चुप न रह सके और उन्हें क्रोध-वश यह भी ध्यान न रहा कि ऐसी स्थिति में शाही दरबार में मेरा इतना बिगड़ना अपने लिए ही घातक सिद्ध हो सकता है ।[3] क्रोध में आकर औरंगजेब ने शिवाजी को बन्दी बना लिया । यह समय महाराष्ट्र और शिवाजी के जीवन के लिए बड़ा संकटापन्न था । औरंगजेब ने शिवाजी को मरवा डालने का दृढ़ निश्चय कर लिया था । यह सम्भव भी था, परन्तु चूँकि दरबार में रामसिंह आदि

1- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 21.

2- तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 129.

3- डा0 प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 60.

राजपूतों का प्रभाव था साथही शिवाजी की इस प्रकार की मृत्यु से राजपूत बिगड़ जाते । इस भय के कारण औरंगजेब के मनसूबे पूरे न हो सके ।[1] शिवाजी भी इस अवस्था में किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे किन्तु वे निराशावादी व्यक्ति न थे । उन्हें एक उपाय सूझा । उन्होंने अपने आपको बीमार सा बना लिया । यह केवल कैद से मुक्ति पाने के लिए एक बहाना था । इसके बाद स्वस्थ होने के उपलक्ष में पुण्य धर्म के बहाने, जैसाकि हिन्दू समाज में आज भी प्रचलित है टोकरों में मिठाई और फल भरकर बाहर दरिद्रों को बाटने भिजवाना प्रारम्भ कर दिया ।[2] इसी प्रकार जब कुछ दिन हो गये तो पहरेदारों ने टोकरी ले जाने वालों का निरीक्षण भी छोड़ दिया, क्योंकि अब वह एक दैनिक कार्य बन गया था । एक दिन मौका पाकर एक टोकरी में स्वयं तथा दूसरी टोकरी में अपने पुत्र को बिठाकर ऊपर से फल और मिठाई रखवाकर शिवाजी आगरा शहर से बाहर हो गये और इस प्रकार अपनी चालाकी से मुगलों की कैद से वे मुक्त हो गये ।[3]

इसके बाद सबसे पहले शिवाजी मथुरा पहुँचे । अपने पुत्र को उन्होंने एक विश्वासपात्र मराठा ब्राह्मण के संरक्षण में छोड़ा और स्वयं साधु-वेश में इलाहाबाद पहुँचे । वहाँ से बनारस, गया, पुरी तथा गोंडवाना होते हुए दिसम्बर मास में वे सकुशल महाराष्ट्र में पहुँच गये । वहाँ पर बड़ा भारी उत्सव मनाया गया ।[4]

इधर आगरे से शिवाजी का इस प्रकार निकल जाना बड़ी आश्चर्य-जनक बात थी । मुगलों को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ, उनके लिए यह घटना

1- डा० यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 1, पृ० 78.

2- डा० प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ० 61.

3- डा० सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 186.

4- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ० 18.

बड़ी अद्भुत थी । औरंगजेब को भी बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उसका शत्रु हाथ में आकर भी अपनी जान बचा गया । औरंगजेब को यह भी विश्वास हो गया कि शिवाजी के इस प्रकार निकल जाने में रामसिंह का हाथ है और दक्षिण में जयसिंह शिवाजी से मिला हुआ है । अतः उसने दक्षिण से जयसिंह को बुला भेजा और इसी कारण मार्ग में उसे विष देकर मरवा भी डाला ।[1]

शिवाजी के पुनः दक्षिण में पहुँच जाने से औरंगजेब को भय लगा हुआ था, अतः उसने अपने पुत्र मुअज्जम को दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया तथा जोधपुर नरेश जशवन्त सिंह को उसकी सहायता के लिए भेजा । शिवाजी की शक्ति भी छिन्न-भिन्न हो गई थी । अतः उन्होंने वहाँ पहुँचकर शीघ्र ही मुगलों के विरुद्ध कार्यवाही करना उचित न समझा ।[2] शिवाजी ने लगभग तीन वर्ष तक किसी प्रकार का विद्रोहात्मक कार्य नहीं किया और इस बीच में उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित किया और राज्य की स्थिति को दृढ़ बनाया[3]। देश में शान्ति स्थापित करने के लिए यह आवश्यक था कि किसी प्रकार का युद्ध तथा उपद्रव न हो, अतः शिवाजी ने मुगलों के साथ सन्धि कर ली । राजा जसवन्त सिंह शिवाजी के साथ सहानुभूति रखता था । अतः उसके प्रयत्न से औरंगजेब ने शिवाजी की राजा की पदवी को स्वीकार कर लिया । यही नहीं शिवाजी के पुत्र को पंचहजारी का मनसब प्रदान किया गया तथा बरार प्रान्त जागीर के रूप में उसे दे दिया गया ।[4]

औरंगजेब भी उत्तरी पश्चिमी सीमा-प्रान्तों के युद्धों में लगा हुआ था अतः उसने शिवाजी को इसी प्रकार के व्यवहार से शान्त रखना चाहा ।

1- डा० यदुनाथ सरकार, जर्नल आफ् इण्डियन हिस्ट्री, अप्रैल 1967, पृ० 230·
2- श्रीधर को कल्याण मल के पत्र में - राजस्थानी पत्र लेख, नं० 41, पृ० 50·
3- खाफी खाँ-मुन्तखब-उल-लुआब, भाग 2, पृ० 17·
4- किनकैड, ए हिस्ट्री आफ् मराठा पिपुल, भाग 2, पृ० 123·

दक्षिण की स्थिति और भी खराब हो गई । मुगल सेनापतियों में परस्पर वैमनस्य उत्पन्न हो गया । इस कारण मुगलों की दक्षिणी सेना का संगठन शिथिल पड़ गया । दूसरे साम्राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण औरंगजेब की दक्षिणी सेना के बहुत से सैनिक नौकरी से हटा दिये गये । ये लोग शिवाजी की सेना में भर्ती हो गये ।[1] इस प्रकार अब शिवाजी की शक्ति फिर बढ़ गई, अत: मुगलों के विपरीत फिर सामरिक कार्य प्रारम्भ हुए । शिवाजी ने बड़ी आसानी से कोंकण, सिंहगढ़, माहुली आदि के किले आसानी से जीत लिए और कोंकण से मुगलों को मार भगाया । 1670 ई० में उन्हें 66 लाख का माल प्राप्त हुआ । इस लूट से व्यापारी इतने भयभीत हो गये कि सूरत के बन्दरगाह पर उन्होंने अपना माल भेजना बन्द कर दिया । इस बन्दरगाह का व्यापार चौपट हो गया । इसके बाद और भी भयानकता तथा निर्दयता के साथ शिवाजी ने मुगल प्रान्तों को लूटा ।[2] सन् 1672 ई० में उन्होंने सूरत से फिर चौथ वसूल की । सन् 1674 ई० में मुगल सेनापति दिलेर को मराठों ने बुरी तरह से परास्त किया और अपने प्रभाव को स्थापित कर के मुगलों की शक्ति को मृतप्राय बना दिया ।

शिवाजी का राज्याभिषेक और तत्पश्चात् मराठा-मुगल सम्बन्ध

लगभग सम्पूर्ण महाराष्ट्र प्रदेश का स्वामी बनने के बाद जून 1674 ई० में शिवाजी विधिपूर्वक सिंहासनारूढ़ हुए । बड़ी धूम-धाम से उनके राज्यारोहण उत्सव मनाया गया ।[3] शिवाजी ने छत्रपति की उपाधि धारण की और

1- डा० यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम, पृ० 148.

2- एस०आर० शर्मा, द फाउण्डिंग्स आफ़ मराठा फ्रीडम, पृ० 212.

3- बा०सी० ब्रेन्द्रे द्वारा सम्पादित, "श्री शिवराजाभिषेक", पृ० 16.

रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया ।[1] इसके बाद छ: वर्ष के अपने जीवनकाल में उन्होंने बीजापुरियों और मुगलों से अनेक प्रदेशों को छीना ।[2] राज्याभिषेक के किये गये विपुल व्यय के कारण शिवाजी का राजकोष लगभग खाली हो गया और उन्हें अपने सैनिकों को वेतन देने के लिए धन की आवश्यकता थी[3] । सरकार के अनुसार जुलाई 1674 ई0 के मध्य शिवाजी के नेतृत्व में मराठा घुड़सवारों ने मुगलों के पेड़गाँव के पड़ाव को तहस-नहस कर दिया और वहाँ से लगभग 200 अच्छे घोड़े तथा एक करोड़ रूपये का माल लूट लिया गया । सेनापति बहादुर खाँ पर यह एक करारी चोट थी ।[4] इस प्रकार शिवाजी अपने कोष को भरने में सफल हो गये थे ।

राज्याभिषेक के बाद शिवाजी ने अक्टूबर, 1674 ई0 में बहादुर खाँ के पड़ाव के निकट से गुजरते हुए औरंगाबाद के समीपवर्ती कई नगरों को लूटा और फिर बंगलाना तथा खान देश तक अपने धावे मारे ।[5] 1675 ई0 के प्रारम्भ में शिवाजी ने मुगल सेनानायक बहादुर खाँ के साथ सन्धि करने का ढोंग रचा और लगभग तीन माह तक उसे सन्धि की झूठी आशाओं के चक्कर में फँसाये रखा ।[6] तत्पश्चात् सहसा ही जुलाई में उन्होंने गोवा की सीमा पर फोण्डा किले पर अधिकार कर लिया । वहाँ मुगल दूतों को ताने सुनाकर भगा दिया ।[7] जनवरी, 1676 ई0 में शिवाजी बीमार पड़ गये और कुछ

1- डा0 प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 80.

2- सी0वी0 वैद्य, शिवाजी, द फाउण्डर आफ् मराठा स्वराज्य, पृ0 92.

3- डा0 सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी, पृ0 112.

4- डा0 बालकृष्ण, शिवाजी दी ग्रेट, भाग 2, पृ0 38.

5- डा0 एस0आर0 कुलकर्णी, महाराष्ट्र इन द एज आफ् शिवाजी, पृ0 147.

6- सिंह तथा ओझा, मुगल कालीन भारत, पृ0 167.

7- रालिंसन, शिवाजी द मराठा, पृ0 121.

महीनों तक सतारा में ही रोग-शय्या पर पड़े रहे ।[1] लगभग उसी समय में बहलोलखां स्वयं बीजापुर का अभिभावक बन बैठा जिसके फलस्वरूप वहां के दक्षिणी दलों और अफगानों में परस्पर युद्ध आरम्भ हो गया ।[2] शिवाजी ने अवसर का लाभ उठाया और स्वस्थ होते ही बीजापुर राज्य में दूर-दूर तक धावे मारकर काफी लूट-पाट मचाई ।[3] इसके बाद शिवाजी के गोलकुण्डा और कर्नाटक अभियान हुए । कर्नाटक अभियान के दौरान शिवाजी ने बहादुर खां से समझौता कर लिया और उससे बचन ले लिया कि एक वर्ष की उनकी अनुपस्थिति के समय बहादुर खां मराठों पर हमला नहीं करेगा और तटस्थ बना रहेगा ।[4]

बहादुर खां की तरह शिवाजी ने गोलकुण्डा के साथ भी एक सन्धि की और गोलकुण्डा राज्य की रक्षा के बदले लगभग एक लाख हूण प्रतिवर्ष लेना स्वीकार किया ।[5] मुगल सूबेदार ने शिवाजी के साथ सन्धि इसलिए कर ली क्योंकि मुगलों की सुसज्जित सेनाएँ उस समय अफगानी सीमा पर विद्रोही पहाड़ी कबाइलियों को दबाने में लगी हुई थी और उधर दक्षिण के मुगल सूबेदार बीजापुर के गृह-युद्ध में दक्षिणी दल के पक्ष में युद्ध रत थे ।[6] बीजापुर पर चढ़ाई करते समय मुगल सेनानायक बहादुर खां इस बात के लिए विशेष उत्सुक था कि अपने दाहिने बाजू पर स्थित शिवाजी के साथ मैत्री स्थापित करले ।[7] चूंकि

1- खाफी खां, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 114.

2- मुहम्मदनामा, पृ0 389.

3- डा0 यदूनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज टाइम, पृ0 62.

4- इलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, भाग 7, पृ0 186.

5- डा0 प्रभाकर माचवे, छत्रपति शिवाजी, पृ0 39.

6- डा0 ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 391.

7- मिर्जा मुहम्मद काजिम, आलमगीरीनामा, पृ0 897.

शिवाजी कर्नाटक अभियान का निश्चय कर चुके थे, अत: उन्होंने भी मुगलों से शान्ति सन्धि कर लेना उपयुक्त समझा । कर्नाटक अभियान के दौरान शिवाजी को गोलकुण्डा राज्य की काफी सहायता मिली ।[1] लेकिन डा० सरकार के अनुसार शिवाजी ने केवल अपना ही स्वार्थ सिद्ध किया और फलस्वरूप गोलकुण्डा के कुतुबशाह से सम्बन्ध बिगड़ गये । बीजापुर राज्य में जो घटनाचक्र चल रहा था उसके फलस्वरूप 1679 ई० के प्रारम्भिक महीनों में मराठों की मुगलों से पुन: मुठभेड़ आरम्भ हो गई ।[2] अगस्त 1679 ई० में दिलेरखां ने बीजापुर के उत्तर में भीमा नदी को पार कर मसूद पर चढ़ाई की जो उस समय बीजापुर राज्य का अभिभावक था । शिवाजी ने सहायता दी और वे मुगलों के अधीन दक्षिणी प्रदेश के जिलों को लूटने लगे ।[3] नवम्बर 1679 ई० के अन्त में औरंगाबाद से 40 मीलपूर्व में जालना नामक व्यापारिक शहर पर अधिकार कर उसे लूटा गया । जालना पर चढ़ाई शिवाजी की अन्तिम चढ़ाई थी ।[4] अन्त में 23 मार्च 1680 ई० को शिवाजी को ज्वर हुआ और उन्हें खूनी दस्त होने लगा । 4 अप्रैल 1680 ई० को दोपहर में उनकी मृत्यु हो गई ।[5] मृत्यु के समय उनकी अवस्था 53 वर्ष की थी ।

इस प्रकार जून 1674 ई० में राज्याभिषेक के बाद मृत्यु पर्यन्त लगभग छ: वर्ष के अपने अन्तिम जीवनकाल में मुगलों से कूटनीतिक सम्बन्ध बनाये रखे । यह सम्बन्ध कभी-कभी विशेष कटुतापूर्ण हो जाता था ।[6] इस काल में शिवाजी

1- औरंगजेबनामा, पृ० 970.

2- डा० यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ० 134.

3- वी०एन० लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ० 37.

4- रानाडे, राइज़ आफ़ मराठा पावर, पृ० 75.

5- श्री वी०का० राजवाड़े, मराठ्यांचा इतिहासाची साधने, पृ० 64.

6- सर देसाई, ए न्यू हिस्ट्री आफ़ द मराठाज़, पृ० 48.

के तीन महत्वपूर्ण कार्य रहे । प्रथम मुगल सेना-नायक के विरूद्ध गोलकुण्डा के शासक को प्रभावी सहायता प्रदान करना तथा मुगलों से मोर्चा लेना । द्वितीय स्वयं कर्नाटक पर चढ़ाई करना एवं तृतीय, मुगल सेनानायकों के आक्रमणों के विरूद्ध बीजापुर को सहायता प्रदान करना ।[1] छः वर्षों के अपने इस शेष जीवनकाल में शिवाजी बीजापुरियों और मुगलों से अनेक प्रदेशों को छीन लिया । विल्लोर, जिन्जी आदि दुर्गोंपर उनका अधिकार हो गया ।[2] दक्षिण के प्रसिद्ध मुगल सेनापति बहादुरखाँ पर आक्रमण करके उन्होंने लगभग एक करोड़ रूपये नगद तथा बहुत सा धन प्राप्त किया ।[3] बीजापुर के सुल्तान ने तंग आकर शिवाजी से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ की और उन्हें कर देना स्वीकार कर लिया । शिवाजी के राज्य में पश्चिमी घाट व कोंकण, सूरत से गोवा तक का प्रदेश आ गया ।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्याभिषेक के बाद शिवाजी मुगलों से निरन्तर युद्ध करते रहे जिनसे मुगल-मराठा सम्बन्धों में विशेष तनाव आ गया ।

औरंगजेब के काल में शिवाजी के उत्तराधिकारी और मुगलों से उनके सम्बन्ध

शिवाजी की अप्रैल 1680 ई0 में मृत्यु हो जाने के बाद उनके पुत्रों, शम्भूजी और राजाराम आदि में सत्ता के लिए संघर्ष हुआ ।[5] शम्भूजी अथवा सम्भाजी ने विजयी होकर अपने भाई राजाराम और उनकी माता को कैद में

1- सिंह व ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 164.

2- डा० यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 210.

3- बी0एन0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 291.

4- अदावे आलमगीरी, पृ0 148; सैयद नरूल्ला, तारीखे अली आदिलशाह, पृ082.

5- एम0जी0 रानाडे, राइज़ आफ़ दी मराठाज़, पृ0 78.

डाल दिया ।[1] शिवाजी के महान आदर्शों की इस प्रकार उपेक्षा करके शम्भूजी 1680 ई0 में गद्दी पर बैठा ।[2] 1689 ई0 में उसकी मृत्यु के बाद सिंहासन राजाराम को मिला और 1780 ई0 में ताराबाई ने राज्य की बागडोर अपने हाथों में ली । औरंगजेब की मृत्यु तक अर्थात् 1707 ई0 तक उसने मुगलों को भारी क्षति पहुँचाकर मराठा राज्य के उदय की गति को कायम रखा ।[3] इस बीच मुगलों से उनके सम्बन्धों में जो उतार-चढ़ाव आये उनका विवेचन इन तीनों के शासनकाल के परिपेक्ष्य में किया जा रहा है ।

शम्भूजी (1680-1689 ई0) -

शम्भूजी अथवा सम्भाजी चरित्रहीन और विलासप्रिय शासक था जिसने मराठों को संगठित करने के कार्य की पूरी उपेक्षा कर दी ।[4] जब औरंगजेब बीजापुर और गोलकुण्डा से उलझा हुआ था तब उसने मुगलों के विरूद्ध उदासीनता का परिचय दिया ।[5] फलस्वरूप इन शिया राज्यों के पतन के बाद मुगलों की मराठों से सीधी टक्कर हुई और शम्भू जी को अपने अनेक प्रदेशों तथा दुर्गों से हाथ धोना पड़ा ।[6] शम्भूजी भागकर संगमेश्वर चला गया । वहाँ भी उसने बहुमूल्य समय यों ही नष्ट कर दिया । सम्भाजी की असावधानी से मुगलों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया । उन्होंने अचानक ही आक्रमण करके शम्भूजी तथा उसके मित्र कवि कुलिश को उनकी पत्नियों और पुत्रों सहित बन्दी बना लिया ।[7]

1- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 383.

2- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 289.

3- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 191.

4- ग्राण्ट डफ, मराठों का इतिहास, पृ0 181.

5- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 2, पृ0 383.

6- भाटिया और शर्मा, भारतवर्ष का इतिहास, पृ0 120.

7- मोहम्मद हाशिम खाफी खान, मुल्तख-बुल-लुबाब, भाग 2, पृ0 218.

बन्दियों को बेड़ियों से बाँधकर शाही खेमें में लाया गया । औरंगजेब ने शम्भूजी तथा उनके साथी को निर्ममतापूर्वक मरवा दिया और लाशें कुत्तों को खिलादी गईं । यही नहीं उनके सिरों में भूसा भरकर दक्षिण के प्रमुख नगरों में घुमाया गया ।[1]

वास्तव में औरंगजेब सम्भाजी को मारना नहीं चाहता था । उसने सम्भाजी को सन्देश दिया कि यदि तुम मुसलमान हो जाओ तो मैं तुम्हें जीवन-दान दे दूँगा ।[2] सर देसाई के अनुसार यद्यपि वह दुर्व्यसनी था, तथापि वह शिवाजी का लड़का था । बादशाह की कैद में रहना ही उसे अपमान जनक लगा । औरंगजेब के अपमानकारक सन्देश से वह इतना चिढ़ गया कि उसके उत्तर में उसने कहला भेजा कि यदि तुम अपनी बेटी मुझसे व्याह दोगे तो मैं मुसलमान हो जाऊँगा ।[3] सम्भाजी इतना कहकर ही न रुका, उसने मुहम्मद पैगम्बर को गालियाँ भी दीं । उसकी ये बातें जब औरंगजेब के कानों में पड़ी तो वह क्रोध से लाल हो गया और तत्काल आदेश दिया कि सम्भाजी की जीभ काटकर आँखें फोड़ दी जाय और उसके शरीर को टुकड़े-टुकड़े काटकर कुत्तों को खिला दिया जाय ।[4] इस प्रकार औरंगजेब ने सम्भूजी का निर्ममतापूर्वक वध करवा कर अपने अपमान का बदला लिया ।

राजाराम §1689-1700 ई0§ -

शम्भाजी के बाद उसका भाई राजाराम गद्दी पर बैठा । वह शूरवीर था, पर उसमें शिवाजी जैसी नेतृत्व शक्ति और कुशलता की कमी थी ।[5]

1- डा0 यदूनाथ सरकार, शिवाजी का राजवंश, पृ0 201·

2- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 254·

3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज़, भाग 1, पृ0 253·

4- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 98·

5- राजाराम चरित, §चिटणस§, पृ0 41-42·

उसे किसी प्रकार का प्रशासकीय अनुभव भी नहीं था । उसकी आयु भी केवल 19 वर्ष की थी ।[1] सौभाग्यवश उसे रामचन्द्र पंथ शान्ताजी घोरपाड़े, शंकर जी नारायण जैसे कुछ साहसी और प्रबल मराठा सरदारों का पूर्ण सहयोग मिला ।[2] इनकी सहायता से राजाराम ने मुगलों की आशाओं पर पानी फेर दिया और मराठा राज्य को नष्ट होने से बचा लिया ।

राजाराम के नेतृत्व में मराठों ने सारे देश को रौंद डाला । मुगलों की रसद बन्द करदेने और उन्हें असहाय बना देने की रणनीति का बड़ी कुशलता से संचालन किया ।[3] मुगल भी पूरी शक्ति के साथ राजाराम पर टूट पड़े । उन्होंने रायगढ़ और अन्य प्रदेशों को कब्जे में लेने के बाद जिन्जी के दुर्ग में राजाराम तथा उसके परिवार को घेर लिया ।[4] यह दुर्ग दक्षिण भारत का सबसे अधिक सुदृढ़ दुर्ग था जिसे लगभग 8 वर्षों के घेरे के बाद मुगल जीत सके ।[5] इस समय तक मराठों का संघर्ष राष्ट्रीय संघर्ष बन गया था और मुगल सम्राट चारों ओर से उसके छापामार आक्रमणों से आतंकित और परेशान था ।[6] जे0 एन0 सरकार के अनुसार "पूर्वीतट पर जिन्जी मराठों के संघर्ष का केन्द्र बन गया था, जबकि उसका मन्त्री रामचन्द्र पन्त पश्चिम में मुगलों की प्रगति पर अंकुश लगाये हुए था । मराठों की कोई केन्द्रीय सरकार और छत्रपति न होने के कारण औरंगजेब की कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं । प्रत्येक मराठा सरदार अपनी थोड़ी सी सेना के साथ जिधर से चाहता आक्रमण कर देता था । यह युद्ध

1- हर्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 32.

2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् मराठाज़, भाग 1, पृ0 319.

3- रानाडे, राइज़ आफ् मराठा पावर, पृ0 79.

4- डा0 यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पृ0 402.

5- दामोदर सावरकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 25.

6- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 192.

अब एक राष्ट्रीय युद्ध हो गया था। अब कोई संगठित मराठा राज्य या राज्य की सेना नहीं थी जिसे औरंगजेब आक्रमण करके नष्ट करता। वास्तव में इन विलक्षण युद्धों को औरंगजेब समाप्त नहीं कर सकता था।[1]

जिन्जी के दुर्ग के पतन के बाद राजाराम बचकर सतारा आ गया जहाँ से उसने मुगलों के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा।[2] मुगलों ने कुछ सैनिक सफलताएँ प्राप्त कीं, पर ये उपयोगी सिद्ध नहीं हुईं। क्योंकि मराठों का विरोध निरन्तर प्रबल होता चला गया।[3] दिसम्बर 1699 ई0 में मुगलों ने सतारा को घेर लिया पर कोई लाभ नहीं हुआ। 1700 ई0 में राजाराम की मृत्यु के बाद ही सतारा का दुर्ग जीता जा सका।[4] इस प्रकार राजाराम के समय में मुगलों और मराठों का सम्बन्ध सदा संघर्षपूर्ण रहा।

तारा बाई (1700-1707 ई0) -

राजाराम की मृत्यु के बाद उसका बेटा कर्ण गद्दी पर बैठा पर चेचक की बिमारी से कुछ ही सप्ताह बाद मर गया।[5] अब राजाराम की विधवा रानी ताराबाई अपने दूसरे नाबालिग पुत्र शिवाजी द्वितीय को गद्दी पर बैठाकर स्वयं राज्य संरक्षिका बन गई।

ताराबाई बड़ी सुन्दर और योग्य स्त्री थी जिसे सैनिक शासन का पर्याप्त ज्ञान था। उसने पति से भी अधिक वीरता और उत्साह का प्रदर्शन किया।[6] उसके नेतृत्व में मराठों ने दूर-दूर के मुगल प्रदेशों पर छापे मारे।[7]

1- जे0एन0 सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पृ0 406.
2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज़, भाग 1, पृ0 322.
3- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 34.
4- शिवाजी छत्रपति सोवेनियर - भारतीय इतिहास संसोधक मण्डल क्वाटर्ली, 143.
5- डा0 ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 416.
6- मनोहर मालमोंकर, छत्रपतिज़ आफ् कोल्हापुर, पृ0 45.
7- ग्राण्टडफ, मराठों का इतिहास, पृ0 182.

खाफी खाँ के अनुसार दक्षिण के सिरनौज, मन्दसौर और मालवा तक के सूबों को लूटने के लिए सेनाएँ भेजी गईं । औरंगजेब के सब संघर्ष योजनाबद्ध आक्रमण और घेरे उसके राज्यकाल के अन्तिम क्षण तक विफल रहे और मराठों की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई ।[1] 1706 ई0 में मराठों ने अहमदनगर में मुगलों के कैम्प को घेरलिया और बड़ी मुश्किल से औरंगजेब उन्हें हटा पाया । ताराबाई ने मुगलों को जन-धन की भारी हानि पहुँचाई ।[2] अन्त में औरंगजेब की सहनशक्ति समाप्त हो गई और उसने मराठों के संघर्ष से मुख मोड़ लेना ही उचित समझा ।[3] उत्तर भारत की ओर लौटते समय मार्ग में ही 1707 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शिवाजी के समय में मराठों और मुगलों का जो संघर्ष आरंभ हुआ वह शिवाजी के उत्तराधिकारी सम्भाजी के समय में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया । इसी संघर्ष का परिणाम सम्भाजी की हत्या थी । इस हत्या से मराठे निश्चितरूप से कुछ हतोत्साहित हुए, किन्तु शीघ्रही राजारम के नेतृत्व में उन्होंने अपना पूर्व-प्रभुत्व प्राप्त कर लिया । राजाराम के बाद ताराबाई ने भी मुगलों को विशेष छति पहुँचाई । उसके कार्यकाल में मराठे अनेक मुगल क्षेत्रों पर कब्जा करने में सफल हुए । इस प्रकार मराठों और मुगलों का सम्बन्ध सदा द्वेषपूर्ण रहा ।

1- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 365.

2- डा0 यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 4, पृ0 385.

3- खाफी खां, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 278.

मुगल सम्राटों की मराठों के प्रति नीति

नि:संदेह मराठा साम्राज्य के अभ्युदय के पीछे मुगलों की हिन्दू विरोधी नीति भी एक प्रमुख कारण थी । मराठों की शक्ति सत्रहवीं शती में निरन्तर बढ़ती गई । अकबर के दक्षिण अभियान के बाद दक्षिणी रियासतों के शासक और मुगल सम्राट दोनों के लिए मराठा सरदारों की मैत्री और उनके फौजी दस्तों का प्रयोग महत्वपूर्ण हो गया था । मलिक अम्बर ने मराठा सरदारों के साथ मैत्री को पर्याप्त महत्व दिया था ।[1] किन्तु मुगल सम्राट भी मराठा सरदारों के स्थानीय प्रभाव और मराठों के रण कौशल को जानते थे । वे उनके सहयोग के प्रति उदासीन नहीं थे ।[2] जहाँगीर के शासन-काल में उदाती राय, लखोजी जादव आदि अनेक प्रमुख मराठा सरदारों को शाही मंसब प्रदान किए गए थे ।[3] 1629 ई0 में शाहजहाँ के अहमदनगर के विजय अभियान के समय मुगलों के साथ पाँच पंचहजारी मराठा मंसबदार थे ।[4] इस प्रकार ज्ञात होता है कि मुगलों और मराठों का सम्बन्ध शिवाजी के पहले भी था ।

जिस समय तक औरंगजेब सिंहासन पर बैठा, शिवाजी ने बीजापुर राज्य के बहुत से किले और इलाके हस्तगत करके, शाहजी की पूना जागीर का पर्याप्तरूप से विस्तार कर लिया था ।[5] उत्तराधिकार के युद्ध के ...

1- डा0 नूरूल हसन, जमींदारी अण्डर दी मुगल्स, इण्डियन सोशल ए... इकोनामिक हिस्ट्री रिव्यू, 1964 (4), पृ0 27.

2- इरफान हबीब, दी एग्रोरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया ... 1965, पृ0 151.

3- नोमान अहमद सिद्दीकी, ऐग्रेरियन सिस्टम इन दी एट...

4- लाहोरी, बादशाहनामा, 294, 322,507. - यहाँ... के नाम शाहजी भोसले, मालोजी भोसले, सेलोजी भो... बहादुर जी मिलते हैं ।

5- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भा...

आगरा की ओर प्रस्थान करने के पूर्व औरंगजेब ने आदिलशाह को यह मंत्रणा दी थी कि "मुल्क की हिफाजत करो। शिवा को, जिसने मुल्क के कई किलों पर कब्जा जमालिया है, निकाल दो। यदि तुम उसकी सेवायें चाहते हो तो उसे मुगल सल्तनत से दूर कर्नाटक में जागीर दो, ताकी वह शाही मुल्क में लूट-मार न कर सके"।[1]

इससे शिवाजी के प्रति औरंगजेब की नीति स्पष्ट हो जाती है। वह मुगल साम्राज्य की सीमा पर एक ऐसी शक्ति की स्थापना नहीं चाहता था जो विस्तारवादी हो और जिससे साम्राज्य में शान्ति भंग होने का भय हो।[2] दक्षिणी रियासतों के प्रति औरंगजेब की नीति उन्हें अधिकृत कर लेने की थी। अत: शिवाजी के विरूद्ध दक्षिणी राज्यों का सहयोग प्राप्त करना उसके लिए असंभव था।[3] दक्षिणी रियासतों और मराठों का सहयोग और साथ ही मराठा शक्ति और राज्य का विस्तार यही औरंगजेब के सम्मुख सबसे बड़ी राजनीतिक समस्या थी जिसका कोई समाधान वह अपने शासन के अन्त तक नहीं निकाल पाया।[4]

औरंगजेब की मराठा नीति में दो चरण दिखाई देते हैं। प्रथम चरण में वह दक्षिणी रियासतों के सहयोग द्वारा मराठों की शक्ति को सीमित करने का प्रयत्न करता है। दूसरे चरण में वह दक्षिणी रियासतों को हस्तगत करने के बाद मराठों पर आधिपत्य जमाने और उनकी शक्ति को नियन्त्रित करने का प्रयास करताहै।[5] दोनों कालों में उसकी मराठा विरोधी और मराठा

1- सर यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 53-54.

2- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 322.

3- रानाडे, राइज् आफ् दी मराठा पावर, पृ0 219.

4- डा0 यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 4, पृ0 68.

5- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 17.

मैत्री दोनों तत्व दिखाई देते हैं ।

शाइस्ता खां और जसवन्तसिंह द्वारा शिवाजी को कुचलने के अभियानों के बाद, मिर्जा-राजा जयसिंह को दक्षिण भेजा गया । मिर्जा-राजा महान कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी था ।[1] उसने पूरी नाकाबन्दी करके शिवाजी को पुरन्दर के किले में घेर लिया और उसे सन्धियाचना के लिए बाध्य किया ।[2] 1665 ई0 में जयसिंह ने शिवाजी के साथ पुरन्दर की सन्धि की । उस समय शिवाजी का स्वराज्य दस लाख हूण (प्राय: 50 लाख रुपये) का था जिसमें से आधा पुराने निजामशाही (अहमदनगर) राज्य और आधा निजामशाही राज्य के उस भाग में जो 1636 ई0 की सन्धि में बीजापुर को दे दिया गया था ।[3] सन्धि के अनुसार निजामशाही राज्य में स्थित 35 किलों में से 23 किले जिनकी आय 4 लाख हूण की थी, मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गये और शेष 12 किले जिनकी आय 1 लाख हूण थी, शिवाजी को प्रदान कर दिये गये ।[4] बीजापुर रियासत में से शिवाजी द्वारा विजित 5 लाख हूण की आयवाले क्षेत्र के ऊपर शाही फरमान द्वारा शिवाजी को मान्यता प्रदान कर दी गई ।[5] इसके अलावा बीजापुर राज्य का 4 लाख हूण आय वाला और क्षेत्र शिवाजी को प्रदान कर दिया गया और यह गुप्त समझौता हुआ कि उसके ऊपर कब्जा दिलाने के लिए मुगल सेना और शिवाजी मिलकर बीजापुर के ऊपर अभियान करेगें ।[6]

1- डा॰ रामप्रसाद त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल आफ दी मुगल एम्पायर, पृ0 416.
2- इर्विन, दी लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ0 22.
3- मुआसिरे आलमगीरी, पृ0 294.
4- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 3, पृ0 335.
5- डा0 नूरुल हसन, जमींदारी अण्डर दी मुगल्स, इण्डियन सोसल एण्ड इकोनामिक हिस्ट्री रिव्यू, 1964, पृ0 28.
6- इरफान हबीब, दी एग्रोरियन सिस्टम आफ् मुगल इण्डिया, पृ0 151.

जय सिंह की नीति पूर्णतया साम्राज्यवादी नीति थी । वह एक बार में दो निशाने लगाना चाहता था । उसकी धारणा थी कि यह दोनों उद्देश्य दक्षिण में एक अग्रसरवादी नीति अपनाने के सन्दर्भ में ही पूरे किये जा सकते हैं । उसका कथन था – बीजापुर की विजय कर्नाटक और सारे दक्षिण की विजय का प्रथम चरण है ।[1]

औरंगजेब ने पुरन्दर की सन्धि को स्वीकृति प्रदान कर दी, किन्तु उसने जयसिंह की नीतियों को पूर्णतया अंगीकार नहीं किया । बीजापुर की विजय के लिए जितने साधनों की आवश्यकता थी उतना औरंगजेब ने जयसिंह को देना उचित नहीं समझा ।[2] उस समय इरानी आक्रमण की आशंका और अफगान कबायलियों के विद्रोह के कारण जयसिंह को सभी साधन भेजना संभव नहीं था ।[3] 1665–66 ई0 में बीजापुर का अभियान असफल होने से जयसिंह को अपनी सारी दक्षिणी तथा मराठा नीति विफल होते दिखाई दी । बीजापुर अभियान पर इतना धन व्यय करने के बाद भी मुगलों को न तो भूमि मिली न मुद्रा । इस बातपर औरंगजेब ने जयसिंह की भर्त्सना की ।[4] इस सन्दर्भ में जयसिंह ने शिवाजी को आगरा जाने के लिए इस आशय से राजी किया कि औरंगजेब उसे ऊँची पदवी इत्यादि से गौरवान्वित करेगा । इस प्रकार मुगलों तथा मराठों की मैत्री दृढ़ हो जायेगी ।[5] किन्तु उसका यह मनोरथ सिद्ध न हो सका, क्योंकि औरंगजेब ने शिवाजी को 5000 मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा करके उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाई ।[6] साथ ही उसने यह चाहा कि पुरन्दर की सन्धि के अनुसार शिवाजी के निजामशाही क्षेत्र में स्थित 23 किलों पर तो मुगल अधिकार बना रहे, किन्तु चार लाख के जो बीजापुरी

1- सर यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 135.
2- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 91.
3- साकी मुस्तइदखाँ, मआसिरे आलमगीरी, पृ0 104.
4- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 3, पृ0 349.
5- ग्राण्टडफ, हिस्ट्री आफ् दी मराठाज़, भाग 1, पृ0 107.
6- रालिंसन, शिवाजी द मराठाज़, पृ0 32.

क्षेत्र दिलवाने का वायदा उससे किया गया था उसे मुगल सहयोग के बिना शिवाजी स्वयं जीते ।[1] इस आधार पर शिवाजी का मुगलों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना असम्भव था ।

1669 ई0 से 1678 ई0 तक शिवाजी ने निरन्तर संघर्ष करके अपने राज्य की सीमा का और विस्तार किया ।[2] साथ ही उसने बीजापुर तथा गोलकुण्डा दोनों के साथ दृढ़ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये और कर्नाटक में भी बहुत से क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया ।[3] 1680 ई0 में उसकी मृत्यु के समय उसके साम्राज्य की आय एक करोड़ हूण की थी, जिसमें कर्नाटक के क्षेत्र भी सम्मिलित थे ।[4]

1675 ई0 तक औरंगजेब ने शिवाजी के साथ मंसब तथा राज्य के बारे में समझौता करने का कोई प्रयास नहीं किया ।[5] 1676 ई0 में दक्षिण के सूबेदार बहादुर खां ने शिवाजी के पुत्र सम्भा जी को 6000 जात, 6000 सवार तथा 80 लाख दाम इनाम की मंसब प्रदान करवाने का वायदा किया और उसके बदले उससे केवल 17 किलों की मांग की ।[6] इससे ऐसा ज्ञात होता है कि औरंगजेब उस समय भी पुरन्दर की सन्धि को समझौते का आधार समझता था । यद्यपि इस अवधि में शिवाजी की शक्ति और साम्राज्य दोनों का बहुत विकास हो चुका था ।[7] 1678 ई0 में सम्भाजी के मुगलों के साथ मिल जाने पर उसे

1- सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 23.
2- सर देसाई, मराठी रियासत, पूर्वार्द्ध, पृ0 158.
3- रानाडे, राइज़ आफ़ दी मराठा पावर, पृ0 63.
4- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, खण्ड 8, पृ0 38.
5- किनकेड और निस, हिस्ट्री आफ़ दी मराठा पीपुल, पृ0 37.
6- रजवाड़े, मेटिरियल्स फार द हिस्ट्री आफ़ द मराठाज़, खण्ड 17, पृ0 65.
7- ग्राण्टडफ़, हिस्ट्री आफ़ दी, मराठाज़, खण्ड 1, पृ0 112.

7000 की मंसब प्रदान की गई । इस प्रकार धीरे-धीरे औरंगजेब ने शिवाजी की उच्च मंसब की माँग को उन्होंने 1666 ई0 में माना तो, किन्तु बहुत विलम्ब से ।[1] अब परिस्थिति बदल चुकी थी । 1698 ई0 तक औरंगजेब जिंजी तक के विशाल क्षेत्र के ऊपर अपना अधिकार जमाने में संलग्न रहा । इस काल में शायद वह समझता था कि सम्पूर्ण दक्षिण पर कब्जा कर लेने के बाद मराठे अपने आप हथियार डाल देंगे ।[2] किन्तु यह उसकी भूल थी । 1689 ई0 में सम्भाजी को पकड़ने के बाद उसका बध करना उसकी दूसरी बड़ी राजनीतिक भूल थी ।[3] वास्तव में इस समय मराठों के प्रति औरंगजेब की नीति कुछ स्पष्ट नहीं है । एक ओर उसे मराठा राजपरिवार से चिढ़ थी तो दूसरी ओर वह उनके अस्तित्व को पूर्णतया समाप्त भी नहीं करना चाहता था ।

सम्भा जी के बध के बाद नवम्बर 1690 ई0 में सम्भाजी की माँ और दूसरे सम्बन्धियों को आदर पूर्वक बादशाह के डेरे के पास उपयुक्त स्थान दिया गया और उसके पुत्र शाहू को जिसकी आयु उस समय 9 वर्ष की थी, 7000/7000 मंसब और राजा की उपाधि प्रदान की गई ।[4] उसके छोटे भाई मदनसिंह और माधव सिंह को भी मंसब प्रदान किए गए ।[5] इस प्रकार औरंगजेब और मराठे दोनों की दृष्टि में शाहू सम्भाजी का उत्तराधिकारी था । मराठा सरदारों को उसके पास आने जाने की अनुमति थी । 1703 ई0 में उसका विवाह जादव तथा सिन्धिया वंश के मराठा मंसबदारों की दो कन्याओं के साथ किया गया ।[6] कहा जाता है कि 1703 ई0 में औरंगजेब ने एक बार

1- सर देसाई, मराठी रियासत, (पूर्वार्द्ध), पृ0 135·
2- सर यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 44-45·
3- रालिंसन, शिवाजी द मराठा, पृ0 34·
4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स, पृ0 45·
5- रुकाइमे कराइम 23 तथा मसाइरे 483·
6- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब, भाग 3, पृ0 24।·

शाहू को मुसलमान बनाने की भी सोची थी किन्तु जीनतउन्निसा बेगम के अनुरोध पर अपना निश्चय उसने इस शर्त पर बदल दिया कि उसके स्थान पर दो अन्य मराठा सरदार इस्लाम ग्रहण करें ।[1] अत: प्रतापराव गूजर के दो पुत्र खाण्डे राव तथा जगजीवन ने शाहू के स्थान पर मुसलमान बनना स्वीकार किया । उनका नाम क्रमश: अब्दुर्रहीम और अब्दुर्रहमान रखे गये ।[2]

इसी समय औरंगजेब ने शाहू को छत्रपति शीवाजी की तलवार भवानी जो 1689 ई0 में उसे प्राप्त हुई थी, प्रदान की और अक्कलकोट, इन्द्रापुर, सूपा, बारामती और नेवासा के परगने उसे जागीर में दिये ।[3] 1703 ई0 में सैनिक शक्ति द्वारा मराठों को कुचलने के प्रयासमें विफल हो जाने के बाद औरंगजेब ने मराठों के साथ सन्धि करने का विचार किया और इसके लिए शाहू को प्रयोग करना चाहा ।[4] कामबक्श के माध्यम से धनाजी जाधव के साथ बात-चीत प्रारम्भ की गई । धनाजी ने दक्षिण की चौथ तथा सरदेशमुखी की ओर सब मराठा सरदारों के नाम माफी के फरमानों की मांग की ।[5] उसका प्रस्ताव यह था कि कामबक्श शाही शिविर से 10 मील दूर शाहू को लाये जहाँ मराठा सरदार उसका अभिवादन करे और उसके बाद शाही दरबार में आकर मंसब तथा खिलअत स्वीकार करें ।[6] तद्नुसार 70 मराठा सरदारों के नाम फरमान लिखे गये । मराठों को दक्षिण की सरदेश मुखी देने का प्रस्ताव

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठा पीपुल, भाग 1, पृ0 331·

2- ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य, भाग 3, पृ0 41·

3- मआसिरे आलमगीरी, पृ0 480-82; ब्रजकिशोर ताराबाई, पृ0 95·

4- खाफी खां, वही, 520 मआसिरे, 473·

5- पारसनीस, ब्रह्मेन्द्र स्वामीचे चरित्र, पृ0 111-112·

6- अथरअली, नोबिलीटी अण्डर औरंगजेब, पृ0 31·

भी औरंगजेब ने स्वीकार कर लिया । इस आशय की सनद भी अहसन खाँ और मीरमलंग को सौंप दी गई ताकी वह मराठों को दे दी जाय[1], किन्तु जब मराठे सरदार दल-बल सहित एकत्रित हुए तो औरंगजेब को डर लगा कि कहीं वह शाहू को उड़ाकर पहाड़ों में न ले जाये । अत: उसने सन्धि की वार्ता तोड़ दी और मीर मलंग को वापिस बुला लिया ।[2]

इससे स्पष्ट है कि औरंगजेब अन्ततोगत्वा मराठों के साथ सन्धि करने के लिए तैयार हो गया था । मंसब तथा राज्य के विषय पर कोई मतभेद नहीं था । मराठे भी मुगल बादशाह का आधिपत्य मानने को तैयार थे ।

1706 ई0 में औरंगजेब ने जुल्फिकार खाँ के माध्यम से पुन: सन्धि की बातचीत प्रारम्भ की किन्तु वह विफल रही ।[3] इस प्रकार मराठों को कुचलने या उनके साथ सन्धि करने, दोनों में से किसी में भी औरंगजेब को सफलता प्राप्त नहीं हुई । इस प्रकार उसकी मराठों के प्रति नीति सफल नहीं ज्ञात होती है ।

औरंगजेब के बाद बहादुरशाह अपने भाई कामबख्श को पराजित कर बादशाह बना ।[4] कामबख्श की पराजय के बाद बहादुरशाह ने दक्षिण की सूबेदारी जुल्फीकार खाँ को प्रदान की ।[5] शाहू के वकील गदाधर प्रहलाद और एक पुराने सरदार रायभानजी ने मई 1709 ई0 में अहमदनगर में बहादुरशाह को शाहू की ओर से यह अर्जी पेश की कि दक्षिण के छ: सूबों की चौथ और

1- तुजुके जहाँगीरी, वारिस बादशाहनामा, 70.

2- लाहोरी, बादशाहनामा, भाग 2, पृ0 505-6.

3- डॉ0 सतीशचन्द्र मित्तल, पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 48.

4- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 625.

5- भीमसेन, नुस्खा-ए-दिलकुशा, भाग 2, पृ0 162.

सरदेशमुखी शाहू को इस शर्त पर प्रदान कर दी जाय कि वह विरान प्रदेश को फिर से आबाद करेगा ।[1] इस आशय की सनद तैयार करली गई । किन्तु इसी समय ताराबाई के वकील ने बादशाह के समक्ष प्रस्तुत होकर अपने पुत्र शिवाजी तृतीय के नाम फरमान की याचना की और दक्षिण के सूबों से केवल सरदेशमुखी की माँग की ।[2] इसपर बहादुरशाह ने सरदेशमुखी की सनद शाहू और ताराबाई दोनों के नामपर दे दी और चौथ का मामला स्थगित कर दिया ।[3] इस प्रकार अपना झुकाव शाहू की ओर होते हुए भी सम्राट ने उसे स्पष्ट रूप से राजाराम का उत्तराधिकारी और शिवाजी के राज्य का वारिस अंगीकार नहीं किया ।[4] उसकी यह नीति दूरदर्शी नहीं थी ।

औरंगजेब की मराठों के विरूद्ध युद्धनीति असफल हो जाने के बाद बहादुरशाह के सामने चौथ और सरदेशमुखी का मराठों का दावा स्वीकार करने के अलावा कोई चारा नहीं था किन्तु बहादुरशाह की नीति न समझौते की थी न युद्ध करने की । इससे साम्राज्य को कोई लाभ नहीं मिल सकता था ।[5] बहादुरशाह के उत्तर आते ही शाहू ने राजगढ़ से निकलकर अपने सरदारों को आदेश दिया कि बादशाह ने इन देशों की सरदेशमुखी मुझे प्रदान कर दी है । चौथ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । इसलिए तुम शाही इलाकों पर हमला करो और लूटमार करो जब तक कि चौथ प्राप्त नहीं हो जाता ।[6]

बहादुरशाह के शेष शासनकाल में दक्षिण की नीति अस्त-व्यस्त रही ।

1- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 138.

2- अखबारात, 21 सितम्बर, 1709 ई0

3- अखबारात, अगस्त, 1710 से मार्च, 1711 ई0 तक ।

4- इरादत खाँ, तारीखे मुबारकशाही, पृ0 76.

5- आर0वी0 नदकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 239.

6- अखबारात, 21 रजब वर्ष, 3/21 सितम्बर, 1709 ई0 ।

1710 ई0 में खान देश का सूबेदार अमीर खाँ मराठों से लड़ते-लड़ते मारा गया ।[1] मराठों ने औरंगाबाद पर भी हमला किया किन्तु दक्षिण के नायब सुबेदार दाऊद खाँ पन्नी के आगमन पर वे खिसक गये ।[2] इसीकाल में दाऊद खाँ पन्नी ने शाहू के साथ एक गुप्त समझौता किया । इसके अनुसार दक्षिण की चौथ और सरदेशमुखी शाहू को देने का वादा था ।[3] इस समझौते की कोई लिखित पुष्टि नहीं हुई किन्तु इससे स्पष्ट है कि मुगलों ने यह स्वीकार कर लिया था कि दक्षिण में मराठों से सन्धि किये बिना शान्ति नहीं हो सकती ।[4] इस प्रकार बहादुरशाह की मराठों के प्रति नीति भी ढुलमुल थी । वह मराठों के प्रति कभी भी स्पष्ट नीति नहीं बना पाया था ।

बहादुरशाह के बाद मुगलों की दक्षिण नीति और भी ढीली हो गई । दुर्बल मुगल सम्राट मुगल दरबार के दलगत द्वन्दों के शिकार हो गये ।[5] जहादार शाह फर्रुखशियर मुहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय जैसे बादशाह मुगलों के शासक हुए किन्तु इनके समय में मुगल साम्राज्य क्रमश: पतनोन्मुख होता गया ।[6] उधर शाहू ने पेशवाओं को नियुक्त कर राज्य का संचालन उनके हाथों सौंप दिया ।[7] इन पेशवाओं में बालाजी विश्वनाथ बाजीराव तथा बालाजी बाजीराव बड़े दूरदर्शी एवं नीतिकुशल हुए । अत: मुगलों का पतन और मराठों का विस्तार

1- अखबारात, 1710 ई0 से मार्च 1711 ई0 ।
2- खाफी खाँ, पृ0 788; राजवाड़े, खण्ड 8, पृ0 56·
3- वारिद, पृ0 392; लेटर मुगल्स, पृ0 98·
4- पार्टीज़ एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 137·
5- डा0 एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 652·
6- इर्विन, लेटर मुगल्स, पृ0 178·
7- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 218·

होता गया । इस प्रकार औरंगजेब के काल तक मुगल-मराठा सम्बन्धों तथा मराठों के प्रति मुगलों की नीति का जो स्वरूप दिखाई देता है वह सौजन्यपूर्ण नहीं था । औरंगजेब निरन्तर मराठों को कुचलने के प्रयास में तत्पर रहा, किन्तु अन्ततक उसे सफलता नहीं मिली । मराठे सदा लूट-मार कर अपने साम्राज्य की शक्ति बढ़ाते रहे । औरंगजेब की मृत्यु के बाद उनका विस्तार उत्तर भारत तक हो गया ।

तृतीय अध्याय

मराठा राज्य का पुनर्गठन और मुगल दरबार की आन्तरिक परिस्थितियाँ

तृतीय अध्याय

मराठा राज्य का पुनर्गठन और मुगल दरबार की आन्तरिक परिस्थितियाँ

1689 ई0 में शम्भाजी के बध के पश्चात् औरंगजेब ने मराठा शक्ति को नष्ट समझ लिया था, किन्तु इससे मराठा सरदार विचलित नहीं हुए थे। उन्होंने मराठा राज्य की रक्षा का प्रयास पुन: आरम्भ कर दिया।[1] 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी पहले के मुगल सम्राटों की तरह शक्तिशाली नहीं थे। बहादुरशाह के बाद तो कमजोर और बुद्धिहीन मुगल सम्राटों की एक श्रृंखला ही प्रारंभ हो गई। उसी के साथ विशाल मुगल साम्राज्य धीरे-धीरे विघटित होने लगा। राजाराम, बालाजी विश्वनाथ तथा बाजीराव ने मुगलों की इस कमजोरी का पूरा लाभ उठाते हुए अपने पराक्रम तथा वीरता से मराठा शक्ति का संगठन कर मराठा राज्य का पुर्निनमाण किया।[2] मुगलों की शक्ति क्रमश: क्षिण होती गई और मराठे अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचते गये। प्रस्तुत अध्याय में मराठा साम्राज्य के पुनर्गठन तथा मुगल दरबार की आन्तरिक परिस्थितियों पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है।

मराठा राज्य का पुर्नगठन -

तत्कालीन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि राजाराम के नेतृत्व में मराठों ने मुगलों के अनेक महत्वपूर्ण किलों को जीत लिया था।[3] इसने मराठा राज्य-व्यवस्था में भी अनेक परिवर्तन किये थे। अबतक रायगढ ही मराठों की राजधानी मानी जाती थी किन्तु राजाराम ने उसे रायगढ से सतारा कर दिया।[4]

1.- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 2, पृ0 38.

2- राजवाड़े, ऐतिहासिक प्रस्तावना, पृ0 215.

3- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 139.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 45.

राजाराम ने धनाजी जाधव को सेनापति बनाया तथा रामचन्द्र पन्त को मुख्य आमात्य बनया । इसी प्रकार जिन-जिन लोगों ने महत्वपूर्ण कार्य किये थे, उन्हें जागीरें देकर प्रोत्साहित किया । 1699 ई0 को बरसात होते ही राजाराम ने खानदेश बरार की ओर एक बड़ा हमला करने का विचार किया । इसके लिए उसने बहुत भारी फौज जमा की मराठों ने इतनी बड़ी फौज पहले कभी नहीं रखी थी ।[1] राजाराम ने बादशाह की छावनी पर हमला कर साहू को मुक्त करने का प्रयत्न किया, पर उस समय साहू और बादशाह दोनों अपने डेरे में न थे, इसलिए राजाराम का प्रयत्न विफल हो गया । इसके बाद वह फौज उत्तर की ओर बढ़ी और कर की वसूली तथा मराठों की सत्ता स्थापित करती हुई बरार को गई । फिर यह जालना की ओर आई ।[2] इस समय जुल्फिकार खां ने मराठों पर हमला किया, पर वे किसी प्रकार बच कर भाग निकलने में सफल रहे । वापसी में मार्ग में राजाराम बीमार पड़ गया । सिंहगढ़ पहुचने तक उसकी बीमारी बहुत बढ़ गई । थोड़े ही दिनों के बाद 3 मार्च 1700 को वहाँ उसकी मृत्यु हो गई ।[3]

राजाराम के मरने पर भी मराठों ने अपना काम पहले जैसे ही जारी रखा । उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी ताराबाई ने अपने नाबालिग पुत्र शिवाजी द्वितीय को गद्दी पर बैठाया और स्वयं सब कार-बार देखने लगी ।[4] औरंगजेब ने जब देखा कि मराठे दबने के बदले दिनों-दिनबलवान होते जाते हैं, तो उसने विचार किया कि उनके किले भी ले-लेने चाहिए और लूट-मार करने

1- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 135·

2- दामोदर तामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 259·

3- इलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, भाग 7, पृ0 337·

4- आपटे, महाराष्ट्र इतिहास मंजरी, पृ0 28·

वालों पर अलग फौज भेजनी चाहिए ।[1] इस विचार से उसने जुल्फकार खाँ को कर्नाटक से शीघ्र वापस आने के लिए लिखा । उसने अपनी सेना के दो भाग किए और यह निश्चय किया कि एक भाग किले लें, और दूसरा भाग लूट-मार करने वालों को नष्ट करे । पहला काम उसने स्वयं अपने जिम्मे लिया और दूसरा आजमशाह के लड़के बेदरबख्श और जुल्फकार खाँ को सौंपा ।[2]

मराठा क्षेत्रों पर औरंगजेब का अधिकार -

सन् 1695 ई0 से औरंगजेब की छावनी ब्रह्मपुरी में थी, वहाँ से वह सन् 1699 ई0 के अक्टूबर में किले लेने के लिए आगे बढ़ा । बहुत शीघ्र उसने वसन्तगढ़ नाम का किला ले लिया । फिर उसने सतारा किले का घेरा डाला ।[3] मराठों का अनुमान था कि वसन्तगढ़ को लेने पर औरंगजेब पन्हाला की ओर जायेगा, इसलिए उन्होंने सतारा किले में अच्छा बन्दोबस्त नहीं किया था । तथापि उन्होंने आजमशाह को चुपचाप अपनी ओर मिला लिया और उसकी सहायता से समय-समय पर आवश्यक अन्न सामग्री किले में ले जाने लगे ।[4] इसी करण मराठे करीब पाँच महीने तक औरंगजेब की सेना का सामना करते रहे ।[5] अन्त में जब रसद मिलनी कम हुई तब मराठों ने किला मुगलों के हवाले किया । इस घटना के केवल एक महीने बाद राजाराम की मृत्यु हो गई । इन सब बातों से औरंगजेब की आशा बढ़ी और उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब सफलता निकट है ।[6]

सतारा लेने पर औरंगजेब ने परली को घेरा और दो महीने में उसे

1- सर देसाई, मराठी रियासत मध्य विभाग, पृ0 135.

2- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 98.

3- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 112.

4- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 117.

5- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ मराठा पिपुल, भाग 2, पृ0 167.

6- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 225.

भी ले लिया । इसके बाद बरसात शुरू हुई, इससे पहाड़ी क्षेत्र में उसकी सेना की दुर्दशा होने लगी । इसलिए मैदान में छावनी डालने के विचार से वे वहाँ से वापस लौटे, पर कृष्णा नदी की बाढ़ से उनके सैकड़ों लोग नष्ट हो गये ।[1] इन कठिनाइयों का मुकाबला करते हुए उसने मान नदी के किनारे खबासपुर में छावनी डाली । यहाँ उसने फौज का ठीक-ठीक बन्दोबस्त किया । बरसात समाप्त होने पर उसने पन्हाला के किले को घेरा और मई 1701 ई0 में उसे ले लिया । इसके बाद अगले पाँच वर्षों तक औरंगजेब इसी तरह मराठों के किले जीतने का उद्यम करता रहा ।[2] वर्धनगढ़ नन्दीगिरी, चन्दनवन्दन, विशालागढ़, बहादुरगढ़, राजगढ़ तोरणा, परन्दर आदि किले उसने ले लिए । इस कार्य को करने के लिए औरंगजेब ने अपनी भेद-नीति का भी प्रयोग किया । उसने कुछ ऐसे जाली चिट्ठियाँ बनवाई जिससे मराठे सरदारों को एक दूसरे के प्रति मुगलों से मिलने का संशय हो । उसका यह प्रयत्न भी बहुत कुछ सफल रहा ।[3] इसी कारण से ताराबाई और रामचन्द्र पंत में आपस में अनबन शुरू हो गई । ताराबाई को परशुराम त्रिम्बक पर विशेष विश्वास था । इस समय तक कई पुराने मराठा सरदार मर चुके थे । धनाजी जाधव, रामचन्द्र पंत, परशुराम त्रिम्बक और संकरानी नारायण ही मुख्य थे । परन्तु इनमें भी पर्याप्त मेल नहीं था ।[4] इसबात का पता औरंगजेब को था, इसलिए उसने बेदारबख्त और जुल्फिकार खाँ को सन्देशा भेजा कि मराठों को साफ करने का यही अवसर है ।[5] यह ठीक है कि इस समय मराठों में पूरा मेल नहीं था । परन्तु मुगलों से लड़ने का जोश उनका कम नहीं हुआ था । ताराबाई ने इसका लाभ उठाया ।

1- बालाजी हर्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 90.

2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज़, भाग 1, पृ0 342.

3- नागपुर का भोंसले, याँची वरवर, पृ0 20.

4- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, भाग 2, पृ0 12.

5- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग 4, पृ0 234.

1702 ई0 में मराठों ने सूरत और बुरहानपुर से भारी मात्रा में चौथ वसूल किया। 1705 ई0 में मराठों ने नर्मदा नदी पार कर मालवा पर चढ़ाई की और वहाँ भी चौथ वसमल किया।[1] इसपर औरंगजेब ने जुल्फिकार खाँ को मालवा भेजा और बरार तथा गुजरात का भी बन्दोबस्त किया। किन्तु मराठों को दबाना आसान नहीं थी। मुगलों के आते ही वे तितर-बितर हो जाते और उनके दूर होते ही एकत्र होकर कर वसूली का काम शुरू करदेते थे।[2] मराठों की सफलता का मुख्य कारण यह था कि वे अत्यन्त सादगी से रहते थे। जबकि मुगल लोग बहुत विलासी हो गये थे।[3] विशाल हरम, सेवकों की फौज और बाल-बच्चों के कारण मुगल सेना की गतिशीलता बहुत कम रह गई थी। युद्ध में यदि मराठों को विजय मिलती थी तो उन्हें साथ में बहुतसी उपयोगी सामग्री भी मिल जाती थी, परन्तु मुगलों को जीतने के बाद भी मराठों से कुछ विशेष प्राप्ति नहीं होती थी।[4] इसी कारण से औरंगजेब का मराठों को दबाने का प्रयत्न निष्फल रहा।

मराठों के सारे किले ले-लेने पर औरंगजेब ने बीजापुर में छावनी डाली थी। इस काम में उसे बहुत कष्ट सहने पड़े थे।[5] इस कारण से वह बहुत त्रस्त हो चुका था। ऐसे समय में उसके पुत्र कामबख्श ने मराठों से सन्धि करने की बात कही तो औरंगजेब ने उसे मान लिया। उसने पहले धनाजी जाधव से सन्धि की बात शुरू की, परन्तु शर्तें निश्चित नहीं हो सकीं और औरंगजेब ने यह बात बन्द कर दी।[6] इसी समय बीजापुर प्रान्त के वाकिमखेड़े नामक गाँव

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दि मराठा, भाग 1, पृ0 151.
2- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 152.
3- किनकेड, हिस्ट्री आफ् दि मराठा, पिपुल, पृ0 168.
4- तारीखे आलमगीर सानी, पृ0 96.
5- सर यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 169-70.
6- एच0एन0 सिनहा, राइज़ आफ दि पेशवाज़, पृ0 43.

में पीता नाईं ने बड़ी गड़बड़ मचा रखी थी । वह मुगल फौज पर हमला करता और लूट-मार किया करता था, उसे दबाने के लिए औरंगजेब ने फरवरी 1705 ई0 में वाकिमखेडे पर डेरा डाला । पर उस भाग के लोगों की तथा धनाजी जाधव की पीता नाईं को अच्छी मदद मिली, इस कारण जुल्फकार खां और कर्नाटक के सूबेदार दाऊद खां ऐसे बड़े-बड़े सरदारों को औरंगजेब ने जब उस छोटे से गावं को लेने के लिए भेजा तब कहीं ढाई महीने के बाद वह उनके हाथ लगा ।[1] औरंगजेब जब वाकिमखेड़ा लेने में लगा हुआ था, तब उसके अत्यन्त परिश्रम से लिए हुए किलों को मराठों ने वापस लेने की शुरूआत की । रामचन्द्र पंत ने पन्हाला और पावनगढ़ लिए, परशुराम त्रिम्बक ने वसन्तगढ़ और सतारा के जिले जीते । संकराजी नारायण ने सिंहगढ़, रायगढ़ और रोहिणा के किले ले लिए । वाकिमखेड़ा लेते-लेते औरंगजेब तंग आ चुका था ।[2] इतने परिश्रम करके जीते हुए किले मराठों के हाथ वापस जाने की खबर पाकर उसे बहुत दुःख हुआ । वह बीमार पड़ा और अहमदनगर को वापस आया । वहाँ 20 फरवरी, 1707 ई0 को उसकी मृत्यु हो गई ।[3] इस प्रकार मराठों को जीतने का उसका सारा प्रयत्न विफल हुआ ।

मुगल दरबार से साहू की मुक्ति -

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकार का संघर्ष शुरू हो गया । मृत्यु की खबर पाते ही उसका बड़ा लड़का मुअज्जम काबुल से दिल्ली के लिए रवाना हो गया । दूसरे दो लड़के दक्षिण में थे । उनमें से आजम, जुल्फकार खां को मिलाकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ । उसी के साथ शाहू भी था । इधर मुगल सेना का ध्यान उत्तर की ओर जाते ही मराठों

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ दि मराठा, भाग 2, पृ0 80-81.

2- राजवाड़े, भाग 2, पृ0 65.

3- पेशवा दफ्तर लेख, पृ0 17-18.

ने अपना क्षेत्र वापस जीतने का क्रम शुरू कर दिया ।[1] धनाजी जाधव ने पूना के फौजदार लोधी खाँ को हराकर चाकण जीत लिया । यह खबर पाकर ज़ुल्फकार खाँ ने आजम खाँ को यह सलाह दी कि साहू को अपने राज्य में वापस जाने दे जिससे वहाँ पर ताराबाई के लड़के शिवाजी द्वितीय और उसके बीच राज्य के लिए झगड़े उठ खड़े हों ।[2] आजमशाह ने उसकी सलाह मानली और साहू को दक्षिण जाने के लिए स्वतंत्र कर दिया । साहू वहाँ से मुक्त होकर दक्षिण की ओर बढ़ा । रास्ते में सबसे पहले नन्दुखार के आस-पास के पहाड़ी प्रदेश का अधिकारी मोहनसिंह उससे मिला । फिर अमृतराव कदमबाड़े उसकी ओर आया । तद्नन्तर बरार का परशोजी भोंसले और खान देश का चिमड़ाजी दामोदर मोघे उससे मिले । इन बड़े-बड़े सरदारों के मिलने पर कई छोटे-मोटे लोग भी साहू के पक्ष में शामिल हुए ।[3] इस प्रकार उसकी सेना अच्छी बढ़ गई । गोदावरी के पास पहुँचने पर उसने अपने आने की खबर ताराबाई को भेजी । स्वाभाविक ही महत्वाकांक्षिणी ताराबाई इसे सुन कर अप्रसन्न हुई ।[4] उसने सोचा कि मेरे पति ने मराठा राज्य को किसी प्रकार बचाया है और आज यह साहू इस बने बनाए राज्य को लेने आ रहा है । इसलिए उसने उसे राज्य न देने का निश्चय किया । उसने पहले तो यह अफवाह उड़ाई कि यह असली साहू नहीं है । फिर उसने दरबारियों को इकट्ठा कर साहू को राज्य न देने का निश्चय किया ।[5] किलेदारों और सूबे के अमलदारों को उसने हुक्म भेजा कि साहू को किसी प्रकार मदद न दो । फिर उसने एक सेना साहू को हराने के लिए

1- हार्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 123.

2- भीमसेन विद्यालंकार, बीर मराठे, पृ0 159.

3- तामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 243.

4- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 68.

5- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, पृ0 49.

भेजी । सेना के साथ खण्डोवल्लाल चिटनीस भी था ।[1]

साहू के समक्ष इस सेना से संघर्ष करके अपना राज्य जीतने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं था । वह क्रमशः आगे बढ़ने लगा, रास्ते में पारद के पटेल ने उसका विरोध किया । पर साहू ने उसे हरा दिया । पारद से निकल कर साहू ठेठ कडूस तक आया, उसी समय धनाजी जाधव व परशुराम पंत वहाँ पहुँचे । धनाजी जाधव का कहना था कि यदि साहू सच्चा हो तो मुझसे आकर मिले ।[2] खण्डोवल्लाल ने पूछ-ताछ कर यह निश्चय किया कि असली साहू यही है, तब धनाजी जाधव उससे मिलने को राजी हो गया । इसपर भी परशुराम पंत अपना हठ छोड़ने को तैयार नहीं था । ऐसी स्थिति में दोनों पक्षों के बीच युद्ध होना स्वाभाविक था ।

खेड़ का युद्ध -

साहू और ताराबाई में जो युद्ध हुआ वह खेड़ के युद्ध के नाम से जाना जाता है । वास्तव में ताराबाई साहू को सत्ता सौंपने को तैयार नहीं थीं । उसने इस बात का निर्णय रण-क्षेत्र में ही करने का निश्चय किया ।[3] उसने अपनी सेना एकत्र की तथा उसे साहू के विरुद्ध रवाना किया । साहू भी उसका सामना करने के लिये आगे बढ़ा । खेड़ नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ ।[4]

ताराबाई की सेना सुसज्जित तथा अनुभवी थी । उसके सेनानी भी धनाजी तथा परशुराम पंत जैसे प्रख्यात वीर थे । इसके विपरीत साहू की सेना अनुभव हीन तथा इधर-उधर के दलों को एकत्रित कर बनाई गई थी । इस सेना का अभिनायकत्व करने वाला कोई योग्य सेनापति नहीं था ।[5] ताराबाई के सरदारों

1- डा0 गोपीचन्द, राजस्थान का इतिहास, पृ0 163.

2- सहस्त्र बुधे, छत्रपति शिवाजी, भाग 2, 117.

3- नामपुरकर भोसले, यांची बखर, पृ0 20.

4- सर देसाई, मराठी रियासत (मध्य विभाग), भाग 1, पृ0 27.

5- पेशवा दफ्तर, भाग 30, पृ0 134.

के आपसी मतभेद ही साहू की वास्तविक शक्ति थी । उसने कूटनीति का सहारा लिया । वह बालाजी विश्वनाथ को अपने पक्ष में लाने में सफल हो गया था । खंडो पल्लाल तथा सर सूबेदार नारोराम को भी उसने अपना समर्थक बना लिया था । ये तीनों ही धनाजी के प्रमुख विश्वास प्राप्त थे ।[1] इन्हीं के माध्यम से उसने धनाजी से गुप्त वार्ता कर उसकी सहानुभूति प्राप्त करली । खेड़ के युद्ध में धनाजी ने कोई विशेष रूचि नहीं ली थी । परिणाम स्वरूप ताराबाई का पलड़ा हलका पड़ गया था । इस युद्ध का मोर्चा अकेले परशुराम त्रिंबक प्रतिनिधि को ही सभालना पड़ा था । वह साहू के सामने टिक न सका और पराजित होकर सतारा की ओर भाग खड़ा हुआ ।[2] खेड़ की विजय जहाँ साहू की सफलता की आधारशिला सिद्ध हुई, वहाँ उसने ताराबाई की आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया । लोगों की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा गिर गई ।[3]

प्रतिनिधि के भागते ही धनाजी खुले रूप से साहू का समर्थक बन गया । साहू ने उसका बड़ा सम्मान किया तथा उसे अपना सेनापति बनाया । इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य मराठा सरदार भी ताराबाई का पक्ष छोड़कर शाहू की ओर आकर्षित होने लगे ।[4] खण्डो वल्लाल चिटजिस तथा पेशवा का भाई बहिरोपंत पिंगले भी शाहू के पक्ष में आकर मिल गये । शाहू ने वल्लाल को अपना चिटजिस नियुक्त किया ।

शाहू का सतारा पर अधिकार -

धावाजी जाधव ने इस युद्ध में विशेष भाग नहीं लिया, इसीलिए परशुराम पंत की हार हुई और वह भाग गया ।[5] फिर धनाजी शाहू से जा-मिले

1- आर०वी० नदकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० 86.
2- राजवाड़े, भाग 2, पृ० 62-63.
3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 2, पृ० 116.
4- डफ, हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 1, पृ० 374.
5- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ० 172.

और उसका सेनापति नियुक्त हुआ । खण्डोवल्लाल को शाहू ने उसके पूर्व पद पर कायम रखा ।[1] परशुराम पंत प्रतिनिधि भागकर सतारा के किले में रहने लगा । शाहू आगे बढ़कर चन्दन-वन्दन के किलों के पास आया और इन किलों को लेकर वहीं उसने वर्षाकाल बिताया । तदनन्तर उसने सतारा लेने का निश्चय किया । सतारा के किले में रह रहे प्रतिनिधि को अपनी ओर मिलाने के लिए उसने अनेक चिट्ठियाँ लिखीं, पर वह माना नहीं । ऐसी स्थिति में शाहू ने सतारा के किलेदार शेरणमीरा के बालबच्चों को कैद कर लिया । मजबूर होकर किलेदार ने किला शाहू के सुपुर्द कर दिया । शाहू ने प्रतिनिधि को कैद में डाल दिया ।[2] जनवरी 1708 में उसने अपना राज्याभिषेक समारोह किया । अगले दो वर्ष उसने ताराबाई के पक्ष को दबाने में बिताए । 1709 ई० में वर्षाकाल के बाद शाहू कोल्हापुर की ओर बढ़ा । ताराबाई उस समय पन्हाला किले में थी । शाहू के आने की खबर पाकर वह रांगणा किले को चली गई । शाहू ने पहले पन्हाला जीता फिर रांगणा के किलेपर हमला किया । परन्तु इस समय वह इस कार्य में सफल नहीं हुआ और लौटते समय मार्ग में जून 1710 में धनाजी जाधव की मृत्यु हो गई ।[3] धनाजी की मृत्यु से शाहू का पक्ष कमजोर हो गया । इससे ताराबाई के पक्ष को बहुत बल मिला, कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि कहीं शाहू का पतन न हो जाए । किन्तु उसे सौभाग्य से बालाजी विश्वनाथ के रूप में एक महान् लौह पुरुष मिल गया । बालाजी विश्वनाथ भट्ट उसका पूरा नाम था । आगे चलकर यही शाहू का प्रसिद्ध पेशवा हुआ ।[4] यह सम्भवत: 1679 ई० में कोंकण से महाराष्ट्र में आया था ।

1- आर०एस० शर्मा, द फाउण्डिंग आफ दी मराठाज़ फ्रीडम, पृ० 225·

2- श्रीवास्तव, मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ० 253·

3- सर रिचर्ड वर्थ प्लेस एण्ड क्रेडिल आफ मराठा पावर, पृ० 58·

4- एस०आर० शर्मा, द मेकिंग आफ् माडर्न इण्डिया, पृ० 184·

अपनी योग्यता से बढ़ते-बढ़ते सन् 1707 ई0 में यह दौलताबाद का सरसूबेदार हो गया था। धनाजी जाधव और शाहू का मेल करवाने में उसका बहुत हाथ था। चिमनाजी दामोदर मोघे और बालाजी की अच्छी मैत्री थी। मोघे के शाहू से मिलने पर उसने धनाजी को शाहूजी से मिलने के लिए आग्रह किया। धनाजी नें उसका कहना मान लिया। आगे चलकर सतारा की गद्दीपर बैठने पर शाहू ने धनाजी को अपना सेनापति नियुक्त किया। धनाजी ने चौथ और सरदेशमुखी वसूली का काम बालाजी पर छोड़ दिया। यह काम बालाजी ने इतनी योग्यता से किया कि धनाजी और शाहू दोनों उससे बहुत प्रसन्न हुए। धनाजी की मृत्यु हो जाने पर शाहू ने सेनापति का पद उसके पुत्र चन्द्रसेन जाधव को दिया, परन्तु वसूली का अधिकार बालाजी के ही हाथ में रहने दिया।[1]

धनाजी के मृत्यु के बाद शाहू का पक्ष बहुत कमजोर हो गया था। कई सरदार उसे छोड़कर चले गये। यहाँ तक कि धनाजी का पुत्र चन्द्रसेन जाधव जो उसका सेनापति था, ने भी उसका साथ छोड़ दिया। चन्द्रसेन प्रारम्भ से ही शाहू के विरुद्ध था, केवल सेनापति का ही पद मिलने के कारण वह शाहू से और भी रुष्ट हो गया था।[2] चौथ एवं सरदेशमुखी की वसूली को अधिकार स्वतन्त्रता पूर्वक बालाजी को मिला था। इसलिए दोनों के बीच द्वेष उत्पन्न हो गया था। एक छोटी सी बात से दोनों में इतना अधिक झगड़ा बढ़ा कि चन्द्रसेन ने बालाजी को बिल्कुल नष्ट करने का विचार किया। अन्त में बालाजी को शाहू से अपनी रक्षा करने के लिये प्रार्थना करनी पड़ी। शाहू ने उसकी रक्षा का वचन दिया।[3] शाहू ने हैबतराव निम्बालकर को चन्द्रसेन को हराने के लिए भेजा। दोनों पक्षों में जेऊर के पास लड़ाई हुई। चन्द्रसेन हारा

1- राजवाड़े, लेख संग्रह, भाग 2, पृ0 188.

2- वी0एम0 दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ0 238.

3- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 93.

और उसे भागना पड़ा । भागकर वह ताराबाई से जा मिला । उसने हैबतराव निम्बालकर, खण्डेराव दावाले तथा अन्य सरदारों को अपनी ओर फुसलाया ।[1] परिणाम स्वरूप शाहू के पास अब बहुत थोड़ी सी फौज रह गई । ताराबाई के पक्ष के सरदार शाहू के प्रदेश में लूट-मार मचाने लगे और ऐसा लगा कि शाहू का राज्य टिक नहीं सकेगा । इस समय केवल बालाजी ही उसके पक्ष में था । परशुराम त्रिम्बक को उसने कैद से मुक्त कर प्रतिनिधि पद दिया, पर उसका लड़का कृष्णाजी ताराबाई से जा मिला, इसलिए शाहू ने परशुराम पंत को फिर से कैद में डाल दिया ।[2]

इस समय तक बहुत से सरदार शाहू का साथ छोड़ चुके थे । आर्थिक रूप से भी शाहू का पक्ष निर्बल था । इस कठिन परिस्थिति में बालाजी ने साहूकारों से ऋण लेकर धन एकत्र किया और मराठों की एक नई सेना खड़ी कर दी ।[3] शाहू ने उसे सेनाकर्ता पद को दिया और 25 लाख की जागीर दी । इस समय ताराबाई का पक्ष बलवान हो चुका था और वह शाहू को पकड़ने का प्रयत्न कर रही थी । इस संकट से बचने के लिए बालाजी और शाहू ने युक्ति सोची । राजाराम की ताराबाई और राजसबाई नाम की दो स्त्रियाँ थीं । ताराबाई और शिवाजी द्वितीय ने ही महाराष्ट्र का दक्षिणी राज्य अपने कब्जे में कर रखा था । इसीलिए राजसबाई और उसका पुत्र शम्भाजी उनसे असंतुष्ट थे ।[4] शाहू ने राजसबाई को यह सूचना दी कि ताराबाई को कैद में डाल दो और उसके लड़के शिवाजी द्वितीय को पागल ठहराकर कारागार में बन्द कर दो, और अपने लड़के शम्भाजी को गद्दी पर बैठाकर राज का कारबार चलाओ । इस

1- एस0आर0 शर्मा, दि फाउण्डिग आफ् दि मराठा फ्रीडम, पृ0 148.

2- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ0 68.

3- आर0 बी0 नादरकर्णी, मराठों का उदय और अन्त, पृ0 160.

4- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 1, पृ0 235.

काम में मैं तुम्हारी मदद करने को तैयार हूँ । अपने पुत्र को गद्दी मिलने की आशा से राजसबाई बहुत प्रसन्न हुई और वह शाहू के कहने के अनुसार काम करने को तैयार हो गई । कुछ लोगों की सहायता से ताराबाई और शिवाजी द्वितीय को पन्हाला में कैद कर सन् 1712 ई० में शम्भाजी राजा बन बैठा ।[1] इस प्रकार ताराबाई का पक्ष नष्ट हो गया । इस प्रकार मराठों का यह घरेलू झगड़ा समाप्त हुआ । शिवाजी द्वितीय चौदह वर्ष के बाद सन् 1726 ई० में कैद में ही मरा । इसके एक लड़के शम्भाजी को इस नये राजा सम्भाजी ने पकड़कर मरवा डाला, पर रामराजा नामक एक अन्य पुत्र को ताराबाई ने किसी प्रकार मरने से बचालिया, यही रामराजा शाहू की मृत्यु के बाद सतारा का राजा हुआ ।[2]

ताराबाई के पक्ष का पतन तो हो गया किन्तु उसके साथी मराठे सरदार अब स्वतन्त्र बन बैठे थे। वे शाहू की सत्ता की अवहेलना करते थे । शाहू के लिए इनपर नियंत्रण करके छत्रपति के पद की प्रतिष्ठा की रक्षा करनी थी । इसी प्रयत्न में धोखे से बालाजी दामाजी थोरात की कैद में पड़ गया ।[3] ऐसी स्थितिमें शाहू ने बहुत सा धन देकर उसे छुड़वाया । थोरात को दबाने का काम वह तत्काल न कर सका, क्योंकि मान देश में कृष्णराव खटावकर ने, और कोंकण में कान्होंजी आंग्रे ने गड़बड़ मचा रखी थी । शाहू ने खटावकर के विरूद्ध बालाजी को और आंग्रे के विरूद्ध पेशवा बहिरोपंत पिंगले को भेजा । बालाजी और खटावकर के बीच, औंध के पास, भारी लड़ाई हुई । इसमें खटावकर हार गया, इस लड़ाई में परशुराम पंत के लड़के श्रीपत राव ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था[4]। इसलिए परशुराम को बन्धन मुक्त कर शाहू ने उसे फिर

1- स्टडी इन मराठा डिप्लोमेसी, पृ० 40.

2- चिन्तामणि किलकर, मराठे और अंग्रेज, पृ० 40.

3- दामोदर सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ० 86.

4- बालाजी हैडीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ० 125.

से प्रीतिनिधि पद पर आसीन कर दिया । आंग्रे और पिंगले के युद्ध में कुछ भिन्न परिणाम हुआ । कान्होंजी आंग्रे ने वहिरोपंत को हराकर कैद कर लिया, फिर यह भी अफवाह फैली कि वह सतारा पर हमला करना चाहता है ।[1]

इस समय बालाजी खटावकर को हराकर वापस आ चुका था । उसने सोचा कि कान्होजी आंग्रे बलवान सरदार है, इसलिए मेल की बाते करके उसे अपने पक्ष में मिलाना ही उचित होगा ।[2] बालाजी ने कान्होजी को उसके पूर्वजों के द्वारा शाहू के वंश की, की हुई सेवाओं की याद दिलाई । इसपर कान्होजी मेल करने को तैयार हो गया ।[3] बालाजी के कहने से शाहू ने 26 किले, जंगी बेड़े का अधिकार और सरखेल पद उसे दिया । कान्होंजी ने शाहू का स्वामित्व स्वीकार किया । इसके बाद वहिरोपन्त को छोड़ दिया गया और राजमानी के शेष किलें उसे वापस कर दिये गए ।[4] यह उपलब्धियाँ प्राप्त करके एक विजयी के रूप में बालाजी विश्वनाथ सतारा वापस आया । शाहू ने सम्मान पूर्वक उसका स्वागत किया और बहिरोपन्त की जगह उसे पेशवा नियुक्त किया । मराठा इतिहास की यह युगान्तरकारी घटना थी । इसके बाद उत्तरोत्तर पेशवा का महत्व बढ़ता ही गया । अब बालाजी का अगला महत्वपूर्ण कार्य था राज्य में कानून व्यवस्था की स्थापना करना ।[5] रानाराम के समय में औरंगजेब की सेनाओं के साथ बराबर मराठों का संघर्ष होता रहता था । तभी से सम्पूर्ण मराठा प्रदेश में अराजकता व्याप्त हो गई थी, यह स्थिति

1- राजवाड़े, खण्ड 2, पृ0 110.

2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 187.

3- डॉ0 माथुर लाल वर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 168.

4- डफ, हिस्ट्री आफ दि मराठा, भाग 1, पृ0 375.

5- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ दि मराठा, भाग 2, पृ0 81.

आगे भी चलती रही और मराठों की लूट-मार की आदत पड़ गई थी । इसपर नियंत्रण करना बाजाजी विश्वनाथ के लिए भारी समस्या थी । दक्षिण के मुगल सूबेदार निजाम-उल-मुल्क ने इस समस्या को और जटिल बना दिया था ।[1]

वास्तव में सन् 1707 ई0 में औरंगजेब के पुत्रों आजम और मुअज्जम के बीच तख्त के लिए लड़ाई शुरू हो गई थी । इसमें आजम हार गया और मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से बादशाह बना ।[2] आजम का सहयोगी जुल्फकार खाँ मुअज्जम से मिल गया । जुल्फकार खाँ के स्थान पर दाउद खाँ पन्नी के हाथ में दक्षिण के छः सूबों की व्यवस्था दी गई । बहादुर शाह की मृत्यु के बाद सैयद अब्दुल्ला और सैयद हुसेन नाम के दो भाइयों ने फर्रुखसीयर को गद्दी पर बैठाया ।[3] इस काम में चिनकुलिच खाँ ने बड़ी मदद की थी यही आगे चलकर निजामुल मुल्क नाम से प्रसिद्ध हुआ । उसकी मदद के लिए सैयद बन्धुओं ने उसे दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया और दाऊद खाँ पन्नी को गुजरात में भेज दिया ।[4] निजामुल मुल्क बड़ा धूर्त व्यक्ति था, उसने देखा कि मराठा राज्य में आपसी झगड़े चले हुए हैं, वहाँ के सरदारों को दगें फसाद और लूट-मार करने की आदत पड़ी हुई है और वे किसी का अधिकार नहीं मानते हैं ।[5] इस परिस्थिति से लाभ उठा कर निजामुल मुल्क ने अपनी सत्ता दृढ़ करने का प्रयत्न किया । ताराबाई के पतन के बाद निजाम ने चन्द्रसेन जाधव को भालकी के पास 25 लाख की जागीर देने का लालच दिखलाया और उसे अपने वश में कर लिया । इस प्रकार मराठों का एक बड़ा सरदार मुगलों का पक्षधर

1- राजवाड़े, भाग 2, पृ0 56.

2- पेशवा दफ्तर, पृ0 75.

3- किनकैड, ए हिस्ट्री आफ् दि मराठा पिपुल, पृ0 280.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 137.

5- तामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 242.

बन गया। रम्भाजी निम्बालकर नामक एक बड़े सरदार को भी उसने अपने वंश में करके पूना पर हमला कर दिया।[1] बालाजी विश्वनाथ और हैवतराव निम्बालकर की सेना को मुगलों ने पुरन्दर के पास हरा दिया और पूना प्रान्त पर अधिकार कर लिया। इसके बाद निजाम ने रम्भाजी को राव रम्भा की उपाधि देकर पूना की जागीर पर नियुक्त कर दिया।[2] हैवतराव निम्बालकर के मरने पर उसका पुत्र भी निजामुल मुल्क के साथ हो गया। बारसी के पास एक बड़ी जागीर लेकर उसने मुगल सेवा स्वीकार करली।[3] इस प्रकार भिन्न-भिन्न मराठा सरदारों को मिलाकर निजामुल मुल्क ने उन्हें मुगल मरसबदार बना लिया। इससे मराठा राज्य कुछ कमजोर दिखाई देने लगा। किन्तु संयोगवश निजामुल मुल्क को अप्रैल 1715 ई० में दक्षिण की सूबेदारी छोड़कर दरबार वापस जाना पड़ा। अतः मराठा राज्य निजामुल मुल्क के षड्यन्त्रों से बच गया।[4]

<u>बालाजी विश्वनाथ और मराठों का संगठन</u> -

नि:संदेह मराठा राज्य गंभीर समस्या में फंस गया था किन्तु बालाजी विश्वनाथ ने अपनी चतुराई और दृढ़ सूझ-बूझ से मराठा सरदारों को आपस में मिलाकर नवोदित मराठा राज्य को पतन से बचाया। इसके लिए उसने जागीरदारी प्रथा का भी सहारा लिया। यहाँ उल्लेखनीय है कि मराठा राज्य के संस्थापक शिवाजी जागीरदारी प्रथा के विरुद्ध थे। किन्तु बालाजी विश्वनाथ के सामने इसके अतिरिक्त राज्य को बचाने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। अतः मराठा राज्य में ऐक्य उत्पन्न करने के लिए बालाजी ने प्रत्येक

1- सर देसाई, मराठी रियासत, मध्य भाग, पृ० 194.

2- आर०बी० नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० 184.

3- आपटे, महाराष्ट्र इतिहास मंजरी, पृ० 103.

4- एस०आर० शर्मा, दि फाउण्डिंग आफ मराठा फ्रीडम, पृ० 143.

सरदार को जागीरें दे डाली ।[1] यह भी निश्चय हुआ कि सभी सरदार अपनी-अपनी जागीरों में जाकर कर की वसूली करेंगे तथा न्याय पूर्वक कार्य करते हुए शान्ति बनाए रखेंगे ।[2] किन्तु इन सरदारों को बाहरी राज्यों से शांति या युद्ध का अधिकार नहीं दिया गया था । यह अधिकार छत्रपति अथवा उसके प्रमुख प्रधानों को ही था । इन जागीरदारों के लिए आवश्यक था कि वसूल किया गया कर सीधे राज्य के खजाने में दिया जाएगा और जागीर के खातों की जाँच के लिए परीक्षक भी आते रहेंगे । मराठा सरदारों (जागीरदारों) ने इन शर्तों को सहर्ष मान लिया ।[3] अनेक सरदारों की जागीरें मुगल सल्तनत में मिली थीं इसलिए वहाँ उन्होंने अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न किया । सम्भवत: अगले चालीस वर्षों में मराठों का राज्य इसी कारण से बहुत जोरों से बढ़ा ।[4] मराठे सरदारों में ऐक्य रखने के लिये बालाजी विश्वनाथ ने एक और उद्यम भी किया कि महाराष्ट्र में मुख्य सत्ता के हद के भीतर प्रत्येक सरदार को वेतन या इनाम दिया गया । इस वतन की वे छत्रपति के अधीन रहते हुए बड़े अभिमान से रक्षा करते थे ।[5]

बालाजी विश्वनाथ द्वारा मुख्य-मुख्य सरदारों को जो जागीरें दी गईं उनमें कान्होजी आंग्रे को बालाजी ने अपने साथ मिला लिया था । खण्डेराव दाभणे को खानदेश की जागीर देकर यह आश्वासन दिया गया कि यदि तुम गुजरात जीत लोगे तो वहाँ की जागीर तुम्हें दे दी जायेगी । उत्साह वर्धन के लिए उसे सेनापति का पद भी दिया गया । परसोजी भोंसले को

1- मथुरा लाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 105.

2- वी0डी0 सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 84.

3- डा0 गोपीचन्द, राजस्थान का इतिहास, पृ0 153.

4- एस0आर0 शर्मा, द मेकिंग आफ माडर्न इण्डिया, पृ0 288.

5- डफ ग्राण्ड, हिस्ट्री आफ दि मराठा, पृ0 226.

बरार की जागीर तथा सेना साहेब को सूबा का पद मिला ।[1] उदाजी पवार को मालवा में जागीर प्राप्त करने का प्रोत्साहन दिया गया । फतेहसिंह भोंसले को कर्नाटक में जागीर मिली । परशुराम पन्त प्रतिनिधि को नीरा और वारणा के बीच का प्रदेश मिला । स्वयं बालाजी ने पूना के पास के सोरह महाल और पुरन्दर तथा लोहगढ़ नाम के किले अपने पास रखे । वह राजा का मुख्य सलाहकार हुआ और खान देश में राज्य के कर वसूली का काम उसने अपने हाथ में लिया ।[2] यद्यपि आगे चलकर इस जागीरदारी प्रथा का परिणाम अच्छा नहीं हुआ किन्तु बालाजी विश्वनाथ ने मराठा सरदारों को जागीर देकर तत्कालिक एकता एवं शान्ति स्थापित की ।[3]

बालाजी विश्वनाथ ने इसके साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए । थोरात ने नारो शंकर सचिव को कैद कर लिया था । बालाजी विश्वनाथ ने चतुराई से उसे बन्धन मुक्त करवा कर थोरात को कैद किया और उसकी गढ़ी गिरवा दी ।[4] इस कार्य के बदले बालाजी ने पुरन्दर के सिवा सासवड़ नाम का स्थान भी अपने कब्जे में कर लिया । ये स्थान मराठा राज्य के अन्त तक पेशवाओं के हाथ में बने रहे ।[5] पूना प्रान्त में मुगलों के सरदार रम्भाजी निम्बालकर की जागीर की व्यवस्था बाजी कदम्ब के हाथ में थी । बालाजी ने निम्बालकर की जागीर कायम रखने का आश्वासन देकर बाजी कदम्ब को अपनी ओर मिला लिया और पूना प्रान्त में अपनी हुकूमत शुरू की । लोगों को भिन्न-भिन्न रियायतें देकर उन्हें खेती करने का प्रोत्साहन दिया । परिणाम

1- लेनपुल, मिडिवल इण्डिया अण्डर मराठा रूल, पृ0 130.

2- मजूमदार, हिस्ट्री इन कल्चर आफ दि इण्डियन पिपुल, भाग 3, पृ0 133.

3- गोविन्द रानाडे, राइज आफ दि मराठा पावर, पृ0 232.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 124.

5- राविल्सन, शिवाजी दि मराठा, पृ0 138.

स्वरूप अल्प काल में ही राज्य में समृद्धि दिखाई देने लगी ।[1]

बालाजी विश्वनाथ ने अबतक जो काम किये उतने ही महत्व का एक बड़ा कार्य उसने अपने जीवन के अन्तिम काल में किया । इस कार्य का सम्बन्ध दिल्ली की राजनीति से है । बालाजी विश्वनाथ के पेशवा होने के एक ही साल बाद सैयद अब्दुल और सैयद हुसेन नाम के दो भाइयों ने फर्रूखसियर को दिल्ली का बादशाह बनाया था । इसलिए मुगल राज्य में इन भाइयों की तूती बोलती थी ।[2] फर्रूखसियर नाम मात्र का बादशाह था । अपनी इस स्थिति से ऊबकर बादशाह सैयद भाइयों की सत्ता कम करना चाहता था । उसने दोनों भाइयों को अलग करने का विचार किया । इसके लिए उसने बड़े भाई अब्दुल्ला को अपना वजीर बनाया और उसके छोटे भाई हुसेनअली को दक्षिण की सूबेदारी दी तथा दक्षिण के सूबेदार निजामुल मुल्क को मुरादाबाद के सूबे में भेज दिया ।[3] हुसेनअली के दक्षिण में पहुँचने के पहले ही बादशाह ने गुजरात के सूबेदार दाऊद खाँ पन्नी को लिखा कि हुसेनअली पर हमला कर उसे मार डालो । बुरहानपुर के पास दोनों का युद्ध हुआ और उसमें दाऊद खाँ मारा गया । हुसेन अली बिना किसी रोक-टोक के दक्षिण पहुँच गया । उसने सूरत से बुरहानपुर तक मुगल प्रदेश का बन्दोवस्त करना चाहा, किन्तु गुजरात में खण्डेराव दाभाडे कर वसूल करता था । इसलिये उसने जुल्फकार बेग नामक सरदार को सेना देकर दाभाड़े पर हमला करने को भेजा ।[4] इस युद्ध में जुल्फकार बेग मारा गया और मुगलों की हार हुई । इसके बाद हुसेन अली ने चन्द्रसेन जाधव और मोकूब सिंह को दाभाड़े से लड़ने के लिए भेजा, दोनों

1- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, पृ0 60.

2- किनकेड, विद्रोही महावीर, पृ0 135.

3- राजेन्द्र सिंह गौड़, दक्षिण के देशरत्न, पृ0 211.

4- तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री, राजवाड़ी लेख संग्रह, भाग 2, पृ0 211.

पक्षों की मुठभेड़ अहमद नगर के पास हुई, इसमें भी दाभाड़े की विजय हुई। मुगलों को पराजय का मुँह देखना पड़ा।[1] इस युद्ध के बाद मराठों ने अब दक्षिण के छः सूबों में चौथ और सरदेश मुखी वसूल करना आरम्भ कर दिया।[2]

मुगल बादशाह फर्रुख शियर को जब पराजय का समाचार मिला तो उसने मराठों से सन्धि कर लेना लाभ दायक समझा।[3] सन्धि की शर्तों के अनुसार बरार, खानदेश, औरंगाबाद, बेदर, बीजापुर और हैदराबाद नाम के छः सूबों में तथा त्रिचनापल्ली तंजौर और मैसूर के मांडलिक राज्यों में चौथ और सरदेश मुखी वसूल करने का अधिकार मराठों को मिला। खानदेश के अतिरिक्त शिवाजी का जीता हुआ सम्पूर्ण मुल्क मराठों को वापस दिया जाय। शिवनेरी और त्रिम्बक के किले भी मराठों को दिये जायें।[4] परसोजी के पुत्र कान्होजी भोंसले ने बरार और गोडवन में जो क्षेत्र जीता था वह मराठों के कब्जे में रहे और शाहू के रिश्तेदार दिल्ली से मुक्त कर दिये जाय। शाहू ने अपनी ओर से यह स्वीकार किया कि चौथ के बदले हम 15 हजार फौज दक्षिण के सूबेदार की मदद में रखेगा और सरदेश मुखी के अधिकार के बदले में मुगल प्रदेश में शान्ति स्थापित करेगा। बादशाह को 10 लाख रुपये वार्षिक कर देना भी उसने स्वीकार किया।[5] कोल्हापुर के शम्भाजी को कष्ट न पहुँचाने का भी उसने वचन दिया। यह सन्धि 1718 ई0 में हुई।[6] इसके अनुसार शाहू ने हुसेन अली के पास सन्ताजी और राणोजी भोंसले, ऊदोजी पवार

1- वी0एम0 दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ0 137.
2- आर0बी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 168.
3- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 294.
4- एस0आर0 शर्मा, मेकिंग आफ दि माडर्न इण्डिया, पृ0 248.
5- ग्रेण्ड डफ, हिस्ट्री आफ दि मराठाज, पृ0 149.
6- एलिफिस्टन, हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ0 417.

आदि सरदारों के नेतृत्व में 10 हजार फौज रवाना कर दी ।[1]

फारूख सियर को यह सन्धि मान्य नहीं हुई । उसके मन में सैयद बन्धुओं के लिए जो रोष था वह बढ़ता ही जा रहा था । यह देख हुसैन अली ने दिल्ली पर चढ़ाई करने का विचार किया और शाहू से मदद मांगी । शाहू ने बालाजी विश्वनाथ पेशवा और खण्डेराव दाभाड़े को उसकी मदद के लिए जाने की आज्ञा दी । बालाजी और दाभाड़े दस-बारह हजार मराठा की फौज लेकर हुसेन अली की मदद के लिए 1718 ई0 के वर्षाकाल के बाद सतारा से चले ।[2] बालाजी के साथ उसका बड़ा पुत्र बाजीराव और बालाजी महादेव भानू भी थे । सेना साहब सूबा कान्हों जी भोंसले के दो भाई सन्ताजी और राणोजी भी मराठा फौज में आ-मिले । दिल्ली पहुँच कर सैयदों ने फारूख सियर को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हुए ।[3] अन्त में खीज कर सैयद बन्धुओं ने बादशाह की हत्या करवा दी[4]। इसके बाद उन्होंने दो बादशाह गद्दी पर बैठाये । पर वे शीघ्र ही मर गये । तब उन्होंने रोशन अख्त्यार को मुहम्मदशाह नाम देकर 1719 ई0 में गद्दी पर बैठाया । इन राज क्रान्तियों के समय मराठा सेना नहीं थी ।[5] फारूख सियर को कैद करने के पहले सैयद-पक्ष और बादशाह पक्ष के बीच दिल्ली में लड़ाई हुई । उसमें मराठों के 1500 सैनिक, सन्ताजी भोंसले तथा बालाजी महादेव भानू मारे गये । आगे शान्ति स्थापित होने पर सन्धि के अनुसार सैयदों ने फौज का खर्च तथा सनदें बालाजी के सुपुर्द की ।[6]

बालाजी के तीन सनदें प्राप्त हुई थीं, एक दक्षिण के छ: सूबों की

1- किनकेड, ए हिस्ट्री आफ् दि मराठा पिपुल, भाग 3, पृ0 27.

2- मजूमदार, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ् दि इण्डियन पिपुल, भाग 2, पृ082.

3- रानाडे, राइज् आफ दि माराठा पावर, पृ0 148.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 112.

5- सर देसाई, द मेन करेण्ट आफ् मराठा हिस्ट्री, पृ0 70.

6- जे0एन0 सरकार, औरंगजेब, भाग 2, पृ0 180.

चौथ वसूली की थी, दूसरी इन छ: सूबों की सरदेशमुखी की थी और तीसरा स्वराज्य की थी । इस प्रकार से सूबाई तथा केंद्र में रहे हुए अन्य लोगों के साथ लेकर सन् 1719 ई0 के वर्षाकाल के आरम्भ में बालाजी सतारा को पहुँचा ।[1] इसके बाद बालाजी ने लगान वसूली के प्रबन्ध का पुनर्रीक्षण किया और उसके नियम निश्चित कर दिये[2]। इसके अनुसार - (1) सरदेशमुखी की आमदनी राजा का वतन कहलायेगी । इसपर गद्दी के मालिक के अतिरिक्त और किसी का हक नहीं होगा । (2) शेष आय स्वराज्य कहलाएगी, इसमें से (क) 25 सैकड़ा राजा की होगी, इसे राजवावती कहेंगें, (ख) शेष 75 सैकड़ा मोकासा कहलावेगी, इसमें से सहोत्रा यानी स्वराज्य का छ: सैकड़ा पंत-सचिव का होगा । (ग) शेष 69 ऐन मोकासा कहलावेगी, इसमें से नाड़गौड़ा (यानी स्वराज्य के उत्पन्न में से तीन सैकड़ा) राजा इच्छानुसार चाहे जिसको दे सकेगा और (घ) शेष 66 सैकड़ा में से सरदारों को जागीरें दी जावेगी । (3) राजवावती वसूल करने का काम पेशवा प्रतिनिधि और सचिव को करना होगा । सहोत्रा स्वयं सचिव वसूल करेगा । परन्तु दूर-दूर के गांवों में इस वसूली के लिए राजा अपने कर्मचारी भेजेगा । नाड़गौड़ा जिसे मिलेगा वही उसे वसूल करेगा ।[3] इसी प्रकार जागीर-दार अपना हक वसूल करेगा । सरदार लोगों को एक दूसरे के प्रदेशों में, उस,उस प्रदेश के आमदनी की विभाग में, अथवा वहाँ के गांवों की आमदनी में, कुछ हक रहेंगे ।[4]

बालाजी ने यह जो पेचीदा व्यवस्था की, उसका उद्देश्य यह था कि सरदार लोग किसी प्रकार की गड़बड़ न मचावें और अपनी-अपनी आमदनी बढ़ावे । इसमें उसे सफलता भी मिली, इसके शीघ्र ही बाद 2 अप्रैल 1720 को सासबड़ में

1- एस0आर0 शर्मा, दि फाउण्डिंग आफ़ मराठा फ्रीडम, पृ0 229.

2- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 218.

3- दामोदर तामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 227.

4- सर देसाई, मराठी रियासत, मध्य भाग, पृ0 318.

उसकी मृत्यु हो गई । छत्रपति के पद पर शाहू को प्रतिष्ठित करने वाला और इस पद की गरिमा को पुनर्स्थापित करने वाला बालाजी नि:संदेह भोंसल कुल का सर्वाधिक निष्ठावान सेवक था । उसकाल में जो कुछ उचित हो सकता था वह सब उसने किया ।[1] उसने सरदारों को एक दूसरे से तथा राजा से बाँधा और देश में शान्ति स्थापित की । देश की आमदनी में भाग देकर उसे बढ़ाने के लिए सरदारों को प्रेरणा दी । तीसरा उसने मराठा राज्य की सीमा बढ़ाने की योजना तैयार कर दी । उसी के समय में पहले पहल मराठों की दृष्टि उत्तर की ओर गई ।[2] इतना भारी काम बालाजी विश्वनाथ ने किया तथापि यह मानना होगा कि उसमें से बहुत सा तात्कालिक स्वरूप का था, इस करण इस व्यवस्था से आगे अनेक समस्याएँ भी पैदा हुई जिनसे मराठा राज्य का स्वरूप ही बदल गया ।

इस प्रकार मराठा सरदार के पुर्नगठन में बालाजी विश्वनाथ ने जो चातुर्यपूर्ण कार्य किया वह अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ ।[3] शाहू की मुक्ति तथा पेशवा के पद पर बालाती विश्वनाथ की नियुक्ति के बीच में जो छ: वर्ष व्यतीत हुए थे उनमें मराठों के राजा के रूप में शाहू की स्थिति मजबूत हो गई थी ।[4] घरेलू घटनाओं की अपेक्षा 17 फरवरी 1712 ई0 को बहादुर शाह के मृत्यु के पश्चात् दिल्ली दरबार में हुए अनेक तीव्र और क्षणिक परिवर्तनों से मराठा राजनीति को विशेष बल प्राप्त हुआ था । नीति के सुखद उत्कर्ष और सौभाग्य ने बालाजी के चातुर्य पूर्ण शासन द्वारा शाहू की प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ा दिया था ।[5] इसके पहले यह शासन शक्ति के आधार पर केवल एक

1- किनकेड और पारसनीस, हिस्ट्री आफ् दि मराठा, भाग 3, पृ0 240.

2- राजवाड़े, ऐतिहासिक प्रस्तावना, पृ0 137.

3- बालाजी हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 106.

4- सर देसाई मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, पृ0 44.

5- डॉ0 यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 142.

अस्थाई कार्य था, किन्तु विभक्त निष्ठाओं का इस समय अन्त हो गया और मराठा शासन कार्यों को वैधानिक रूप प्राप्त होने लगा । अब मराठा सरदार दूर-दूर तक उत्तर भारत में आक्रमण करने लगे तथा उनका वर्चस्व प्राय: सारे भारत में फैल गया था ।[1] बालाजी विश्वनाथ के बाद उनके पुत्र बाजीराव के समय में मराठा राज्य न केवल संगठित हुआ अपितु यह दक्षिण भारत का एक प्रबल शक्ति सम्पन्न राज्य बन गया ।[2]

मुगल दरबार की आन्तरिक स्थिति -

सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य की सीमाएँ अपने अन्तिम हद तक पहुँच गई थीं । भारत में इतिहास के आरंभ से लेकर ब्रिटिश राज्य की स्थापना होने तक ऐसे विशाल साम्राज्य की स्थापना कभी नहीं हुई थी । गजनी से लेकर चटगाँव तक और कश्मीर से लेकर कर्नाटक तक सारा भारत औरंगजेब के अधीन रहा ।[3] उसका यह साम्राज्य सम्राट् अशोक, समुद्रगुप्त या हर्ष के साम्राज्य से कहीं अधिक विशाल तथा परिपूर्ण था । लेकिन यही विस्तृत साम्राज्य मुगल वंश के पतन का कारण भी बन गया ।[4]

औरंगजेब भोग-विलास से निर्लिप्त रह कर अपने प्रत्येक क्षण का उपयोग राज्य संचालन में करता था । वह न मदिरा पान करता था न नृत्य-संगीत की महफिलों में शरीक होता था ।[5] उसे सुन्दर स्त्रियों से भी कोई लगाव नहीं था । उसने शरियत का कठोरता से पालन[6] करते हुए केवल चार विवाह

1- डा० सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, पृ० 139·
2- भीमसेन, बीर मराठे, पृ० 88·
3- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ० 2-3·
4- अयोध्या प्रसाद गोयलीय, मुगल बादशाहों की कहानी उनकी जुबानी, पृ०278·
5- "औरंगजेबनामा", पृ० 222·
6- श्रीकृष्ण ओझा एवं प्रतापसिंह, मुगलकालीन भारत (भाग 2), रिसर्च - दिल्ली (1656-1761), पृ० 338, 353·

ही किए थे। यहाँ तक कि शायरी और चित्रकारी को भी शासन के लिए अनुपयोगी समझता था।[1] वह अपने को सच्चा मुसलमान समझते हुए कुरान के आदर्शों का मन, वचन और कार्य से पालन करता था। पाँचों वक्त नमाज़ पढ़ता था, और रमजान के पूरे महिने भर रोजे रखता था। वह इतना बड़ा सम्राट होते हुए भी फ़कीरों जैसी सादगीपूर्ण जिन्दगी व्यतीत करता था। राज्यकोष को वह प्रजा की सम्पत्ति समझता था। उसने एक भी पैसा निजी व्यय के लिए नहीं लेता था। वह शाही बावर्चीखाने का खाना न खाकर अपनी मेहनत मजदूरी से कमाएँ हुए पैसे से गुजर-बसर करता था।[2] यहाँ तक कि अपने कफ़न के लिए भी राज्यकोष का एक पैसा भी खर्च करवाना उसने गुनाह समझा।[3] वह सफल विजेता, कुशल शासक, चतुर राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी होते हुए भी जीवन भर लड़ाइयों में ही जूझता रहा। अन्त में 1707 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।[4]

औरंगजेब के अन्तिम दिनों की स्थिति का विवेचन करते हुए आखों देखने वाला इतिहासकार भीमसेन लिखता है कि लगभग 20 वर्ष तक चलने वाले मुगल-मराठों के युद्ध में प्रति वर्ष मुगलों के पक्ष के एक लाख सैनिक और अन्य अनुयायी तथा उससे तीनगुने हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल आदि व्यर्थ ही मर-मिटते थे।[5] शाही पड़ाव में महामारी सदैव बनी रहती थी, जिससे प्रतिदिन मरने-वालों की संख्या बहुत अधिक होती थी। दक्षिण का आर्थिक शोषण अपनी चरम सीमा को पहुँच चुका था। खेतों में न तो वृक्ष थे और न किसी प्रकार

1- वही, पृ0 235.

2- औरंगजेबनामा, पृ0 222-23.

3- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ0 191-92, 'वशीयतनामा'।

4- अली एम0 अतहर, दी मुगल नोबिलीटी अण्डर औरंगजेब, पृ0 370.

5- भीमसेन, औरंगजेब, पृ0 413.

की फसलें ही । उनके स्थान पर वहाँ पशुओं और मनुष्यों की हड्डियाँ ही सर्वत्र बिखरी पड़ी रहती थी । सारा प्रदेश इतना अधिक बरबाद व वीरान हो चुका था कि तीन-चार दिनों तक निरन्तर यात्रा करने पर भी वहाँ आग या दीपक देखने को नहीं मिलता था ।[1]

भीमसेन आगे लिखता है कि 'जब कभी मराठे किसी स्थान पर आक्रमण करते हैं तब वहाँ के प्रत्येक परगने से जितना भी चाहते हैं रूपया ले लेते हैं और वे अपने घोड़े को खड़ी फसलें खिलाते हैं या उनसे फसलों को रौंदवा देते हैं । उनका पीछा करते हुए जो भी शाही सेना आती है, उन खेतों की पुन: आबाद किए जाने पर उसका वहाँ कुछ भी गुजारा हो सकता है । सारी शासन व्यवस्था विलीन हो गई है । साम्राज्य वीरान हो गया है । रैयत ने खेती करना छोड़ दिया है, जागीरदारों को अपनी जागीरों से एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती है' ।[2] भीमसेन के इस निर्देश से यह ज्ञात होता है कि औरंगजेब के अन्तिम समय में ही मुगल साम्राज्य, विशेषकर दक्षिण में छिन्न-भिन्न हो गया था ।[3] इन्हीं परिस्थितियों में औरंगजेब ने दक्षिण और इस दुनियाँ से विदा ली ।

औरंगजेब के बाद जो भी मुगल बादशाह हुए वे सभी अकर्मण्य तथा विलासी थे ।[4] वे नाम मात्र के शासक थे, उनके काल में वास्तविक शासन वज़ीरों जागीरदारों या मनसबदारों ने चलाया ।

बहादुरशाह -

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुअज्जम (शाहआलम) बहादुर

1- भीमसेन, औरंगजेब, पृ0 415-16.

2- वही, पृ0 478-79.

3- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 218.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 66.

शाह के नाम से 66 वर्ष की अवस्था में मार्च 1707 ई० को आगरा के राज्य सिंहासन पर बैठा।[1] राज्य प्राप्ति के उपलक्ष में उसने अपने पुत्रों, मंत्रियों, सेनायकों को उपाधियाँ देकर सम्मानित किया। अमीरों, सरदारों, अधिकारियों, राज्य-कर्मचारियों और सैनिकों को चार करोड़ रुपये बाँटकर प्रसन्न किया।[2] विपक्षियों को भी क्षमा प्रदान करके यथा योग्य अधिकार तथा पद देकर और अपनी उदार-नीति, सहिष्णुता और सद्व्यवहार से मुगल राज्य के प्रबल शत्रु राजपूतों और मराठों को भी अपना शुभचिन्तक एवं सहयोगी बना लिया।[3]

बहादुर शाह अपने सब भाइयों से अधिक वलिष्ट, उदार, सहिष्णु, विवेकी, दयावान, सहनशील और योग्य था। वह चाहता था कि उसके भाई, पिता की वसीयत के अनुसार अपने-अपने प्रदेशों में शान्ति पूर्वक शासन करें।[4] किन्तु अपने ही घरवालों का रक्त बहाकर गद्दी पर बैठने की जो परंपरा जहाँगीर ने शुरू की थी वह शाहजहाँ और औरंगजेब के द्वारा इतनी दृढ़ता से स्थापित कर दी गई थी कि बहादुर शाह उसे चाहता तो भी समाप्त नहीं कर सकता था। निःसंदेह परम्परा ने मुगल वंश की जड़े ही खोद डाली। अपने वसीयतनामें में औरंगजेब ने पुत्रों के बीच साम्राज्य के विभाजन का उल्लेख किया था[5], किन्तु शाहजादों ने उस वसीयतनाँमे का सम्मान नहीं किया। सर यदुनाथ सरकार के अनुसार 'वे आपस में पारस्परिक विद्रोह करते हुए एक दूसरे पर टूट पड़े। दिन-रात के सैनिक अभियानों के कारण हरी-भरी खेतियाँ उजड़ गईं। किसानों ने इन बरबादियों से तंग आकर कृषि कार्य छोड़ दिया।

1- भाटिया एवं शर्मा, भारतवर्ष का इतिहास, पृ० 162.

2- डफ ग्राण्ड, हिस्ट्री आफ दि मराठा, पृ० 230.

3- बहादुरशाहनामा, पृ० 254-55.

4- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, पृ० 117.

5- विलियम इर्विन, लैटर मुगल्स, पृ० 367.

जिससे देश में भयंकर भूखमरी तथा अकाल पड़ गया' ।[1] राज्याधिकारियों के भोग-विलास, लूट-खसोट से देश दरिद्र होता गया । युद्धों में मृतक असंख्य मानव शरीरों की दुर्गन्ध से महामारी फैल गई फिर भी वे एक दूसरे के प्रति घात लगाये बैठे थे ।[2] औरंगजेब की मृत्यु के समय कामबख्श दक्षिण एवं हैदराबाद का सूबेदार था, किन्तु औरंगजेब के निकट उस समय उसका दूसरा पुत्र आज़म था । आज़म ने शीघ्रता से दरबार में आकर अपने को बादशाह घोषित किया तथा अपने नाम के सिक्के ढलवाए ।[3] तत्पश्चात् वह आगरा की ओर बढ़ा । इस समय तक शाहआलम भी आगरा पहुँच चुका था ।[4] जून 1707 ई0 के युद्ध में आजम अपने दो पुत्रों के साथ मारा गया ।[5] इसके बाद बहादुरशाह की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई । उसकी इच्छा थी कि दक्षिण प्रान्त का शासक कामबख्श बना रहे और व्यर्थ का रक्तपात न हो, किन्तु कामबख्श ने अपने को बादशाह घोषित करके अपने नाम के सिक्के ढलवाये और मनमाने अत्याचार करने लगा ।[6] बहादुरशाह को बाध्य होकर दक्षिण के लिए अभियान करना पड़ा । उसने कामबख्श को भी पिता की वसीयत पर अमल करने के लिए आग्रह किया, किन्तु वह नहीं माना । फलस्वरूप दोनों के बीच युद्ध हुआ । इस युद्ध में कामबख्श जख्मी होकर बाद में मृत्यु को प्राप्त हुआ ।[7]

यद्यपि बहादुरशाह दक्षिण पहुँच गया था तथापि पूना के आस-पास अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के शाहू के प्रयत्न जारी थे । चाकन का मुगल

1- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 1, पृ0 238.
2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज़्, भाग 2, पृ0 103.
3- श्रीकृष्ण ओझा एवं प्रताप सिंह, पूर्व उल्लिखित भाग 11, पृ0 365.
4- वही, पृ0 364.
5- वही, पृ0 369.
6- ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0407.
7- हिस्ट्री आफ् गुजरात (बम्बे गजेटियर), भाग 1, पृ0 296.

अधिकारी लोदी खाँ मालगुजारी वसूल करने वाले मराठा अधिकारियों को परेशान किया करता था । शाहू ने उसके विरूद्ध गदाधर प्रहलाद को भेजा, पुरन्दर के निकट 16 मई 1709 ई० को एक संघर्ष हुआ । इसमें लोदी खाँ मार डाला गया तथा उसका सहायक जुन्नार का मुगल अधिकारी करीम वेग पकड़ लिया गया ।[1] इसपर शीघ्र ही जुन्नार से लेकर सतारा तक के भाग पर शाहू की सत्ता स्थापित हो गई । लोगों की दृष्टि में भी उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी ।[2]

जिस समय बहादुरशाह कामवख्श को दबाने के लिए आगे बढ़ा उस समय शाहू ने कामवख्श के विरूद्ध बहादुरशाह की सहायता की थी । इससे वह शाहू से बहुत प्रसन्न था । इस अवसर का उपयोग कर शाहू ने उससे प्रार्थना की कि वह दक्षिण से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के उसके अधिकार को मान्यता प्राप्त करने का आदेश करें ।[3] कृतज्ञ बादशाह उसकी प्रार्थना स्वीकार करने ही जा रहा था कि उसके पास ताराबाई का वकील आ पहुँचा और उसने बादशाह से प्रार्थना की कि वह ताराबाई के पुत्र शिवाजी द्वितीय को मराठों का राजा स्वीकार करें ।[4] बहादुरशाह के एक सलाहकार जुल्फकार खाँ ने शाहू के अधिकार का समर्थन किया, पर वजीर मुनइम खाँ ने शिवाजी के पक्ष का समर्थन किया । अपने दो प्रमुख सलाहकारों के इस मतभेद के कारण बादशाह कोई निर्णय न कर सका । दोनों पक्षों के मराठा वकीलों से कहा गया कि शाहू और ताराबाई युद्ध क्षेत्र में अपने अधिकारों का निर्णय करें, जो विजयी होगा उसके नाम से सनदें दी जायेगी ।[5] बहादुरशाह के इस रूख के परिणाम

1- मराठी रियासत {मध्य भाग}, भाग 1, पृ0 26.

2- डॉ0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0278.

3- इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ0 109.

4- रानाडे, राइज आफ दी मराठा पावर, पृ0 217.

5- मराठी रियासत {मध्य विभाग}, भाग 1, पृ0 26.

स्वरूप महाराष्ट्र में गृह-कलह ने उग्र रूप धारण कर लिया था, किन्तु शाहू ने पेशवा बालाजी विश्वनाथ के सहयोग से शीघ्र ही इन कठिनाइयों को दूर कर दिया।

जब मराठा सरदारों ने देखा कि देश में व्याप्त अशान्ति को रोकने की शक्ति राज्य में नहीं रह गई है तो वे नि:शंक होकर केन्द्रीय सत्ता की चिन्ता चिन्ता किए बिना अपने स्वार्थ साधन में लग गये ।[1] दो वर्ष के संघर्ष के परिणाम स्वरूप शाहू की वास्तविक सत्ता सतारा के आसपास के क्षेत्रों में स्थापित हो गई थी । अन्य भागों पर या तो ताराबाई का अधिकार था अथवा स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करने वाले मराठे सरदारों का ।[2] इसी प्रकार राजवाड़े के लेख से ज्ञात होता है कि दामाजी थोरट सुपापर शाह जी निम्बालकर, फलटनपर, उदाजी चह्वाण सिरज पर खेम सामन्त दक्षिण कोंकण पर तथा कान्हो जी आंग्रे उत्तर कोंकण पर अधिकार जमाए हुए थे । कृष्णा नदी के उत्तर का भाग कृष्णराव खटावकर के नियन्त्रण में था । यह मुगलों की अधीनता में काम कर रहा था ।[3] इस प्रकार इस समय अनेक मराठे सरदार दक्षिण के अनेक भागों पर कब्जा जमाये बैठे थे ।

इसमें संदेह नहीं कि औरंगजेब के मरने के बाद दक्षिण के तत्कालिक सूबेदार आलम ने दक्षिण के छ: सूबों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मराठों को दिया था पर जब ताराबाई ने इस अधिकार का अपने पुत्र के लिए दावा किया तो मुगल बादशाह ने इसके लिए अपनी स्वीकृति देना स्थगित कर दिया था ।[4] अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद शाहू ने मराठा सरदारों को आज्ञा दी कि वे मुगल सूबों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करना आरम्भ करे ।[5] इस

1- राजवाड़े, मराठ्यांचा इतिहासांची साधने, भाग 2, पृ0 7.
2- सर देसाई, ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, भाग 2, पृ0 343.
3- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 216.
4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ दि मराठा, भाग 2, पृ0 32-33.
5- राजवाड़े, वही, भाग 4, पृ0 38.

समय दक्षिण का मुगल अधिकारी दाऊद खाँ पन्नी था। वह मराठों के आक्रमणों से परेशान हो गया था। उनके आक्रमणों का प्रतिकार करना वह अपने शक्ति से बाहर समझता था। मुगल दरबार से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करने की कोई आशा नहीं थी।[1] अत: उसने शाहू को चौथ और सरदेशमुखी देने का वचन देकर किसी प्रकार अपने प्राण बचाए। पर उसने इनकी वसूली करने की आज्ञा मराठा अधिकारियों को नहीं दी। उसके कर्मचारी स्व: चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर मराठों को देते थे।[2]

17 फरवरी सन् 1712 ई0 को बहादुरशाह की मृत्यु हो गई। उसने 66 वर्ष की अवस्था में राज्य की बागडोर सम्भाली थी, अत: पाँच वर्ष राज्य करने के बाद 71 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु शैया पर पड़े बहादुर शाह ने अपने पुत्रों के बीच मुगल साम्राज्य के बँटवारे का प्रस्ताव रखा था।[3] किन्तु उसके पुत्रों ने पिता की इच्छा की अवहेलना करके परम्परागत भ्रातृ-द्रोह की नीति पर कायम रहने का ही निश्चय किया और परस्पर युद्ध की तैयारियों में जुट गए।

जहाँदारशाह (1712-1713 ई0) - बहादुरशाह के मरते ही उसके पुत्रों जहादारशाह, अजीमुश्शान, रफीउश्शान और जहाँशाह के बीच उत्तराधिकार का युद्ध हुआ।[4] दरबारी गुटबन्दी बढ़ने लगी थी। जुल्फिकार खाँ ने अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूरी करने के लिए अयोग्य शाहजादे जहाँदारशाह का पक्ष लिया।[5] जहाँदारशाह युद्ध जीता तथा मुगल सम्राट बना। उत्तराधिकार के प्रश्न को

1- ए0एल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 378.

2- विलियम इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 96.

3- बहादुरशाहनामा, पृ0 513.

4- प्रताप सिंह एवं श्रीकृष्ण ओझा, मुगलकालीन भारत (भाग 2), रिसर्च दिल्ली, पृ0 392.

5- सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास (1707-40), पृ0 72-73.

हल करने में चारो भाइयों ने इतनी निर्लज्ज शिघ्रता की कि बहादुरशाह का शव एक माह तक दफन भी नहीं किया जा सका । "जहाँदारशाह तैमूर, बाबर और अकबर के वंश का निकृष्ट प्रतिनिधि था । वह क्रूर कायर, अस्थिर चित्त एवं दुश्चरित्र था । और लालकुंवर एवं नर्तकी के जाल में फंसा था । इसी नर्तकी के रिस्तेदार साम्राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किये गये! जिससे पुराने व योग्य अमीरों में भयंकर असंतोष था ।[2] लोग सम्राट से और उससे घृणा करने लगे । इसीलिए ग्यारह माह के अन्दर ही जहाँदारशाह को अजीमुश्शान के पुत्र फर्रूखसीयर ने सैयद बन्धुओं की सहायता से 11 फरवरी, 1713 ई0 को गलाघोंट कर मरवा डाला ।[3] उसी के साथ उसके वजीर जुल्फिकार खाँ का भी पतन हो गया ।[4]

<u>फर्रूखसीयर (1713-1719 ई0)</u> - राज्यारोहण के समय फर्रूखसीयर 30 वर्ष का सुन्दर किन्तु निर्बल, बिचार हीन और साहसहीन युवक था ।[5] एक निर्बल व्यक्ति की तरह वह अपने नवीन सलाहकारों से जल्दी प्रभावित हो जाता था, किसी कार्य को वह दृढ़ता पूर्वक संकल्पशक्ति के साथ पूरा नहीं कर पाता था। अपितु हताश होकर अपने किये कराये पर पानी फेर देता था । स्वयं उसका सम्राटों जैसा दबंग व्यक्तित्व नहीं था और अपने योग्य सलाहकारों पर वह विश्वास भी नहीं करता था, किन्तु अपने मन्त्रियों की छिछली आशंकाओं से प्रेरित होकर उनकी स्वार्थसिद्धि के षड्यन्त्रों में वह साझीदार अवश्य हो जाया करता था । जीवन भर वह सैयद बन्धुओं से छुटकारा पाने[6] और उन्हें पद से

1- ओवन, द फाल आफ मुगल इम्पायर, पृ0 133.

2- सतीशचन्द्र, पू.उ. पृ0 75.

3- विलियम इर्विन, लेटर मुगल्स, (खण्ड 2, कलकत्ता -1922), पृ0 230-36.

4- प्रताप सिंह, पू.उ., पृ0 405-6.

5- वही, पृ0 407.

6- खाफी खाँ, मुन्तखब उल लुबाब, भाग 2, पृ0 730.

हटाने में संलग्न रहा । वह उनसे छुटकारा तो नहीं पा सका पर अपने प्राण अवश्य गंवा बैठा ।

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् फैली अराजकता से लाभ उठाकर सिक्खों ने बन्दाबहादुर के नेतृत्व में अपनी शक्ति को पुन: दृढ़ कर लिया । 1714 ई0 में अब्दुल समद को सिक्खों के दमन का आदेश देकर लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया गया ।[1] सिक्खों में फूट पड़ गई थी, कुछ सिक्ख बन्दा के धार्मिक विचार से सहमत नहीं थे अत: उसका उन्होंने साथ छोड़ दिया । बन्दा कमजोर पड़ गया और स्थान-स्थान पर छिपकर प्राण बचाकर घूमता रहा । अन्त में 1715 में उसने आत्मसमर्पण कर दिया । उसे 740 अनुयायियों के साथ बन्दी बना लिया गया । दिल्ली लाकर 1716 में बड़ी घोर यातनाएं देकर इन सबकी हत्या कर दी गई । इनमें से किसी सिक्ख ने इस्लाम स्वीकार नहीं किया और बड़े धैर्य व निष्ठा से अपने प्राण बलिदान कर दिये । स्वयं बन्दा और उसके 3 वर्षीय पुत्र की 19 जून 1716 ई0 को निर्दयता से टुकड़े-टुकड़े करके हत्या कर दी गई ।[2] इस काल में मुगलों के जाटों से अच्छे सम्बन्ध रहे ।[3] चूड़ामन जाट को दिल्ली से ग्वालियर तक के शाही मार्ग का संरक्षक नियुक्त कर दिया गया ।[4]

सैयद बंधु फर्रुखसीयर के निरंतर षड्यन्त्रों से तंग आ चुके थे । अन्त में उन्होंने उसे सिंहासन से उतारकर नंगे सिर, नंगे पैर घसीटते और बुरी तरह पीटते हुए अन्धा करके भूखा रखा और जहर देकर, गला घोट कर मार डाला ।[5]

1- महाजन, मुगलकालीन भारत, पृ0 321; प्र0 एस·चन्द एण्ड कम्पनी-1968·

2- एम0पी0 शर्मा, मुगलकालीन भारत, पृ0 195, प्र0 लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा ।

3- गिरीश चन्द्र द्विवेदी, द जाट्स, पृ0 58; आरनाल्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली - 1989·

4- सतीस चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 106·

5- वही, पृ0 116·

इस कृत्य के पीछे सैयद-बन्धुओं ने यह सफाई दी कि उन्होंने जो कुछ भी किया वह आत्मरक्ष के लिये किया। फर्रूखसीयर इससे भी अधिक अपमान का पात्र था।[1] समकालीन खाफी खाँ लिखता है - सिंहासन पर बैठते ही उसने बरहा के एक सैयद अब्दुल्ला खाँ को अपना वजीर नियुक्त किया, जो उसकी भारी भूल थी[2], परन्तु वास्तव में उसकाल तक मुगल दरबार की आन्तरिक स्थिति यह हो चुकी थी कि वजीर का पद पाने के लिए घोर षड्यन्त्र चलते रहते थे और बादशाह वजीर नहीं नियुक्त करता था। वल्कि वजीर लोग (दरबारी) इच्छानुसार गद्दी पर शाहजादों को बैठाते थे और बादशाह बनाते थे।[3]

1719 ई0 का वर्ष मुगल बादशाहों की दृष्टि से सबसे भयंकर वर्ष था। फर्रूखसीयर की मृत्यु के बाद सैयद-बन्धुओं ने एक बार एक सम्राट दिल्ली के सिंहासन पर बैठाये।[4] इस प्रकार रफी-उद्-दरजात (28 फरवरी से 4 जून 1719 ई0), रफीउद्दौला (6 जून से 17 सितम्बर 1719 ई0), फिर मुहम्मदशाह (सितम्बर 1719 से 1748 ई0) सम्राट् रहे। रफी-उद्-रदजात एवं रफी-उद्दौला की शीघ्र मृत्यु का कारण उनका (राजयक्ष्मा) रोग से पीड़ित होना माना जाता है।[5] यह आरोप विवादास्पद है कि उन्हें सायद सैयद-बन्धुओं ने मरवाया था।

<u>मुहम्मदशाह (1719-1748 ई0)</u>- रफी-उद्दौला के बाद सैयद-बन्धुओं ने मुहम्मदशाह को मुगल सम्राट बनाया। यद्यपि मुहम्मदशाह सैयद-बंधुओं द्वारा गद्दी पर बैठाया गया था, किन्तु उसने उन्हें पदच्युत करने का घोर प्रयास किया और 1722 ई0 में वह इस प्रयास में सफल भी हुआ।[6] सैयद-बंधुओं द्वारा बनाये

1- महाजन, पू॰उ॰, पृ0 321॰

2- खाफीखाँ, मुल्तखब-उल-लुवाब, भाग 2, पृ0 758॰

3- शाहनवाज़ खाँ, मआसिर उल उमरा, पृ0 378॰

4- कीन, द फाल आफ् द मुगल इम्पायर, पृ0 347॰

5- मिराते वारिदात, पृ0 280॰

6- सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 138॰

गये बादशाहों की स्थिति कैदी से बेहतर नहीं होती थी। राजनीतिक मामलों में उनका योगदान तो शून्य के समान होता ही था, बल्कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से घूमने-फिरने की भी छूट नहीं थी, किन्तु शीघ्र ही सैयद-भाइयों का समय भी बदल गया।[1] तूरानी अमीरों के नेतृत्व में 9 अक्टूबर 1720 को हुसैन अली का वध कर दिया गया।[2] 15 नवम्बर 1720 ई0 को अब्दुल्ला खाँ को भी बन्दी बना लिया गया एवं दो वर्ष बाद बन्दीगृह में ही विष देकर उसकी हत्या कर दी गई।[3] इस काल तक दिल्ली के राजतन्त्र की नींव सड़ चुकी थी किन्तु मुहम्मदशाह ने किसी प्रकार परिस्थिति को इसके अनुकूल किया।[4]

यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई कि सैयद बन्धुओं के पतन के बाद सम्राट मुहम्मदशाह शक्तिशाली हो गया। युवा, सुन्दर एवं सब प्रकार के व्यसनों में फँसा होने के कारण उन्होंने अकर्मण्य जीवन बिताना शुरू किया।[5] जिस कारण साम्राज्य की शक्ति तेजी से क्षीण होने लगी। इतने लम्बे शासनकाल में सम्राट् के अन्दर सुधार के लक्षण कभी दिखाई नहीं पड़े। उसने राज्य-कार्य में कभी रूचि नहीं प्रगट की। इसके परिणाम बड़े घातक सिद्ध हुए। अनेक प्रान्त स्वतंत्र हो गये।[6] अलीवर्दी खाँ उड़ीसा, बिहार और बंगाल का स्वतन्त्र शासक बन बैठा।[7] निजामुलमुल्क दक्षिण में स्वतन्त्र बन गया।[8] सआदत खाँ बुरहान-उल-मुल्क अवध में

1- वारिद, पृ0 339.

2- एस0आर0शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 618.

3- मआसिर, भाग 3, पृ0 742.

4- सतीश चन्द्र, पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 178.

5- इर्विन, लेटर मुगल्स, पृ0 438.

6- इलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, भाग 7, पृ0 337.

7- मिरात, भाग 3, पृ0 283.

8- खाफीखाँ, पृ0 838.

स्वतन्त्र हो गया ।[1] उसी के काल में नादिरशाह का प्रसिद्ध आक्रमण हुआ और अपने वजीर कमरूद्दीन खाँ की मृत्यु से सम्राट मुहम्मदशाह को इतना आघात पहुँचा कि 15 अप्रैल 1748 ई0 को स्वयं उसकी भी मृत्यु हो गई ।[2] सम्राट् मुहम्मदशाह का पूरा समय विलासिता और नाच-गाने के बीच बीता । इतिहास में वह मुहम्मदशाह रंगीला के नाम से जाना जाता है ।[3]

सम्राट् मुहम्मदशाह के ही काल में पेशवा बाजीराव मार्च 1737 ई0 में केवल 500 मराठा घुड़सवारों को लेकर दिल्ली तक चढ़ आया था । मुगल सम्राट् उससे इतना डर गया था कि दिल्ली छोड़कर भागने को उद्यत था ।[4] फिर भी मुहम्मदशाह स्मरणीय है, क्योंकि सचमुच शाहजहाँ के तख्ते ताऊस पर बैठने वाला वह अन्तिम मुगल सम्राट् था ।

<u>अहमदशाह {1748-1754 ई0}</u> - अहमदशाह अपने पिता मुहम्मदशाह का इकलौता पुत्र था । 'तारीख-ए-आलमगीर' सानी' में लिखा है कि उसने व्यर्थ के कार्यों, आमोद-प्रमोद में अपने को लिप्त रखा और भोग-विलास में लगा रहा ।[5] अपने वजीर खानखाना तथा माता अधमबाई के भड़काने पर निजाम-उल-मुल्क आसफजाँह {गाजीउद्दीन} के प्रति शत्रुता दिखाई, जिसके फलस्वरूप उसके शासन का अन्त हो गया {6 साल 2 माह 9 दिन बाद}।[6] उसने 'मुजाहिउद्दीन अहमदशाह गाजी' की उपाधि धारण की । अहमदशाह की बुद्धि अधिक तीव्र न थी । राज्यारोहण के समय वह 21 वर्ष का था । उसे शासन का अनुभव नहीं था।

1- तारीखे मुबारकशाही, पृ0 122.

2- सतीश चन्द्र, वही, पृ0 147.

3- शिवदास, पृ0 152.

4- सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 1, पृ0 290.

5- कामवर, पृ0 405.

6- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 203.

वह अपने गुलाम जाविद खाँ पर (दरबार में स्त्रियों और गुलामों के दल का नेता) पर विशेष कृपालु था ।[1] जाविद खाँ अहमदशाह के काल में 'नवाब बहादुर के नाम से प्रसिद्ध था । शासन के क्षेत्र में उसका पर्याप्त हस्तक्षप था । जाविद का इतना बढ़ गया कि वह वजीर के सफदरजंग के विरूद्ध भी षडयन्त्र करने लगा ।[2] इससे सम्राट् के विरूद्ध वातावरण तैयार होने लगा । जबकि सम्राट साम्राज्य की समस्याओं को देखने के स्थान पर अपने हरम एवं दरबार दोनों ही स्थानों पर खेल-तमाशों एवं आमोद-प्रमोद में व्यस्त रहता था ।[3]

इसी समय 1749 ई0 में अहमदशाह अब्दाली का पंजाब पर आक्रमण हुआ । भारत में अधिक अन्दर प्रवेश न करके युद्ध हरजाना लेकर वह वापस चला गया ।[4] 1752 ई0 में उसका दूसरा आक्रमण हुआ और वह दिल्ली की ओर बढ़ा तो मुगल सम्राट ने पंजाब व मुल्तान उसके नाम करके अपना पीछा छुड़ाया ।[5] एक ओर अब्दाली तो दूसरी ओर मराठों का आतंक मुगल साम्राज्य को झकझोर रहा था । अहमदशाह दोनों ही समस्याओं के लिये कोई कारगर उपाय नहीं कर सका ।[6] दरबार में उसके विरूद्ध वातावरण बनही चुका था । ऐसी स्थिति में उसपर दरबारियों द्वारा खुलेआम आरोप लगाया गया और यह घोषणा की गयी कि सम्राट् शासन सम्हाल सकने में असमर्थ व अयोग्य है ।[7] वह अपने मित्रों के प्रति झूठा और अस्थिर है । उसे गद्दी से उतारकर तैमूरी वंश के किसी अन्य शहजादे को सिंहासन पर बैठाया जाये । इसके बाद अहमदशाह को अंधा बनाकर

1- एलिफिंसटन, हिस्ट्री आफ् इण्डिया, पृ0 682.

2- खाफीखाँ, पृ0 728.

3- मिर्जामुहम्मद, पृ0 46 अ.

4- खुशहाल, पृ0 103.

5- देहली क्रोनिकल, पृ0 286.

6- पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 148.

7- तारीखे इरादत खाँ, पृ0 536.

बन्दी बना लिया गया ।[1]

<u>आलमगीर द्वितीय (1754-1759 ई0)</u> - अहमदशाह के पदच्युत होने के बाद जहाँदरशाह का द्वितीय पुत्र अजीजुद्दीन, आलमगीर द्वितीय की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा । उसकी आयु 55 वर्ष थी और उसका अधिकांश समय बन्दी गृह में और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में बीता था ।[2] समझा-बुझाकर किसी प्रकार उसे मुकुट धारण करने के लिये तैयार किया गया । उसने गाजीउद्दीन खाँ इमाद-उल-मुल्क को वजीर नियुक्त किया ।[3] आलमगीर को शासन, युद्ध व राजनीति, किसी चीज का ज्ञान नहीं था । उसका वजीर इमाद-उल-मुल्क स्वार्थी था । उसने सम्राट् को कठपुतली बना लिया था । वह सारा राजस्व हड़पकर शाही परिवार को भूखा मारता था ।[4] उसने सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र अलीजोहर की हत्या करवा दी । 'इमाद' अपने प्रयासों के बाद भी उत्तर भारत में मराठों की बाढ़ को नहीं रोक सका ।[5] 1756 ई0 में चौथीबार अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया । वजीर इमाद-उल-मुल्क ने एक सेना भेजी और लाहौर से मुगलानी बेगम को बन्दी बनाकर दिल्ली ले आया गया ।[6] यह अहमदशाह का अपमान था । सबक सिखाने के लिये वह लाहौर रौंदता हुआ दिल्ली तक आ गया और उसने बड़ा कत्लेआम मचाया । एक बार फिर नादिर-शाह के आक्रमण की पुनरावृत्ति हुई । लोगों ने आत्महत्याएं करके अपनी इज्जत बचायी ।[7] अहमदशाह की सेनायें एक माह तक दिल्ली में रुकीं । उसने अपने पुत्र

1- भीमसेन, नुस्खा-ए-दिलकुशा, पृ0 628.

2- कीन, द फाल आफ् द मुगल इम्पायर, पृ0 328.

3- आर0पी0 घोषाल, मुगल किंगशिप एण्ड नोवेल्टी, पृ0 229.

4- सतीश चन्द्र, वही, पृ0 144.

5- इरादत खाँ तारीखे मुबारकशाही, पृ0 78.

6- गुलाम हुसैन, सियार-उल-मुताखरीन, पृ0 95.

7- सरकार, फाल आफ् द मुगल इम्पायर, भाग 1, पृ0 239.

का विवाह मुगल सम्राट् की पुत्री से कराया । मथुरा पर आक्रमण करके उसे लूटा एवं निर्दोष तीर्थयात्रियों की हत्यायें की ।[1] स्वयं अब्दाली ने मुहम्मदशाह की एक कुमारी कन्या से विवाह किया और इतना ही नहीं उसकी विधवाओं सहित हरम की अन्य स्त्रियों को भी साथ लेता गया ।[2] इस आक्रमण में अब्दाली ने करोड़ों रूपये की सम्पत्ति भी लूटी । सम्राट और वजीर के सम्बन्ध ठीक नहीं थे ।[3] सम्राट के धार्मिक विचारों को जानते हुये एक दिन वजीर इमाद-उल-मुल्क ने कंधार के एक फकीर से मिलने के बहाने सम्राट् को अकेला धोखे से बुलाकर निहत्था करके फिरोजशाह कोटला के निकट एक भवन में कटारों से गोदवाकर हत्या करवा दी और मुगल सम्राट का शव पूर्ण । नंगा करके नीचे फेंकवा दिया ।[4] यह घटना 30 नवम्बर 1759 को घटी । उसी दिन कामबख्श के बेटे मुहीउस्सुनत के पुत्र मुहीउलमिल्लत को शाह जहाँ द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा दिया गया ।[5] इस समय शाहआलम द्वितीय के नाम से अलीगौहर (आलमगीर द्वितीय का पुत्र जो उस समय पटना में था) भी अपने को पटना में सम्राट घोषित कर दिया ।[6]

<u>शाहआलम द्वितीय (1759-1806)</u>- अलीगौहर अपने पिता की मृत्यु के समय बिहार में था और तत्कालीन परिस्थितियाँ देखते हुये अकले 12 वर्षों तक दिल्ली की ओर जाने का साहस नहीं कर सका ।[7] वह जनवरी 1772 ई० में

1- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ० 38.

2- खाफी खाँ, वही, भाग 2, पृ० 733.

3- तारीखे मुजफ्फरी, पृ० 108.

4- गुलाम अली, इमाद-उल-सआदत, जिल्द 2, पृ० 187.

5- एस०आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 609.

6- आर०पी० घोषाल, मुगल किंगशिप एण्ड नोवेल्टी, पृ० 238.

7- सतीश चन्द्र, पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ० 152.

दिल्ली आया, वह भी मराठों की सहायता से । इस काल में वह अंग्रेजों के प्रभाव में रहा । ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये उसे ही असली सम्राट् मानती थी । उसने बिहार एवं बंगाल को जीतने का प्रयास किया किन्तु असफल रहा ।[1] बक्सर के युद्ध में पराजित होकर शाहआलम को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों के नाम लिख देनी पड़ी । उसने 26 लाख वार्षिक भेंट देना भी स्वीकार किया । इस अपमानजनक स्थिति से वह ऊब चुका था और दिल्ली जाना चाहता था ।[2] दिल्ली से उसके लिये बुलावा भी आ रहा था । अन्त में 1772 ई0 में मराठों की सहायता से वह दिल्ली पहुँच गया ।[3]

पानीपत के तीसरे युद्ध का विजेता अहमदशाह अब्दाली भारत में अपनी विजय का लाभ उठाने के लिये रुका नहीं और जाते समय शाहआलक को मुगल सम्राट् एवं इमाद-उल-मुल्क को वजीर नियुक्त कर गया था ।[4] इस युद्ध के फल-स्वरूप मराठा-संघ को भी करारा आघात लगा था, किन्तु इस स्थिति से कोई लाभ उठाने की शक्ति शाहआलम में नहीं थी ।[5]

इस प्रकार बहादुरशाह के बाद 1761 तक जो भी मुगल बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठे वे बहुत ही अकर्मण्य, विलासी एवं नाम मात्र के बादशाह थे । इनके समय में मुगल साम्राज्य नाममात्र का रह गया था । साम्राज्य की वास्तविक शक्ति वजीरों के हाथ में हो गई थी । अत: वे वजीरों के राजनीतिक षड्यन्त्रों

1- मिराते अहमदी, पृ0 418.

2- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 147.

3- तारीखे इब्राहिमी, पृ0 612.

4- खाफीखाँ, पृ0 816.

5- सतीशचन्द्र, पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 144.

के शिकार हो गये थे ।

मुगल वजारत की समस्या -

औरंगजेब के बाद दरबार में वजारत की सभासद ने सर उठाना शुरू कर दिया था । यह समस्या उत्तरोत्तर विनाशकारी होती गई । इसका पृथक से वर्णन आवश्यक है । औरंगजेब अन्तिम गौरवशाली सम्राट था । अकबर ने वजीर (वकील अथवा दीवान) पद के महत्व को बादशाह के पद के लिए नियन्त्रित किया था, तब से लेकर औरंगजेब तक यह पद सदैव सम्राटों की कृपा पर ही निर्भर रहा ।[1] औरंगजेब का पुत्र और उत्तराधिकारी बहादुरशाह वृद्धावस्था में गद्दीपर बैठा था । उसके चरित्र में तो दुर्गुण नहीं था किन्तु राज्य की रक्षा और प्रशासकीय जैसे मुद्दों के लिए ढुलमुल रवैया अपनाने के कारण लोग मजाक में उसे शाहेबेखबर के नाम से पुकारते थे ।[2] वह किसी को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था और महत्वपूर्ण निर्णयों में भी समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाने का प्रयत्न करता था ।[3]

<u>बहादुरशाह</u> - बहादुरशाह ने उत्तराधिकारी के युद्ध के पहले ही मुनीमखाँ को वजीर बनाने का बचन दे दिया था, जबकि उसी पद का दावेदार औरंगजेब का वजीर असदखाँ अभी जीवित था । असद का पुत्र जुल्फिकार खाँ मीरबख्शी अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति था ।[4] बहादुरशाह ने वादे के अनुसार मुनीम खाँ को वजीर का पद दे दिया, किन्तु असद खाँ को सन्तुष्ट करने के लिए वकील-ए-मुतल्लक का पद (बाद में शाही परिवार का संरक्षक) दिया और उसके पुत्र जुल्फिकार को मीरबख्शी के पद पर रहने दिया ।[5] वकीले मुतल्लक बहुत

1- कामवर, पृ0 28.

2- शाबान वर्ष, 2/17 सितम्बर, 1713.

3- पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 143.

4- खाफी खाँ, पृ0 742.

5- रियासत, पृ0 160.

प्रतिष्ठा का पद था किन्तु इस व्यवस्था से असद और ज़ुल्फ़िकार को संतुष्ट नहीं कर सका। मुनीम की मृत्यु के बाद शाहजादा अजीमुश्शाद के माध्यम से ज़ुल्फ़िकार एकबार 1712 में सम्राट के समक्ष असद खाँ को वजीर का पद और स्वयं को दक्षिण का सूबेदारी तथा मीरबख्शी का पद दिये जाने की पेशकश की।[1] इसे मानने का एक ही अर्थ था कि साम्राज्य के सभी बड़े पद एकही परिवार के हाथ में चले जाते जो कि एक खतरनाक बात थी। इसे न मानकर बहादुरशाह ने सादुल्ला खाँ नामक पुराने व बुज़ुर्ग मुगल सरदार को वजीर बनाकर समस्या से पीछा छुड़ाया।[2] किन्तु पिता के हक की अपेक्षा किये जाना ज़ुल्फ़िकार खाँ भूल न सका और अजीमुश्शान का विरोधी हो गया।[3]

इसके बाद बहादुरशाह के काल में वजीर पद की कोई समस्या नहीं उठी, किन्तु आंतरिक राजनीति के कारण शासन की समस्यायें उत्पन्न होने लगी और दरबार में गुटबन्दी तथा षड्यन्त्रों को पैर जमाने का अवसर मिला।[4] इस काल में मुगल दरबार में इरानी, तुरानी और भारतीय मुसलमानों के तीन गुट बन गये। यह गुटबन्दी तो बढ़ती ही गई अपितु चरित्रहीन सम्राटों और तेजी से रिक्त होते राजकोष के कारण मुगल साम्राज्य तेजी से पतन की ओर बढ़ने लगा।[5]

<u>जहाँदार शाह (1712-13 ई0)</u> - बहादुरशाह के मरते ही उसके पुत्रों जहाँदार शाह, अजीमुश्शान, रफीउश्शान और जहाँनशाह के बीच उत्तराधिकार

1- सर देसाई, मराठा रियासत, (मध्य विभाग), पृ0 118.

2- यूसफ हुसैन, आसफजाह, पृ0 340.

3- मआसिर, भाग 3, पृ0 737.

4- इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1946. पृ0 320.

5- सरकार, फाल आफ द मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 137.

का युद्ध आरम्भ हो गया । इनमें से कोई भी औरंगजेब का सही उत्तराधिकारी नहीं था ।[1] ऐसे में दरबारी गुटबन्दी बढ़ना स्वाभाविक था । ज़ुल्फ़कारखाँ ने इस काल में अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूरी करने के लिए सबसे अयोग्य शहजादे जहाँदार शाह का पक्ष लिया और खुलकर अपनी मंशा पूरी की ।[2] इस युद्ध में जहाँदारशाह विजयी हुआ और ज़ुल्फ़कार खाँ उसका वजीर बना । जहाँदारशाह शासन के प्रति उदासीन और लापरवाह एक कमजोर और विलाशी बादशाह साबित हुआ ।[3] उसने दस हजार जाट और सवार का मनसब देकर न केवल ज़ुल्फ़कार खाँ को अपना वजीर बनाया बल्कि उसे दक्षिण का सूबेदार भी रहने दिया ।[4] उसके पिता असदखाँ बारह हजाजआत और सवार का मंसब देकर गुजरात की सूबेदारी और वकीले मुतल्लक का पद दिया गया । इस काल तक असद खाँ दरबारी राजनीति से उदासीन हो गया था । अत: सारीशक्ति ज़ुल्फ़कार खाँ के हाथ में आ गई ।[5] किन्तु दरबार में एक ऐसा भी गुट था जो इनलोगों का विरोधी था और इस लिए चाहता था कि बादशाह की शक्ति बादशाह के हाथ में ही रहे । यह गुट बराबर बादशाह का कान भरता था । इस गुट का नेता बादशाह का धाय-भाई और उसका अटालिक तथा विश्वासपात्र कोकलतास खाँ था । ज़ुल्फ़कार खाँ के कारण वह वजीर नहीं बन सका था ।[6] वह जहाँदार को यह समझाने में असफल रहा कि वजीर शाही रक्त बहाकर स्वयं गद्‌दी चाहता है । बादशाह ने उसे नौ-हजार जाट और सवार का पद, उसके भाई आदम खाँ को

1-वारिद, पृ0 643.

2- शिवदास, पृ0 513.

3- सतीशचन्द, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 148.

4- हरचरन, जहाँकुशा, पृ0 243.

5- एस0आर0 शर्मा, वही, पृ0 462.

6- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 374.

8 हजार मंसब और 8 हजार सवार का मंसब और बहनोई को खाने दौरान के उपाधि के साथ 8 हजार जाट एवं सवार उच्च मंसब दिये ।[1] उल्लेखनीय है कि इनमें से कोई भी इतने भारी पदों के योग्य नहीं था ।

जुल्फकार का दूसरा विरोधी गुट बादशाह की प्रिय रानी (नर्तकी) लालकुंवर के सम्बन्धियों का था । लालकुंवर के कारण उसके अनेक सम्बन्धी साजिन्दों और तबलचियों को ऊंचे-ऊंचे पद सौंप दिये गये ।[2] लालकुंवर को शाही आलक और नक्कारे के प्रयोग का अधिकार था । तत्कालीन इतिहास में उसको और जहांदार शाह को लेकर अनेक ओछे किस्से प्रचलित हैं ।[3] उन किस्सों पर न्यूनाधिक सन्देह होना या न होनातो अलगबात है किन्तु यह निर्विवाद है कि लालकुंवर के प्रेम में बादशाह ने शाही जुल्फकार खां लालकुंवर के सम्बन्धियों को महत्व नहीं देता था और उनके तौर तरीकों की तिलांजलि दे दी थी जिससे सम्राट पद की प्रतिष्ठा रसातल में चली गई और दरबार के षड्यन्त्रों को अधिक प्रोत्साहन मिला ।[4]

जुल्फकार खां अपनी नीतियों में उदार था । जाटों, मराठों और सिक्खों के साथ उदार सम्बन्ध रखने का वह हामी था । किन्तु उसे काम करने का अवसर बहुत कम मिला ।[5] इनलोगों के अतिरिक्त अमीन खां और चीन कुलिचखां जैसे महत्वपूर्ण अमीरों का गुट भी जुल्फकार से नाखुश था । जुल्फकार अमीरों के दल को सन्तुष्ट कर सकने में असमर्थ रहा और उनपर नियंत्रण भी नहीं कर सका ।[6] इसी समय अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर ने पटना में स्वयं को

1- सरकार, फाल आफ द मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 132.

2- आशोब, पृ0 203.

3- मआसिर उल उमरा, भाग 3, पृ0 235.36.

4- लॉकहार्ट, नादिरशाह पृ0 105.

5- मआसिर आलमगीरी, पृ0 394.

6- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 245.

बादशाह घोषित कर दिया और भारी सेना के साथ आगरा की ओर बढ़ा। अनेक अमीर भी उससे मिल गये।[1] 10 जनवरी, 1713 के हुए युद्ध में जहाँदार शाह पराजित हुआ। इसी के साथ जुल्फकार खाँ का भी पतन हो गया। फर्रुखसियर के विजय में सैयद-बन्धुओं का विशेष हाथ था।[2] इस प्रकार इस काल तक विजारत की विशेष समस्या बनी रही।

राजनिर्माता (सैयद बन्धु) -

फर्रुखसियर (1712 ई0) से लेकर इब्राहीमशाह (1720 ई0) तक का नौ वर्षों का इतिहास बहुत अंशों में अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैन अली खाँ नायक बरहा के सैयदों की कहानी है। मध्यकाल के इतिहास में ये दोनों भाई राज निर्माताओं के रूप में विख्यात हैं।[3] जब फर्रुखसियर सिंहासन के लिये संघर्ष किया तो पहली बार उसका महत्व बढ़ा। फर्रुखसियर इन्ही लोगों की सहायता से गद्दी पर बैठा था।[4] सैयद भाइयों का पिता सैयद मियाँ पहले बीजापुर फिर अजमेर का सूबेदार रह चुका था।[5] दोनों भाइयों में हुसैन अली बिहार का और अबदुल्ला खाँ इलाहाबाद का सूबेदार था।[6] दोनों का जन्म भारत में हुआ था और अपनी वीरता के लिये विख्यात् थे। ये दोनों भाई फर्रुखसियर को गद्दी पर बैठाने एवं उसके पतन दोनों के लिये उत्तरदायी थे।[7] फर्रुखसियर भी इनसे घबड़ाता था और इन्हें समाप्त करने के लिये बार-बार षड्यन्त्र करता रहा, किन्तु सफलता

1- सतीशचन्द्र, वही, पृ0 150.

2- तारीखे हिन्दी, पृ0 559.

3- कामवर, पृ0 413; शिवदास, पृ0 68.

4- आशोब, तारीखे शहादत-ए-फर्रुखसियर व जुलूसे मुहम्मदशाही, पृ0 151.

5- इर्विन, लेटर मुगल्स, पृ0 233.

6- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 683.

7- खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 941.

इन दोनों भाइयों को (फर्रुखसियर को समाप्त करने में) मिली ।[1] सैयदबन्धु शिया थे, फलत: सुन्नियों के घृणा के पात्र थे । सैयद बन्धुओं ने रफी उस्शान एवं रफी उद्दौला को भी गद्दी पर बैठाया पर इन दोनों की बहुत जल्द ही मृत्यु हो गयी ।[2] तब उसी वर्ष सैयद बन्धुओं ने मुहम्मदशाह को सम्राट पद पर बैठाया । फर्रुखसियर के काल में ही अब्दुल्ला खाँ को वजीर एवं हुसैन को मीर बख्शी बनाया गया और दोनों को ही 7000 जाट एवं 7000 सवार का मनसब भी दिया गया था ।[3]

इस काल में वजीर एवं सम्राट् दोनों के ही अधीन रहने वाले अधिकारी व नौकर सैयद अब्दुल्ला के ही नौकर थे । व्यवहारिक राजस्व सम्बन्धी एवं कानूनी विषयों पर उनका अधिकार था और यहाँ तक कि नगरों में और न्याय सम्बन्धी पदों पर काजियों की नियुक्ति भी वही करता था ।[4] और सरकारी अधिकारी अपना महत्व और प्रभुत्व खो बैठे । अब्दुल्ला खाँ की मोहर से अंकित फरमान के बिना कोई व्यक्ति किसी काम को अपने हाथ में नहीं ले सकता था ।[5] यह बात मुख्य है कि सायदबन्धु धार्मिक सहिष्णुता में केवल विश्वास ही नहीं करते थे, अपितु उसपर अमल भी करते थे ।[6] जजिया को हटाने और राजपूतों के प्रति समझौते की नीति अपनाने के लिये यही दोनों उत्तरदायी थे । इन दोनों ने राजा रतनचन्द्र को दीवान नियुक्त किया ।[7] अब्दुल्ला का विश्वास

1- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ् इण्डिया, भाग 4, पृ0 365.

2- बालमुकुन्दनामा, पृ0 119.

3- सरकार, फाल आफ् द मुगल इम्पायर, भाग 1, पृ0 285.

4- पार्टीज़ एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 148.

5- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 235.

6- आशोब, पृ0 156.

7- मुहम्मद अहसन इजाद, तारीखे फर्रुखसियर, पृ0 428.

पात्र और कृपा पात्र होने के कारण रतनचन्द्र की स्थिति दरबार में बहुत सुदृढ़ थी। मुगल दरबार में हिन्दुओं और मुसलमानों का एक 'हिन्दुस्तानी दल' गठित करने का श्रेय भी इन्ही दोनों को था ।[1] उनकी नीतियों के कारण राजपूत सैयद बन्धुओं के सबसे अतिशक्तिशाली समर्थक थे । अजीत सिंह ने इसी काल में अपनी शत्रुता त्यागी और अपनी कन्या का सम्राट फर्रुखसियर के साथ विवाह किया ।[2]

अस्तु सैयद बन्धुओं का पतन हुआ । मुगल दरबारी इन भाइयों द्वारा उच्च पदवी प्राप्त करने के कारण ईर्ष्या करते थे । इनके शिया मतावलम्बी होने के कारण सुन्नी इनसे घृणा करते थे । सम्राट फर्रुखसियर को गला घोट कर मारने की घटना के बाद ये लोग इन भाइयों से बड़े भयभीत हो गये थे ।[3] यद्यपि मुहम्मदशाह सिंहासन पर सैयद बन्धुओं का प्रतिनिधि था पर इनकी शक्ति समाप्त कर देने के लिये उसका संकल्प दृढ़ था । इसमें कोई सन्देह नहीं कि सआदत खाँ और निजाम उल-मुल्क के नेतृत्व में एक षड्यन्त्र रचा गया ।[4] षड्यन्त्रकारियों के साथ और दल भी मिल गये । विद्रोह हुआ जिसमें हुसैन अली मारा गया ।[5] अब्दुल्ला खाँ ने एक दूसरे व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाकर भाई की मृत्यु का बदला लेना चाहा, पर वह असफल रहा और गिरफ्तार कर लिया गया । यह घटना 1720 ई0 की है । अब्दुल्ला दो वर्ष दिल्ली के किले में कैद रहा । अन्त में वहीं 11 अक्टूबर 1722 ई0 को विष देकर उसकी हत्या कर दी गई ।

1- आर0पी0 घोषाल, मुगल किंगशिप एण्ड नोवेल्टी, पृ0 308.

2- कीन, द फाल आफ द मुगल इम्पायर, पृ0 264.

3- खाफी खाँ, पृ0 834.

4- एस0जी0 ओपेन, द फाल आफ द मुगल इम्पायर, पृ0 186.

5- सतीशचन्द्र, पार्टीज़ एण्ड पोलिटिक्स, पृ0 152.

चतुर्थ अध्याय -

पेशवाओं के काल में मराठा शक्ति

पेशवाओं के काल में मराठा शक्ति

औरंगजेब के जीवन में ही मराठे अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे। छत्रपति शिवाजी (1627-1680 ई0) ने महाराष्ट्र में मराठा-राज्य की नींव रख दी थी। शिवाजी के बाद उनके उत्तराधिकारी भी मुगलों से लोहा लेते रहे। 1707 ई0 से 1749 ई0 तक मराठा राज्य का स्वामित्व छत्रपति शाहू के हाथ में रहा, किन्तु वह एक शान्तिप्रिय और आलसी व्यक्ति था, अत: राज्य की असली शक्ति उसके पेशवाओं के हाथ में रही। 1714 ई0 से 1720 ई0 तक पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने मराठा शक्ति को बहुत सुदृढ़ किया। उसके प्रयासों से सारे दक्षिण पर मराठों का प्रभाव स्थापित हो गया। 1720 से 1740 ई0 तक उसके पुत्र पेशवा बाजीराव प्रथम ने मराठा गौरव में चार चाँद लगाये। वह सारे भारतवर्ष में हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहता था। इस नीति का अनुसरण करते हुए उसने गुजरात, मालवा, बुन्देलखण्ड, दोआब आदि प्रदेशों को जीता। 1740 में उसकी मृत्यु के बाद बालाजी बाजीराव पेशवा बना। यह 1761 ई0 में होने वाले पानीपत के तृतीय युद्ध तक रहा। पानीपत के युद्ध में मराठों की अपार क्षति हुई। अत: पराजय के छ: माह बाद 23 जून, 1761 को बालाजी बाजीराव की मृत्यु हो गई। इस प्रकार इन आरम्भिक पेशवाओं का प्रभुत्व समाप्त हो गया। प्रस्तुत अध्याय में इन पेशवाओं के काल में होने वाले मराठा साम्राज्य के उत्कर्ष एवं विस्तार का विस्तृत विवेचन किया गया है।

छत्रपति शाहू का आविर्भाव और मराठों का उत्कर्ष -

शाहू का जन्म 10 मई, 1682 को हुआ था। उसे जन्म से ही अपने पिता शम्भाजी और माता येसूबाई के साथ, औरंगजेब के विरुद्ध संघर्ष के कारण अत्यधिक

कष्टों का सामना करना पड़ा था ।[1] 13 नवम्बर, 1689 ई० को रायगढ़ के किले का पतन होने के पश्चात् उसे अपनी माँ के साथ मुगल हिरासत में ले लिया गया था । कैद में आने के समय इसकी अवस्था सात वर्ष थी और उसे साढ़े सात वर्ष तक बन्दी जीवन व्यतीत करना पड़ा ।[2] औरंगजेब की पुत्री जीनतुन्निसा की दयापूर्ण देख-रेख में बाद में उसकी साधारण सुख-सुविधा का प्रबन्ध कर दिया गया था किन्तु उसे अब अपनी स्वतन्त्रता की बहुत कम आशा रह गई थी ।[3] वस्तुत: उस समय शाहू का भाग्य डाँवा-डोल हो रहा था । ऐसी संभावना थी कि या तो उसे मुसलमान बनालिया जायेगा या उसका बध कर दिया जायेगा । औरंगजेब की शाहू को मुसलमान बनाने की इच्छा उसकी पुत्री के कारण क्षीण हो गई ।[4] वह शाहू के केवल दो सम्बन्धियों को ही मुसलमान बना सका । इधर येशूबाई ने भी राजाराम के प्रति अपनी शत्रुता प्रकट की और यह घोषणा कर दी कि वे औरंगजेब की सुरक्षा में पूर्ण सुरक्षित है ।[5] शाहू भी कभी-कभी सम्राट के समक्ष अभिवादनार्थ लाया जाता था, जिससे औरंगजेब उसके व्यवहार और राजभक्ति से सन्तुष्ट हो गया ।[6]

फरवरी 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के तत्काल बाद उसका पुत्र आजम गद्दी पर बैठा ।[7] इसके फलस्वरूप शाहू तथा उसके परिवार के लोग आजमशाह की कैद में आ गये । आजमशाह का सिंहासन अभी निरापद नहीं था, क्योंकि औरंगजेब के उत्तराधिकार का निर्णायक संघर्ष होना अभी शेष था ।[8] जब आजम

1- रानाडे, राइज़ आफ़ दी मराठा पावर, पृ० 80·
2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़, भाग 1, पृ० 319-20·
3- खाफ़ी खाँन, औरंगजेब, पृ० 133·
4- किनकेड एण्ड पारसनिस, ए हिस्ट्री आफ़ दी मराठा पीपुल, भाग 2, पृ० 225·
5- बालाजी हार्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ० 86, भाग 2, पृ० 225·
6- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब, भाग 3, पृ० 87·
7- डॉ० एस०आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 588·
8- लेनपुल, औरंगजेब, पृ० 72·

अपने भाई शाहआलम से संघर्ष करने के लिए उत्तर की ओर रवाना हुआ तो मार्ग में शाहू अपने छोटे से दल के साथ सम्राट से मुक्ति पाकर मराठा राज्य की गद्दी हस्तगत करने के लिए सतारा की ओर बढ चला ।[1] वह किन परिस्थितियों में मुक्त हुआ, यह स्पष्ट नहीं है । मुसलिम लेख-कों का कहना है कि वह भाग गया[2], किन्तु मराठा लेखक कहते हैं कि उसने अनुमति प्राप्त कर ली थी ।[3] सर देसाई का कहना है कि उसकी संरक्षिका जीनतुन्निसा तथा अन्य मित्रों ने शाहू को सलाह दी कि वह आजमशाह की ओर से अपनी नियुक्ति की नियमित सनदें प्राप्त करने की प्रतीक्षा न करके तुरन्त शिविर छोड़कर अपनी मातृ-भूमि की ओर चला जाय । उसने इस परामर्श पर तुरन्त आचरण किया । भोपाल के उत्तर-पश्चिम में लगभग 20 मील पर स्थित दोराहा नामक स्थान पर 8 मई को उसने मुगल शिविर छोड़ दिया ।[4] शाहू का पीछा नहीं किया गया । इससे स्पष्ट है कि या तो आजम ने अपनी मौन अनुमति दे दी थी या परिस्थितियों के कारण वह विवश था । शाहू के मुगल शिविर से महाराष्ट्र में प्रविष्ट होने के कारण महाराष्ट्र में एक गम्भीर संकट उपस्थित हो गया । यद्यपि शम्भाजी की नृशंस हत्या के बाद उसके भाई राजाराम ने राज्यभार संभाला था तथापि गद्दी का असली उत्तराधिकारी सम्भाजी के पुत्र शाहू को स्वीकार किया गया था ।[5] किन्तु राजाराम की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा ताराबाई ने अपने अल्पवयस्क पुत्र शिवाजी द्वितीय को गद्दी का वारिस स्वीकार कराने का प्रयास किया । अत: शाहू के महाराष्ट्र में लौटआने के बाद मराठों में दो दल हो गये ।[6] बरार,

---

1- साहूज क्रॉनिकल, पृ0 26·

2- एम0अतहर, द मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब, पृ0 168;
- ए0 अजीज, द मनसबदारी सिस्टम्, पृ0 105·

3- चिटनिस, छत्रपतिशाहू महाराजाचें चरित, पृ0 53-54·

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज्, भाग 2, पृ0 4·

5- ब्रजकिशोर, ताराबाई एण्ड हर टाइम्स्, पृ0 132·

6- डा0 रामप्रसाद त्रिपाठी, राइज् एण्ड फाल आफ् दी मुगल एम्पायर, पृ0 418·

खानदेश तथा बडालाना के प्रभावशाली मराठा सरदार, रासोजी भोंसले, नीपाजी सिन्धया, हैबतराव निम्बलकर, शाहू के श्वसुर रूस्तमजी जाधव इत्यादि ने शाहू का साथ दिया ।[1] पूना के निकट खेड की लड़ाई में ताराबाई द्वारा भेजी गई सेना को परास्त करने के बाद शाहू ने सतारा पर आक्रमण किया ।[2] यद्यपि परशुराम पंत प्रतिनिधि ने फिर भी उसका विरोध किया । सतारा के मुगल किलेदार शेखमीर ने शाहू को असली उत्तराधिकारी स्वीकार करते हुए किले के द्वार खोल दिये ।[3] 12 जनवरी 1708 को शाहू ने धूम-धाम से सतारा में अपना राज्याभिषेक किया ।[4] तत्पश्चात् उसने पन्हाला पर अपना अधिकार जमाया ।[5] यदि सब मराठे सरदार शाहू का साथ देते तो वह शिवाजी के सम्पूर्ण राज्य पर अपना अधिकार जमालेता, किन्तु बहुत से सरदार शाहू को अधिक शक्तिशाली नहीं होने देना चाहते थे ।[6] बहादुरशाह के वजीर मुनइम खाँ ने भी ताराबाई का साथ दिया था ।[7] शाहू यद्यपि इन सरदारों के षड्यन्त्र का शिकार हो गया था, तथापि सौभाग्य से 1714 ई0 में महल षड्यन्त्र के फलस्वरूप ताराबाई के हाथ से शक्ति निकल गई ।[8] राजाराम की दूसरी विधवा राजसबाई ने ताराबाई तथा उसके पुत्र शिवाजी द्वितीय को जेल में डाल दिया । राजसबाई का पुत्र शम्भाजी उसकी संरक्षिका में गद्दी पर बैठा, परन्तु वह कोल्हापुर जाकर बस गया ।[9] शाहू ने उसे हराकर 1731 ई0 में वारना के स्थान पर एक सन्धिपत्र

1- चिटनिस, छत्रपति शाहू महाराजाचें चरित्र, पृ0 57.
2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज्, भाग 2, पृ0 12.
3- डबल्यू0 इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 130.
4- ग्राण्ट डफ्, हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 1, पृ0 349.
5- सर देसाई, मराठी रियासत, भाग 1, पृ0 349.
6- किनकैड, हिस्ट्री आफ् दी मराठा पीपुल, पृ0 188.
7- नियमत खाँ आली, बहादुरशाह नामा, पृ0 638.
8- द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ् इण्डया, भाग 4, पृ0 392.
9- डा0 सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 159.

पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया ।[1] इसके अनुसार वारना नदी के दक्षिणी प्रदेश शम्भाजी को तथा उत्तरी प्रदेश शाहू को मिल गये । शाहू के समक्ष अनेक आन्तरिक और वाह्य कठिनाइयाँ आईं, लेकिन वह सफलतापूर्वक उनका मुकाबला करता रहा । इसका मुख्य कारण उसके द्वारा तीन सुयोग्य एवं सक्षम पेशवाओं की नियुक्ति थी ।[2] उन पेशवाओं ने शाहू की समस्त कठिनाइयों पर शनैः शनैः विजय प्राप्त करके न केवल महाराष्ट्र में उसकी सत्ता को स्थिर किया अपितु उसे विकास की चरम सीमा तक पहुँचा दिया ।[3]

शाहू के समय पेशवाओं का उत्थान -

शाहू के काल में मराठा राज्य की असली शक्ति पेशवाओं के हाथ में आ गई । प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ (1714-1720 ई०) ने मराठा शक्ति को बहुत दृढ़ कर दिया । शाहू की अन्तरिक परेशानियों का निवारण तथा मराठों के प्रभाव को दक्षिण में सर्वोच्च बनाने का श्रेय बालाजी विश्वनाथ को ही जाता है ।[4] उसके बाद पेशवा बाजीराव प्रथम (1720-1740 ई०) ने मराठों की सैनिक सत्ता की श्रेष्ठता को स्थापित किया । उसने मराठा शकित को गुजरात, मालवा, नागपुर, ग्वालियर की तरफ फैलाया । दिल्ली के मुगल सम्राट तथा निजाम हैदराबाद के घमण्ड को चकनाचूर कर उनके अनेक प्रदेशों को मराठा साम्राज्य में मिला लिया ।[5] तत्पश्चात् पेशवा बालाजी बाजीराव (1740-1761 ई० ने मराठा शक्ति को सारे भारत में फैलाकर शिवाजी के हिन्दू पद पादशाही के स्वप्न को साकार कर दिया ।[6] लेकिन उसी के काल में अहमदशाह

1- राजवाड़े, मराठ्यांचा इतिहास साधने, भाग 2, पृ0 263·

2- रानाडे, राइज़ आफ़ द पेशवाज़, पृ0 78·

3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़ पीपुल, भाग 2, 19·

4- डीघे, बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेन्सन, पृ0 108·

5- एम0 फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 270·

6- सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 86·

अब्दाली के विरूद्ध पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की निर्णायक पराजय हुई। यद्यपि मराठों की शक्ति निर्मूल नहीं हुई तथापि सारे भारत में साम्राज्य स्थापित करने का उनका सपना चकनाचुर हो गया।[1] शाहू द्वारा नियुक्त पेशवाओं के काल में घटित-घटनाओं का विवरण विस्तृत रूप से इस अध्याय में आगे दिया गया है।

पेशवा पद और पेशवाओं के उदय के कारण

पेशवा पद का आरम्भ शिवाजी की अष्ट प्रधान शासन पद्धति से हुआ था। यह पद्धति शिवाजी ने कहाँ से ग्रहण की, इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है। कुछ लोगों की मान्यता है कि शिवाजी ने यह प्रणाली मुसलमान शासकों से ग्रहण की है, तथा फारसी नामों के स्थान पर संस्कृत नामों का प्रयोग कर मुस्लिम कल्पना को भारतीय जामा पहिनाने का प्रयत्न किया है।[2] इसके विपरीत अन्य लोगों की राय है कि अष्ट प्रधान पद्धति एक नवीन शासन प्रणाली थी तथा इसपर भारत के प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित शासन प्रणालियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।[3] किन्तु वास्तविकता यह है कि अष्ट प्रधान पद्धति कोई पूर्व नियोजित प्रणाली नहीं थी। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि इन अष्ट प्रधानों की नियुक्तियाँ एक ही समय पर नहीं हुई थीं। ज्यों-ज्यों राज्य का विस्तार होता गया और नये-नये उत्तरदायित्व सामने आते गेय, त्यों-त्यों शिवाजी ने उत्तरदायित्सों को निभाने के लिए नवीन पदो का सृजन किया तथा उनपर योग्य व्यक्तियों की नियुक्तियाँ करते गये।[4] तत्कालीन परिस्थितियों पर सुदृढ़ नियन्त्रण रखने के लिए शिवाजी ने जो प्रयत्न किये थे,

---

1- रानाडे, राइज़ आफ़ दी मराठा पावर, पृ0 125.

2- एम0जी0 रानाडे, राइज़ आफ़ दी मराठा पावर, पृ0 180.

3- एच0एन0 सिंहा, राइज़ आफ़ दी पेशवाज़, पृ0 158.

4- इर्विन सर विल्सन, लैटर मुगल्स, भाग 1, पृ0 218.

उससे अष्ट प्रधान पद्धति विकसित हुई । इसमें मुस्लिम शासन व्यवस्था के अनुकरण का भी कुछ भाग माना जा सकता है ।[1] साथ ही इसमें शिवाजी की कल्पना का भी बहुत कुछ समावेश है । अनुकरण और कल्पना के व्यावहारिक मिश्रण ने ही क्रमशः अष्ट प्रधान पद्धति का रूप धारण किया । इसमें पेशवा फारसी भाषा का शब्द है, जिसका संस्कृत नाम 'पन्तप्रधान' है[2], तथा कर्तव्य मुख्य दीवान के कार्यों को देखना है । इन अष्ट प्रधानों में पेशवा प्रमुख प्रधान माना जाता था शेष उसके अधीन थे । पेशवा का वेतन भी सब प्रधानों से अधिक §15 हजार होना या हूण§ था ।[3] दरबार में उसका आसन राज सिंहासन के दाहिनी ओर सर्व प्रथम था । दीवानी और लश्करी विभागों पर उसका नियंत्रण रहता था । राज्य के सभी कार्यों का उत्तरदायित्व पेशवा पर ही था । राज्य की मुहर भी उसी के पास रहती थी ।[4] जबतक सरकारी कागजों पर वह मुहर अंकित न कर दे तबतक उसे प्रामाणिकता नहीं प्राप्त होती थी । इतना ही नहीं आवश्यकता पड़ने पर वह सेना को साथ लेकर आक्रमण करने जाता था । जीते हुए भागों पर शासन व्यवस्था करना भी उसका प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता था ।[5] इस प्रकार राजा के बाद पेशवा ही सर्वश्रेष्ठ अधिकारी था ।

शिवाजी ने श्यामराज पंत को सर्वप्रथम पेशवा नियुक्त किया था, परन्तु इसे शीघ्र हटाकर इसके स्थान पर मोरो पन्त पिंगले को नियुक्त किया गया ।[6] यह युद्ध शास्त्र तथा शासन व्यवस्था दोनों में निपुण था । महाराष्ट्र

1- सर यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पृ0 212.

2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 186.

3- एम0 फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज़ टाइम्स, पृ0 328.

4- सर यदुनाथ सरकार, हाउस आफ शिवाजी, पृ0 224.

5- सिन्हा, राइज आफ पेशवाज़, पृ0 254.

6- सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 184.

के अनेक सुदृढ़ किले इसी के निरीक्षण में बने थे। जब औरंगजेब ने धोखा देकर शिवाजी को कैद कर लिया था तो मोरो पन्त ने ही इस संकटकाल में राज्य का भार कुशलता, साहस और दूरदर्शिता से सम्भाला था।[1] राजाराम ने पेशवा पद रिक्त होने पर पूर्व पेशवा मोरेश्वर पन्त के पुत्र नीलकण्ठ मोरेश्वर को, उसकी कर्त्तव्यनिष्ठता से प्रसन्न होकर पेशवा पद पर नियुक्त किया।[2]

पेशवाओं के उदय के कारण -

1707 ई० में गद्दी पर बैठने वाला शाहू अन्तिम मराठा राजा था। उसके समय में ही पेशवा शक्तिशाली बन गये और परवर्ती राजाओं के समय राज्य की सम्पूर्ण वास्तविक शक्तियों का उपभोग करते रहे। पेशवाओं के उत्थान के लिए निश्चय ही कुछ कारण उत्तरदायी थे।[3]

(1) शाहू के समय महाराष्ट्र की राजनीतिक समस्याएं बड़ी गम्भीर थीं, जिन्हें सुलझाना शाहू जैसे सैनिक एवं राजनीतिक अनुभव से शून्य आराम पसन्द और शान्ति-प्रिय व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था। शिवाजी द्वारा स्थापित अष्ट प्रधान मन्त्रि-परिषद भी इस कालतक मृतप्राय हो चुकी थी।[4] ऐसी स्थिति में चितपावन ब्राह्मण परिवार के महत्वाकांक्षी और सुयोग्य सदस्यों को आगे बढ़ने का अवसर मिल गया।[5] इस परिवार में सदस्य ही नवीन पेशवा बने और उन्होंने अपनी कुशलता और तथा नेतृत्व क्षमता से मराठा साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया।

1- ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, संपादक-जी०एस० सर देसाई, पृ० 116.

2- पारसनिस द्वारा सम्पादित, ब्रह्मेन्द्र ब्रह्मचारी चरित, पृ० 214.

3- रानाडे, राइज़ आफ़ दी मराठा पावर, पृ० 220.

4- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब, भाग 2, पृ० 321.

5- डीघे, बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेन्सन, पृ० 86.

§2§ प्रथम तीन पेशवा अत्यन्त योग्य शासन प्रबन्धक, साहसी सेनापति, परिस्थितियों से जूझने वाले और मराठा शक्ति को सर्वोच्च बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ सिद्ध हुए। मराठा छत्रपति के सभी सरदारों को योग्यता, नेतृत्वगुण, संकल्प शक्ति और चतुरता में उन्होंने पीछे छोड़ दिया।[1] इस प्रकार पेशवा मराठा राज्य में सर्व शक्तिशाली बन गये।

§3§ जब महाराष्ट्र में स्वार्थ, संकीर्णता, धन लोलुपता और अवसर-वादिता, का बोलबाला था तब पेशवाओं ने महाराष्ट्र के लोगों के सामने 'हिन्दू पद पादशाही' का महान् उद्येश्य रखा, तथा उसकी प्राप्ति के लिए सेवा, परिश्रम और बलिदान की भावना प्रस्तुत की।[2] उन्होंने जनता के हृदय में एक विश्वास उत्पन्न किया। एक नई जागृति ला दी।

§4§ महाराष्ट्र लगभग दो शताब्दियों के युद्धों से त्रस्त हो चुका था और सम्पूर्ण नागरिक तथा आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त था।[3] लोग राजनीतिक अस्थिरता से दु:खी थे। उस समय शान्ति व्यवस्था और सुशासन की ही आवश्यकता थी। शाहू तथा अष्ट प्रधान लोगों की इस माँग को पूरा नहीं कर सके[4], किन्तु पेशवाओं ने लोगों की इच्छा को पूरा कर दिखाया, अत: उनका उत्कर्ष होता गया और वे महान् बने।[5] अपनी प्रतिभा और लगन के बल पर पेशवाओं ने महाराष्ट्र को संकीर्ण झगड़ों से हटाकर महान् साम्राज्य की दिशा में उन्मुख किया और मराठों को सर्वश्रेष्ठ शक्ति बना दिया।

पेशवाओं के उत्थान के कारणों को चित्रित करते हुए डा० सिन्हा ने

1- राजवाड़े कृत मराठांच्या इतिहासांची साधनें, जिल्द 6, पृ० 384.

2- सिलेक्सन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जि० 21, पृ० 203.

3- देहली क्रोनीकल, जि० 2, पृ० 208.

4- तारीखे आलमगीर सानी, पृ० 125 बी.

5- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ० 94.

लिखा है - "पेशवाओं के उत्थान के मुख्य कारण शाहू की कमजोरियाँ तथा महाराष्ट्र में महान् राजनीतिक असन्तोष थे। इसका उत्थान न तो आकस्मिक और न अभूतपूर्व है। उन्होंने धीरे-धीरे साधारण स्थिति से राज्य के प्रमुख और फिर पूर्ण आधिपत्य के लिए परिश्रम करके इसे प्राप्त किया"।[1] पेशवाओं के इस नए वंश को चलानेवाला बालाजी विश्वनाथ था। उसने इस पद को अपने परिवार में वंशानुगत बनाकर अपने अन्य साथियों तथा बाद में स्वयं राजा की शक्ति को भी नि:शक्त कर दिया। आरम्भ में इनकी स्थिति प्रतिनिधि से नीची थी।[2] सर्वप्रथम इन्हों ने प्रतिनिधि की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर ली थी और एक बार सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करने के पश्चात् राजा को भी अपना स्थान इन्हें समर्पण करना पड़ा।[3] यह सब ये अपनी सुयोग्यता के कारण ही प्राप्त कर सके। इस प्रकार इन्होंने सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने के लिए, प्रथम प्रतिनिधि और अन्य साथियों को पूर्णत: वश में करके फिर राजा को अपने वश में किया।[4] स्वामी से सेवक को सत्ता का यह हस्तान्तरण होना इतना धीरे-धीरे चुप-चाप और सुचारू रूप से हुआ कि ये क्रमश: उठाये गये कदमों को समझ पाना तत्कालीन सारे इतिहासकारों के लिये संभव ही नहीं हुआ।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ (1714-1720 ई०)

बालाजी विश्वनाथ कोंकण के एक गाँव का चितपावन ब्राह्मण था। यद्यपि यह एक साधारण परिवार का व्यक्ति था, तथापि अपनी योग्यता एवं कुशलता से उसने मराठा सेनापति एवं राजा को प्रभावित कर लिया था।[5] मराठा सेनापति धानाजी जाधव के निर्देश पर उसने गुजरात पर आक्रमण किया और

1- एच० एन० सिन्हा, राइज़ आफ़ दी पेशवाज़, पृ० 318.
2- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ० 124.
3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़, भाग 2, पृ० 214.
4- घोषाल, मुगल किंगशिप एण्ड नोबीलिटी, पृ० 368.
5-सर देसाई, मराठा रियासत (म०वि०), पृ० 32.

अहमदाबाद के नागरिकों से धन वसूल किया ।[1] इस प्रकार उसने अपनी वीरता एवं सेनापतित्व का परिचय देकर मराठों के यहाँ जगह प्राप्त करली । मुगल नज़रबन्दी में जीवन बितारहे मराठा राजा शम्भाजी के पुत्र शाहू के दोनों विवाहों में भी उसका ही सहयोग था । 1707 ई0 में वह शाहू की सेवा में आ गया था । धानाजी जादव की मृत्यु के बाद वह शाहू का सबसे विश्वासपात्र सैनिक अधिकारी बन गया ।[2] कठिनाई के समय उसने शाहू को उसका सहयोग देकर उनकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ कर दी ।

छत्रपति शाहू ने 16 नवम्बर, 1713 ई0 को बालाजी विश्वनाथ को पेशवा पद पर नियुक्त किया ।[3] इसके पूर्व बालाजी विश्वनाथ ने तीन मुख्य सेवाएँ की थीं - प्रथम सेना का संगठन, द्वितीय, ताराबाई का दमन, एवं तृतीय खटाउकार का दमन ।[4] बालाजी की सैनिक तथा असैनिक क्षेत्र में योग्यता और शाहू के प्रति पूर्ण निष्ठा का ही यह उचित पुरस्कार था कि उसे पेशवा का पद दिया गया ।

बालाजी विश्वनाथ के कार्य

जिस समय शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को मराठा सेवा में नियुक्त किया उस समय वह धानाजी जाधव के राजस्व अधिकारी तथा सैनिक नेता के रूप में उत्कृष्ट काम कर रहा था । उसे आदमी की पहिचान थी और राज-काज के मामले में विस्तृत अनुभव था । अत: उसने शाहू के सहयोग में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये ।[5] उसके महत्वपूर्ण कार्यों में दामाजी तथा कृष्णराव का दमन चन्द्रसेन की

1- राजवाड़े, खण्ड 2, पृ0 7, भूमिका ।
2- एच0एन0 सिन्हा, राइज़ आफ़ दी पेशवाज़, भूमिका, पृ0 28.
3- द लाइफ आफ़ शाहू महाराज द एल्डर, पृ0 36.
4- किनकैड और पारसनिस, हिस्ट्री आफ़ द मराठा पीपुल, पृ0 188.
5- मराठा रियासत (मध्य खण्ड), भाग 1, पृ0 44.

पराजय, तथा राज्य की व्यवस्था आदि था। अराजकता को समाप्त करने के लिये प्रबल सैनिक संगठन कर वह षड्यन्त्रकारियों को कठोर उण्ड देने में प्रवृत्त हुआ। रामचन्द्र पन्त के साथ दुरीभसन्धि करके ताराबाई का पतन कराया।[1] रामचन्द्र पन्त की समस्त सेवाएँ भूलकर ताराबाई उससे नाराज रहने लगी थी। रामचन्द्र राजसबाई के दल में मिल गया तथा बालाजी तथा कोल्हापुर सरदारों के शक्तिशाली दल की सहायता से ताराबाई तथा शिवाजी द्वितीय को बन्दी बना लिया। इस प्रकार शाहू को अपने कट्टर शत्रु से छुटकारा मिल गया। ताराबाई के सत्ताविहीन होने पर बालाजी ने कृष्ण राव खटावकर को खटाव के समीप एक भीषण युद्ध में पराजित करके मार डाला। इसी वर्ष §1712§ शाहू ने बहीरोपन्त पिंगले को कान्होजी आंग्रे पर चढ़ाई करने को भेजा। आंग्रे नाम मराठा जंगी बेड़े का नौसेनापति था।[2] पर वास्तव में वह पश्चिमी तट का सबसे शक्तिशाली एवं स्वतन्त्र सरदार था। शाहू तथा ताराबाई के संघर्ष में पहले उसने ताराबाई का साथ दिया था। बदले में ताराबाई ने उसे बम्बई से सावंतवाड़ी तक के संकीर्ण कोंकण की जागीर प्रदान कर दी थी। परवर्ती अराजक स्थिति में उसने ताराबाई का साथ छोड़ दिया और शाहू की निस्सहायता से लाभ उठाकर अपना प्रसार किया। उसने पेशवा की जागीर [3] के कुछ अंश भी हड़प लिये। बहीरोपंत की चढ़ाई इसी का परिणाम थी। संघर्ष में पेशवा पराजित हुआ और उसे बन्दी बना लिया गया। कान्होजी अब शाहू की राजधानी पर चढ़ाई करने की सोच रहा था। परेशान होकर शाहू ने परशुराम प्रतिनिधि से विचार विमर्श किया।[4] इस समय शाहू को किसी ऐसे व्यक्ति की

1- राजवाड़े, खण्ड 4, पृ0 205.

2- राजाराम के राज्यकाल के अन्त §1698§ में उसका सरखेल §मराठा बेड़े का का अध्यक्ष§ के पद पर होने का उल्लेख मिलता है। 'मराठ्यांचे अरमार', पृ0 32.

3- लाइफ आफ् शाहू महाराज द एल्डर, पृ0 37.

4- इर्विन, लैटर मुगल्स, पृ0 218.

आवश्यकता थी जो कान्होजी की प्रगति को रोक सके । बालाजी ही ऐसा व्यक्ति था । अपनी योग्यता तथा वर्तमान उपलब्धियों से वह उस उच्च पद के उपयुक्त सिद्ध हो चुका था । परशुराम पंत ने उसका नाम प्रस्तावित किया ।[1] उसकी बहुमूल्य सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप (1713) में शाहू ने बालाजी को पेशवा नियुक्त कर दिया । इस अवसर पर अन्य मन्त्रि पदों का पुनर्गठन करके बालाजी विश्वनाथ के परामर्श से उनपर नियुक्तियाँ की गईं ।[2] पेशवा तथा सेनापति का काम एकही व्यक्ति के जिम्मे था । नियुक्ति के तत्काल बाद बालाजी विश्वनाथ सेना एकत्र करके कान्होजी आंग्रे का दमन करने के लिए लोहगढ़ की ओर बढ़ा ।[3] बालाजी जानता था कि कोंकण के शेर कान्होजी को दबाना आसान नहीं था । अत: वह उससे युद्ध करने के स्थान पर उसे अपने साथ मिलाकर उसकी शक्ति को अपने पक्ष में प्रयोग करने को महत्व देता था । अन्त में बालाजी ने कान्होजी से संधि करली, जो दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक थी ।[4] उसने कान्होजी को शाहू के प्रति विद्रोही रवैया त्यागने तथा उसका आधिपत्य स्वीकार करने को सहमत कर लिया । इससे शाहू की स्थिति में भी स्थायित्व आया । अब उसकी शक्ति एवं प्रतिष्ठा को कोई चुनौती देने वाला नहीं बचा ।[5] इस सन्धि से मराठा राज्य को कान्होजी के पुर्तगालियों, सिद्दियों और अंग्रेजों के साथ के झगड़ों में उलझना पड़ा फिर भी इससे मराठा राज्य में हितों की एकता स्थापित हुई ।[6]

आंग्रे के साथ मामला निपटाने के उपरान्त दामाजी थोरट तथा उदाजी

1- राजवाड़े, खण्ड 4, पृ० 34-35.

2- वही, खण्ड 2, पृ० 17 । सर देसाई, म०रि०, (म०वि०), खण्ड 1, पृ० 47.

3- सर देसाई, मराठा रियासत, (मध्य विभाग), पृ० 201.

4- एस०एन० सिन्हा, राइज आफ द पेशवा, पृ० 308.

5- एस०आर० शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ० 122.

6- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ० 584.

चाह्वाण के विरूद्ध कारवाइयाँ शुरू की गईं । दामाजी (1718 ई0) में पकड़ लिया गया तथा अदाजी को भागकर निजाम के यहाँ शरण लेनी पड़ी[1] (1737) । यद्यपि छोटे-मोटे झगड़े बने रहे किन्तु बालाजी ने अपनी सूझ-बूझ तथा साधन सम्पन्नता से युद्ध या कूटनीति के द्वारा सभी घरेलू संकटों पर विजय प्राप्त की ।

बालाजी विश्वनाथ और मुगल दरबार

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हो गया था । साम्राज्य के अन्य सूबों की तरह दक्षिण के छ: सूबों की स्थिति भी अराजक हो गई थी । इन सूबों में चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार शाहू को प्राप्त था पर मराठों के आपसी विवाद के कारण इसकी पुष्टि नहीं हो सकी थी । इस समय मुगल दरबार में इतनी दुर्व्यवस्था थी कि दक्षिण का सूबेदार किसको बनाया जाएगा । यह भी निश्चित नहीं था ।[2] 1713 ई0 में निजाम उल्मुल्क ने दक्षिण के सूबेराद का पद ग्रहण किया । निजाम वहाँ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना चाहता था । अत: अपने शासन के प्रारम्भ में मराठा राज्य के बढ़ते हुए खतरे को रोकने का प्रयास किया ।[3] उसने सबसे पहले चौथ का भुगतान बन्द कर दिया । तदुपरान्त उसने असन्तुष्ट मराठा सरदारों को मिलाने का काम शुरू किया ।[4] इसके उपरान्त उसने पूना तथा उसके पड़ोस में में मराठा सत्ता पुन: स्थापित करने के बालाजी के प्रयत्न को विफल करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी नीति पूरी होने के पहले उसे मुगल दरबारियों द्वारा वास बुला लिया गया । दक्षिण में पुन: उसके स्थान पर हुसेन सैयद अली को नियुक्त किया गया, जिससे निजाम की योजना में व्यवधान पड़ गया ।[5] और

1- डॉ0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ059.
2- स्काट, डकन खण्ड 4, पृ0 57.
3- इर्विन, लैटर मुगल्स, खण्ड 1, पृ0 268-272.
4- इडियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, खण्ड 7, पृ0 450.
5- स्काट, डकन खण्ड 4, पृ0 152.

मराठों को सम्हलने का अवसर मिल गया ।

इस समय मराठा मण्डल में अदम्य शक्ति का संचार हो रहा था । बालाजी विश्वनाथ ने इस शक्ति को राज्य विस्तार के काम में लगाकर दिल्ली दरबार तक मराठों को भेजा । वही पहला व्यक्ति था जिसने मुगल बादशाह की राजधानी में बैठकर उनके दाँव-पेचों में भी हस्तक्षेप किया । आरंभ में हुसैन अली ने मराठों के दमन का संकल्प किया, किन्तु इस उद्यम में मुगलों को सर्वत्र निराशा ही मिली । ऐसा जान पड़ा कि साम्राज्य के सुयोग्यतम व्यक्ति दक्षिणात्य में रुके रहने के बावजूद उनकी सत्ता वहाँ से निर्मूल हो जायेगी । सम्राटों की मानसिक समझ और दरबारी आन्तरिक षड्यंत्रों की स्थिति यह थी कि हुसैन की असफलता की खबरें पाकर सम्राट को खुशी ही हुई । उसने मराठों को अपने ही सूबेदार पर अनवरत आक्रमण करते रहने को लिखा ।[1] इर्ष्यालु सम्राट का प्रोत्साहन पाकर मराठों ने अपनी गतिविधियाँ और भी तेज कर दी । इस समय खण्डेराव दभाडे[2] उनका नेतृत्व कर रहा था । जब हुसैन अली को सम्राट फर्रुखसियर की दुरभिसन्धियों का पता चला तो उसने अपनी नीति में आमूल परिवर्तन कर दिया । उसने मराठों के साथ संश्रय सन्धि के लिये शंकराजी मल्हारे[3] के माध्यम से बातचीत शुरू की । पर्याप्त विचार विमर्श के उपरान्त फरवरी 1718 ई० में हुई संधि के अनुसार हुसैन अली ने दक्षिणात्य के छः सूबों पर मराठों को चौथ तथा सरदेशमुखी देना स्वीकार कर लिया । खानदेश, गोंडवाना, बरार, कर्नाटक में हैदराबाद मराठों द्वारा विजित क्षेत्रों को स्वराज्य में मिला लेने के हेतु शाहू को सौंप दिया गया । बदले में मराठों ने छः सूबों में शान्ति और व्यवस्था कायम रखने का वचन दिया और सालाना कर देने का भी वचन दिया।

1- इलियट और डाउसन, खण्ड 7, पृ0 464.

2- राजवाडे, खण्ड 2, पृ0 28.

3- वही, पृ0 29-30; लाइफ आफ शाहू महराज द एल्ड, पृ0 49.

इसके अतिरिक्त सम्राट् की सेवा के लिए 15000 सैनिकों की टुकड़ी प्रस्तुत करने की बात मान ली ।

यह एक महत्वपूर्ण सन्धि थी । बालाजी ने इसकी[1] शर्तें तैयार की और इससे उसके कूटनीति कौशल को प्रमाण मिलता है । इससे शाहू की स्थिति तो मजबूत हुई ही अपितु केवल मराठों की ही नहीं वरन् मुगलों की दृष्टि में भी उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ी थी । मराठा राज्य ने मुगल सूबेदार को शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने हेतु तथा सैनिकों की सहायता के लिए मराठों पर निर्भर बनाकर सम्प्रभु अधिकार प्राप्त किया था किन्तु हुसैन अली के लिए यह सन्धि निश्चितरूप से लाभकारी थी । उसे कुछ काल के लिए रहत मिल गई किन्तु फर्रूखसियर ने सन्धि की सम्पुष्टि करने से इनकार कर दिया, उसका कत्तई यह इरादा नहीं था कि सैयद हुसैन अली मराठों के साथ सन्धि करें और उन्हें अपना हितैषी बना लें ।[2] स्वयं हुसैन अली ने भी सन्धि की शर्तें आवश्यकता वश ही स्वीकार की थी । दूसरी ओर दिल्ली में सम्राट की छलपूर्ण दुरभिसन्धियों के कारण उसके भाई अब्दुल्ला खाँ की स्थिति संकटपूर्ण हो गई थी । निजाम-उल-मुल्क भी चालाकी से सम्राट के गुट में मिल गया था । 1718 ई0 के अगस्त में सम्राट ने अब्दुल्ला खाँ को गिरफ्तार करना चाहा । इस उद्यम में वह सफल तो नहीं हो सका फिर भी उसे फंसाने के लिए दुरभिसन्धियों के जाल बुनने में लगा रहा । ऐसे में अब्दुल्ला ने अपने भाई को जितना जल्दी हो सके दिल्ली जाने को लिखा (सितम्बर 1718 ई0)[3] भाई का पत्र पाते ही सैयद हुसैन अली ने दिल्ली के लिए कूच करने की तैयारी शुरू कर दी । अपनी सेना के अतिरिक्त खंडेराव दभोडे के अधीन 15000 मराठा सैनिकों की टुकड़ी भी उसके साथ थी । इसके अतिरिक्त

1- द्रष्टव्य, इलियट और डाउसन, खण्ड 7, पृ0 467; स्काट, डक्कन, खण्ड 4, पृ0 152; राजवाड़े, खण्ड 8, पृ0 102-103 और खण्ड 2, पृ0 30-31.

2- राजवाड़े, वही, भाग 8, पृ0 305.

3- इर्विन, लेटर मुगल्स, खण्ड 1, पृ0 339-359.

बालाजी विश्वनाथ तथा संताजी भोंसले भी उसके साथ दिल्ली गये । मराठा नेताओं को उनकी सेवा के लिए पुरस्कृत करने का वचन दिया गया था । सन्धि की सम्पुष्टि[1] भी इसमें सम्मिलित थी । मराठा सहायक सैनिकों तथा सन्धि के कारण दक्षिणात्य की ओर से आश्वस्त हुसेन अली ने सीधे दिल्ली के लिए प्रस्थान किया तथा अकस्मात् वहाँ पहुँचकर सबको चकित कर दिया । फर्रुखसियर की उहापोह में पड़े रहने की प्रवृत्ति तथा दुर्बलता के कारण उसकी सभी योजनाएँ एक-एक कर विफल हो गईं और दुर्भाग्यपूर्ण ढ़ग से अपमानित करने वाला घोंटकर ने उसकी हत्या करदी । इस घटना से दरबारी षडयंत्रों और सम्राट की दयनीय स्थिति का आभास मिलता है । सैयद-बंधुओं की शक्ति इस समय परमोत्कर्ष पर थी । इसके बाद कुछ माह के अंतर पर दो बादशाह गद्दी पर बैठे और मृत्यु को प्राप्त होकर गद्दी खाली कर गए ।

नये सम्राट से बालाजी को तीन फ़रमान मिले - §1§ तंजौर, त्रिचनापल्ली तथा मैसूर सहायक राज्यों सहित छ: दक्षिणात्य सूबों के लिए चौथ का अधिकार, §2§ दक्षिणात्य पर सरदेशमुखी, और §3§ शिवाजी की मृत्यु के काल के 'स्वराज्य' पर शाहू के आधिपत्य को मान्यता ।[2] इसी के साथ शाहू की माता एवं परिवार को भी मुगल आधिपत्य से मुक्त कर दिया गया । बालाजी के जीवन के शेष दिन फरमान की व्यवस्थाओं को कार्यान्वित करने में व्यतीत हुए । उसने पूना से मुगल सत्ता के चिन्ह मिटा दिये । थोरट भ्राताओं पर भारी आघात किया । अप्रैल 1720 में उसकी मृत्यु हो गई ।[3] उसकी मृत्यु के समय तक महाराष्ट्र संपन्न और शक्तिशाली होने लगा था । बालाजी विश्वनाथ अपने लक्ष्य का पक्का व्यक्ति था । मराठा राज्य की उसने सर्वाधिक संकटपूर्ण

1- इर्विन, लेटर मुगल्स, खण्ड 1, पृ0 359-360·

2- वही, खण्ड 1, पृ0 407; §लाइफ आफ् शाहू महराज द एल्डर, पृ0 55·

3- सावरकर, हिन्दू पद पादशाही, पृ0 64·

क्षण में अद्वितीय सेवा की, उसी के प्रयास से शाहू इतनी आसानी से मराठा राज्य का वैध शासक बन सका। अन्यथा गृह-युद्ध चलता रहता। उसकी वित्त व्यवस्था को पुनर्गठित किया और भावी मराठा महासंघ का सूत्रपात किया। उसने साम्राज्यी राज्य व्यवस्था के सभी उपकरण तथा सामग्रियाँ एकत्र कर दिये एवं मराठा राज्य को राष्ट्रीय गरिमा तथा क्षेत्र प्रसार के राजमार्ग पर अग्रसर किया।

पेशवा बाजीराव प्रथम (1720-1740 ई०)

बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका बीर पुत्र बाजीराव मराठा मण्डल का पेशवा नियुक्त हुआ।[1] वह मराठों का सर्वाधिक साहसी पेशवा था। उसने पिता के साथ दरबार की रौनक तथा शान देखी थी और उसे भूला नहीं था। पिता के नीति को वह भली-भाँति समझता था।[2] मराठा मण्डल में इस समय दो पक्ष थे। एक पक्ष स्वराज्य संरक्षण का पक्षपाती था, जिसका कहना था कि हमें शिवाजी द्वारा स्थापित दक्षिण साम्राज्य की रक्षा करनी चाहिए। यदि पेशवा दिल्ली की ओर जाने के स्थान पर दक्षिण महाराष्ट्र को संगठित करते तो सम्भव था कि वह फिर से विजयनगर जैसे हिन्दू राष्ट्र को स्थापित कर लेते और पानीपत की लड़ाई में नष्ट होकर निर्बल न होते।

दूसरा पक्ष पेशवाओं का था। इनके सम्मति में मराठा मण्डल को अन्तः कलहाग्नि से बचाने का एक मात्र उपाय यही था कि मराठी सेनाओं के रूख को बाहरी इलाकों की ओर मोड़ा जाय। बाजीराव प्रथम जितना युद्ध क्षेत्र में पराक्रमी था, दरबार में उतना ही कुशल राजनयिक भी था।[3] उसने अपने पिता के काम को जारी रखा और उसे स्पष्ट दिशा प्रदान की। उसके कार्यों का परिणाम यह निकला कि मराठा इतिहास में शिवाजी के बाद उसका

1- राजवाड़े, खण्ड 2, पृ0 39.

2- भीमसेन, वीर मराठे, पृ0 126.

3- मथुरा लाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 92.

स्थान महत्वपूर्ण हो गया ।[1] उसबारे में डा० डिघ लिखते हैं कि बाजीराव गृह तथा विदेश-नीति की धाराओं तथा प्रति-धाराओं से पूर्णत: परिचित था और पेशवा पद पर नियुक्ति के समय दायित्व निर्वाह के लिए किसी भी व्यक्त से अधिक सक्षम था ।[2] अनुभवशीलता के अतिरिक्त शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं की दृष्टि से भी बाजीराव इस पद के पूर्ण योग्य था ।[3] डफ ने उसकी क्षमताओं का मुल्यांकन करते हुए लिखा है कि उसके पास योजनाशील मष्तिष्क और कर्मठ हाथ थे ।

बाजीराव के कार्य और नीतियां -

बाजीराव के पेशवा बनने के समय मराठों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी । यद्यपि बालाजी विश्वनाथ ने शाहू की स्थिति को महाराष्ट्र में दृढ़ कर दिया था तथापि समस्याओं का समाधान स्थायीरूप से नहीं हुआ था । बाजीराव ने बड़े धैर्य, साहस और लगन से उन समस्याओं को सुलझाकर पेशवा पद की श्रेष्ठता प्रतिपादित की । उसने शम्भाजी द्वितीय को पराजित किया, निजाम को निरन्तर हराया तथा अपने सैनिक एवं कूटनीतिक प्रयत्नों से मराठा शक्ति को पहलीबार उत्तर भारत के भागों में फैला दिया । मालवा, गुजरात, बुन्देलखण्ड आदि पर मराठों की सत्ता स्थापित हुई और दिल्ली तक मराठे छापे मारने लगे । इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने बीस वर्ष के अल्प काल में ही पेशवा बाजीराव ने मराठों को भारत की श्रेष्ठतम शक्ति बना दिया और मराठा जाति तथा पेशवा पद के यश में चार-चांद लगा दिया । बाजीराव को निजाम की दुरभिसन्धियों का अनुमान था । उसने नये मुगल सम्राट से 1718-19 ई० की संधि

1- आर०वी० नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० 145.

2- डा० बी०जी०डिघे, पेशवा बाजीराव । एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ० 4.

3- सी०एस० सरदेसाई, न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़, भाग 2, पृ० 66-67.

की पुन: सम्पुष्टि करा ली थी । दूसरी ओर निजाम मराठा इलाकों पर आक्रमण करने के लिए तत्पर था, किन्तु बाजीराव की सतर्कता के कारण आक्रामकों को भीषण क्षति उठाकर पीछे हटना पड़ा ।[1] इस प्रकार निजाम तथा तरूण पेशवा में आधिपत्य के लिए संघर्ष शुरू हो चुका था । जनवरी 1729 में उसका बारामती में स्वयं निजाम से सामना हुआ । तदुपरान्त खानदेश, सूरत, राजपीपला से तुफानी वेग से बढ़ता हुआ वह बरसात शुरू होने तक गोदावरी तट पर पहुंच गया ।[2] निजाम ने दखिन की ओर प्रस्थान किया और उसका पीछा करता हुआ । बाजीराव भी गया, किन्तु निजाम को इसी बीच सम्राट में दिल्ली बुला लिया गया । फलस्वरूप बाजीराव को अपनी योजना पूरी करने के लिए खुला अवसर मिल गया । उसने पहलीबार मुगल साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर मराठा साम्राज्य स्थापित करने की अग्रगामी नीति प्रतिपादित की ।[3]

बाजीराव के शासन काल में निरन्तर लड़ाइयों की धूम मची रही । दक्षिण में वसई की ओर पुर्तगीज़ और योरोपियन लोग मराठा राज्य के मुख्य शत्रु थे । बाजीराव ने इनका दमन करने के लिये चिमणाजी आपा को भेजा । उसने अपने प्रभाव से पुर्तगीज़ों पर अधिकार करने का प्रयास किया । अनेक आक्रमणों के परिणाम स्वरूप 1739 ई0 में वसई का किला स्वाधीन किया गया । चिमणा जी आपा दक्षिण के विजयों में व्यस्त रहने के कारण उत्तर भारत की विजय यात्राओं में भाग न ले सका ।[4]

युद्ध तथा पराजय के फलस्वरूप पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा धूल में मिल गई । इस समय अंग्रेजों का वहाँ कोई महत्व नहीं था,

---

1- सर देसाई, मराठा रियासत, खण्ड 1, पृ0 161.

2- राजवाड़े, खण्ड 2, पृ0 44.

3- नादकणी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 146.

4- एच0एन0 सिनहा, द्वारा अनुदित, राइज आफ् दि पेशवाज़, पृ0 169-72.

वे शक्तिशाली मराठा राज्य के साथ सद्भाव तथा अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना चाहते थे। मराठों के साथ उन्होंने सन्धि की जिसके अनुसार उन्हें मराठा राज्य में खुले रूप से व्यापार करने की सुविधा मिल गई।[1] इस प्रकार मराठों की शक्ति निरन्तर बढ़ती गई और पेशवा के सर्वोपरिता महत्वपूर्ण हो गई। छ: वर्षों के अन्तर्गत् सिद्धियों को पराजित किया गया था, आंग्रे कुल की शक्ति समाप्त कर दी गई थी तथा पश्चिमी तट पर रहने वाले पुर्तगालियों को सर्वथा दबा दिया गया था।[2]

बाजीराव का ध्यान आकृष्ट करनेवाली अन्तिम घटना नादिरशाह का आक्रमण थी। फारस का सम्राट् तुफानी वेग से काबुल तथा पंजाब को रौंदता हुआ फरवरी 1739 ई0 में दिल्ली में आ धमका था। नादिरशाह के कत्लेआम से दिल्ली पूर्णतया बरबाद हो गई थी। इस बरबादी का समाचार पाकर बाजीराव ने उससे दूर रहने में ही अपनी बुद्धिमत्ता समझी तथा खानदेश के आगें वह नहीं गया। यद्यपि यह खबर फैल चुकी थी कि नादिरशाह मराठा साम्राज्य पर आक्रमण करेगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ।[3]

20 वर्षों तक पेशवा रहने के बाद बाजीराव का 1740 ई0 में देहान्त हो गया। इस समय भी मराठा राज्य अनेक शत्रुओं से घिरा हुआ था किन्तु बाजीराव ने अपने जीवन काल में सामने आई प्राय: सभी समस्याओं पर विजय प्राप्त की थी।[4] इसने जहाँ एक ओर अपने घरेलू शत्रुओं का दमन किया वहाँ विदेशियों को भी पराजित करने का भी साहस दिखाया।

1- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा सरदार का उदय और अस्त, पृ0 161·

2- एम0जी0 रानाडे, राइज़ आफ़ द मराठा पावर, पृ0 189·

3- एच0एन0 सिनहा, राइज़ आफ़ द पेशवाज़, पृ0 105·

4- सर देसाई, मराठी रियासत, भाग 2, पृ0 68·

गुजरात, मालवा, दोआब तथा बुन्देल खण्ड पर प्रभुत्व

गुजरात पर मराठों के आक्रमण 1723 ई0 में ही शुरू हो गये थे और 1727 तक मराठों ने वहाँ काफी प्रभाव जमा लिया था। मुगलों ने उन्हें चौथ और सरदेशमुखी देना मंजूर कर लिया था।[1] 1735 ई0 तक लगभग सम्पूर्ण गुजरात मराठों की अधीनता में आ गया था।[2]

1722 में बाजीराव ने मालवा पर अपना पहला हमला किया। 1724 में पुन: हमला किया गया और वहाँ से चौथ माँगी गई। मालवा के मामलों में बाजीराव का हस्तक्षेप जारी रहा और 1728 से मालवा पर मराठों के हमले पर हमले होने लगे।[3] अन्त में 1738 की दुरई-सराय की सन्धि के अन्तर्गत मुगल सम्राट के वजीर निजाम ने मराठों को मालवा सौंप दिया।

1728 ई0 में बुन्देलखण्ड के शासक छत्रसाल ने मुहम्मदशाह बंगश के विरुद्ध पेशवा बाजीराव से सहायता माँगी।[4] 1729 में बाजीराव ने स्वयं पहुँचकर छत्रशाल की मदद की। बदले में छत्रशाल ने बुन्देलखण्ड का लगभग एक तिहाई भाग पेशवा बाजीराव को दे दिया।[5] इस प्रकार झासी, कालपी आदि प्रदेश जो दिल्ली तथा आगरा के निकट थे, मराठों को प्राप्त हो गये।

अब मराठों ने दोआब, राजस्थान तथा दिल्ली के निकट मुगल सीमाओं पर हमले शुरू कर दिये। अन्त में 1736 ई0 में मुगल सम्राट ने मराठों को चम्बल नदी के दक्षिणी भू-क्षेत्र के लिए लगभग 13 लाख रूपये, राजस्थान के लिए 10 लाख, 60 हजार रूपये और दक्षिण की आय का पाँच प्रतिशत भाग देना स्वीकार कर लिया।[6]

1- पेशवा दफ्तर, भाग 30, पृ0 136.

2- डा0 वी0जी0 डिघे, पेशवा बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ0 12.

3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज, भाग 2, पृ0 89.

4- नारायण केशव वेहरे, पहिले बाजीराव पेशवे, पृ0 28.

5- इतिहास संग्रह, भाग 6, पृ0 132.

6- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 127.

पेशवा बाजीराव इससे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ । उसने मुगलों के अवध और बंगाल जैसे सूबों तथा बनारस, गया और इलाहाबाद ऐसे नगरों की मांग की । यह मांग ठुकरा दिये जाने पर पेशवा बाजीराव ने 1737 ई0 में अवध पर हमला कर दिया ।[1] 1737 ई0 में ही अवध के सूबेदार सादत अली खां ने कुछ मराठा सरदारों को परास्त कर दिया और साथ ही दिल्ली मुगल सम्राट् के पास झूठी खबर भेज दी कि बाजीराव को चम्बल नदी के दक्षिण में भगा दिया है ।[2] इससे क्रुद्ध बाजीराव ने तेजी से दिल्ली की ओर धावा मारा । मार्ग में नर्मदा से चम्बल तक के प्रदेशों से कर वसूल करते हुए और मदावर तथा अटेरे पर अधिकार जमाते हुए वह मार्च में दिल्ली के निकट पहुंच गया ।[3] मुगल सम्राट द्वारा भेजी गई सेना को उसने बुरी तरह पराजित किया ।[4] इसी समय सादत अली खां आदि मुगल सरदार अपनी सेना लेकर बाजीराव को घेरने के लिए दिल्ली की ओर बढ़े ।[5] बाजीराव तेजी से लौटा और दो बड़ी मुगल सेनाओं के बीच से रास्ता चीरते हुए राजस्थान के रेगिस्तान में जा घुसा । बाजीराव की शक्ति से आतंकित मुगल सम्राट् ने मालवा के अतिरिक्त 13 लाख रुपये भी मराठों को देना स्वीकार किया ।[6]

कोंकण में स्थिति दृढ़ करना –

कोंकण प्रदेश में सीदी, पुर्तगाली, अंग्रेज आदि नाविक शक्तियां प्रभावशाली थीं । 1726 ई0 में सीदियों में कान्होजी आंग्रे से युद्ध छेड़ दिया ।[7] शाहू

1– राजवाड़े, मराठा इतिहास साधने, खण्ड 3, पृ0 22·
2– ग्राण्ट डफ, हिस्ट्री आफ द मराठाज़, खण्ड 1, पृ0 353·
4– सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, खण्ड 5, पृ0 203·
3– किनकैड एण्ड पारसनिस, हिस्ट्री आफ द मराठा पीपुल, पृ0 188·
5– राजवाड़े, खण्ड 15, पृ0 290·
6– सर देसाई, मराठी रियासत, (मध्य विभाग), भाग , पृ0 28·
7– इर्विन, लेटर मुगल्स, पृ0 64·

ने कान्होजी की सहायता के लिये मराठा सेना भेजी जिसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली । 1729 ई0 में कान्होजी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र मानाजी और शम्भाजी आंग्रे में उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ जाने से मराठों की सफलता और भी संदिग्ध हो गई ।[1] अप्रैल 1733 ई0 में स्वयं बाजीराव कोंकण गया । उसने सीदियों से सन्धि की जिससे यद्यपि मराठों को कुछ प्रदेश तो मिल गये लेकिन सीदियों की शक्ति यथापूर्व बनी रही ।[2] पुन: दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ गया । अन्त में 1736 में सदियों से एक सन्धि हो गई । सीदियों ने कोंकण पर पेशवा के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया ।[3] उसी वर्ष बाजीराव ने मानाजी और शम्भाजी आंग्रे के बीच उनके वंशानुगत जहाजों, सम्पत्ति, दुर्गों आदि का बँटवारा करा के दोनों का झगड़ा समाप्त कर दिया ।[4] दोनों ने राजा शाहू की सेवाएँ स्वीकार कर लीं । पेशवा और शाहू की स्थिति कोंकण में दृढ़ हो गई ।[5] पुर्तगालियों से भी संघर्ष छिड़ा और 1739 में मराठों ने बेसीन पर अधिकार कर लिया । तत्पश्चात् पुर्तगालियों ने मराठों से सन्धि कर लेना ही उपयुक्त समझा ।[6] इस प्रकार एक लम्बे संघर्ष के बाद 1739 तक पेशवा बाजीराव ने कोंकण प्रदेश में अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली ।

बाजीराव के अन्तिम दिन और मृत्यु -

बाजीराव ने 20 वर्षों तक अनवरत संघर्ष करके दक्षिण में मराठा सर्वोच्चता तथा उत्तर में मराठा प्रसार के लक्ष्यों को पूर्ण किया, किन्तु इस अजेय एवं शक्तिशाली

1- लाइफ् आफ् शाहू महाराज द एल्डर, पृ0 48.

2- पारसनिस, लाइफ् आफ् ब्रहमेन्द्र स्वामी, पृ0 38.

3- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 292.

4- एच0एन0 सिन्हा, राइज् आफ् द पेशवाज्, पृ0 176.

5- एम0जी0 रानाडे, राइज् आफ् द मराठा पावर, पृ0 143.

6- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् द मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 210.

पेशवा का अन्त दु:खद हुआ । इसका प्रमुख कारण था उसका एक परम सुन्दरी तथा गुणवान मस्तानी नामक स्त्री से प्रेम सम्बन्ध होना । इस लड़की को पेशवा ने अपने बुन्देलखण्ड अभियान के दौरान मई 1729 में छत्रसाल से भेंट स्वरूप प्राप्त किया था ।[1] बाजीराव के एक पत्र से ज्ञात होता है कि मस्तानी के वियोग से वह अत्यन्त संतप्त था ।[2] मस्तानी को पेशवा के भाई चिमनाजी आपा तथा पुत्र बालाजी बाजीराव ने बन्दी बनालिया था ।[3] इससे बाजीराव अत्यन्त दु:खी था । उसने इसी दु:ख को मिटाने के लिए स्वयं को नासिरजंग के विरूद्ध युद्ध में झोंक दिया । बाजीराव दु:ख में भी विजयी हुआ किन्तु यह उसका अन्तिम युद्ध था ।[4] 28 अप्रैल, 1740 ई0 को उसकी मृत्यु हो गई । उसके स्मारक के रूप में यहाँ एक छोटा सा चबूतरा बनवाया गया ।[5] पेशवा की मृत्यु का समाचार सुनते ही मस्तानी भी आघात से तुरन्त मर गई या उसने आत्म-हत्या कर ली ।[6] उसको पूना से पूर्व लगभग 20 मील की दूरी पर पबल नामक गाँव के पास दफनाया गया । यहाँ पर उसकी एक साधारणसी क़ब्र है ।

बाजीराव अपने समय का महान सेनापति एवं कुशल कूटनीतिज्ञ व्यक्ति था । मराठा इतिहास में अपनी विजयों के कारण शिवाजी के बाद उसी का महत्व है । वह अपने लक्ष्य के प्रति अटूट निष्ठा, उच्च आदर्श, असीम विश्वास, साहस तथा राजनीतिक परिस्थितियों का गंभीर ज्ञान रखता था । डफ ने लिखा है कि यदि उसमें कुछ जातिगत बुराइयाँ थी; तब भी उन बुराइयों में धोखेबाजी

1- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 82·

2- राजवाड़े, वही, भाग 8, पृ0 90-91·

3- एच0एन0 सिंनहा, राइज़ आफ् द पेशवाज़्, पृ0 179·

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज़्, भाग 2, पृ0 57·

5- डा0 वी0जी0 डिघे, पेशवा बाजीराव फस्ट एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ0 137·

6- कीने, द फाल आफ् द मुगल इम्पायर, पृ0 239·

को स्थान नहीं दिया जा सकता । उसमें नीचता के दर्शन शायद ही हुए हों ।[1] उसने अपनी दीर्घ दृष्टि और अदभुत वीरता का परिचय देकर बड़े-बड़े अनुभवी और वयोवृद्ध मराठा सरदारों को चकित कर दिया ।[2]

बाजीराव अपने समय का महान् कूटनीतिज्ञ, संगठनकर्ता और सैनिक तथा सेनापति था । उसने मुगलों के अनुभवी योद्धा सेनापतियों को पराजित किया और एक सौ से भी अधिक युद्धों में भाग लेने वाले महान सेनापति निजाम को दो बार बिना युद्ध किये ही समर्पण कर देने को विवश किया ।[3] उसके 20 वर्ष के शासन में मराठा राज्य का रूपान्तर हो गया । बाजीराव को मराठा राज्य का दूसरा निर्माता कहा जा सकता है ।[4]

मराठा संघ के संगठन के सम्बन्ध में बाजीराव ने दो कार्य किये - प्रथम, बालाजी द्वारा संस्थापित मराठा-संघ को दुर्बल एवं महत्वहीन बनाना, द्वितीय मराठा-संघ का पुर्नगठन करना ।[5] बाजीराव द्वारा नवगठित मराठा-संघ के सहयोग से अर्जित विजयों और शानदार सफलताओं का परिणाम यह हुआ कि बाजीराव और अधिक शक्तिशाली बन गया । सम्पूर्ण मराठा शक्ति क्रमशः उसी के हाथों केन्द्रित हो गई ।[6] उसने मराठों के सामने उत्तर भारत की विजय का महान लक्ष्य रखा । उसके द्वारा अर्जित विजयों ने मराठा जाति को स्थायी प्रतिष्ठा प्रदान की । बाजीराव की प्रसारात्मक गतिविधियों के कारण ही दिल्ली दरबार के स्थान पर शाहू का दरबार राजनीतिक आकर्षण का केन्द्र बन

1- ग्राण्ट डफ, हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, पृ0 367.

2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 189.

3- भीमसेन विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ0 96.

4-बालाजी हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 136.

5- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 83.

6- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 2, पृ0 280.

गया ।[1] वह आजीवन युद्ध रत रहा और डेरे में रहते हुए ही उसकी मृत्यु हुई । मराठे आज भी हिन्दू शक्ति के अवतार के रूप में उसका स्मरण करते हैं ।[2]

पेशवा बालाजी बाजीराव (1740-1761 ई0)

बालाजी बाजीराव, इतिहास में नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं । उसका जन्म 12 दिसम्बर 1721 ई0 को हुआ था । यद्यपि उसने अपने पिता बाजीराव के राजनीतिक जीवन को निकटता से देखा था, किन्तु उसके व्यक्तित्व पर पिता से अधिक उस के चाचा चिमनाजी आपा का प्रभाव था ।[3] बाजीराव की मस्तानी में अत्यधिक अनुरक्ति के कारण बालाजी बाजीराव अपने पिता के साथ सैनिक अभियानों में जाना पसन्द नहीं करता था । वह अधिकतर अपने स्नेही चाचा चिमनाजी के साथ सतारा में रह कर राज्य के विभिन्न राजनयिक एवं प्रशासनिक मामलों में रूचि लेता था ।[4] इस कारण वह छोटी उम्र में ही राज्य के राजनयिक मामलों में दक्ष हो गया, किन्तु युद्ध संचालन के विषय में उसे विशेष अनुभव नहीं था ।[5]

बाजीराव की मृत्यु के बाद बालाजी बाजीराव को 19 वर्ष की अवस्था में 25 जून 1740 ई0 को पेशवा नियुक्त किया गया ।[6] शाहू ने नये पेशवा के मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिए राज्य के सभी प्रमुख सामन्तों तथा अधिकारियों का सम्मेलन बुलाया और उन्हें सौगन्ध दिलाकर नए पेशवा को पूर्ववत् समर्थन तथा

1- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 685.

2- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 84.

3- एम0जी0 रानाडे, राइज़ आफ़ द मराठा पावर, पृ0 227.

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ द मराठा, भाग 2, पृ0 218.

5- किनकैड एण्ड पारसनिस, ए हिस्ट्री आफ़ द मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 214.

6- राजवाड़े, भाग 2, पृ0 164.

सहयोग देने का वचन ले लिया ।[1] शाहू ने एकबार फिर प्रमाणित किया कि उसे चरित्रवान योग्य और निष्ठावान लोगों की पहचान है । पेशवा बालाजी बाजीराव यद्यपि अपने पिता के समान महान् सेनापति नहीं था लेकिन व्यवहार कुशल बहुत था, जिसने अपने पिता की तुलना में शत्रु कम और मित्र अधिक बनाए ।[2] बालाजी बाजीराव ने भी अपने पिता के समान ही साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाई और मराठों की शक्ति को चरमसीमा तक पहुँचा दिया ।[3] उसके समय में मुगल सम्राट् मराठों के हाथ की कठपुतली बन गये । मराठे लगभग सम्पूर्ण भारत में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने लगे तथा उत्तर से दक्षिण तक उनके प्रभाव का विस्तार हो गया ।[4] लेकिन राजपूतों और जाटों को असन्तुष्ट करके बालाजी ने भारी भूल की, साथ ही उसने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि विदेशी मुसलमान बाहर से सहायता माँगने के लिए बाध्य हो गये और जब अहमदशाह अब्दाली से पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ तब मराठों का सूर्य एकबारगी ही अस्त सा हो गया ।[5] मराठों की इस घोर पराजय के बाद पेशवा की शक्ति कम हो गई । मराठा-संघ नष्ट होने लगा और पेशवा माधव राय नारायन को अल्प-कालीन गौरवपूर्ण युग के बाद मराठा शक्ति का तेजी से पतन हो गया ।[6] उल्लेखनीय है कि शाहू की मृत्यु के बाद 14 जनवरी 1750 ई० को रामराजा का छत्रपति के रूप में अभिषेक हुआ, लेकिन पेशवा ने संगोला समझौता नामक दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने को उसे बाध्य कर दिया ।[7] जिसके अनुसार राज्य के सभी प्रमुख विभाग

1- राइज़ आफ़ द मराठा पावर, पृ0 230.

2- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 169.

3- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 268.

4- खाफीखाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, खण्ड 2, पृ0 812.

5- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 562.

6- वी0जी0 डिघे, पेशवा बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंसन, पृ0 68.

7- बालाजी हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 163.

छत्रपति ने उसके हाथ में सौंप दिये और इस प्रकार पेशवा मराठा राज्य का सर्वेसर्वा बन गया ।[1]

बालाजी बाजीराव के कार्य और नीतियाँ -

बालाजी बाजीराव ने जब पेशवापद ग्रहण किया, उस समय मराठा कोष लगभग रिक्त ही था । बाजीराव के खर्चीले युद्धों के कारण उसपर $14\frac{1}{2}$ लाख रूपयों का ऋण हो गया था जिसे चुकाना था ।[2] मराठा राज्य के विस्तर के किसी कार्यक्रम को हाथों में लेने से पूर्व नाना साहब के लिए आवश्यक था कि वह वित्तीय व्यवस्था का उचित पुनर्गठन कर ऋण-ग्रस्तता की स्थिति से उबरें ।[3] इसके बाद राज्य की आय को बढ़ाए ।

बालाजी ने कर्नाटक से धन वसूल करके और पुर्तगालियों से प्राप्त भूमि को राजा शाहू से अपनी व्यक्तिगत जागीर के रूप में माँग करके सबसे पहले अपने पारिवारिक कर्जों को चुकाया ।[4] इससे उसके सम्मान में वृद्धि हुई । आय के नये साधनों को प्राप्त करने के पश्चात् वह राजस्व वसूली के कार्य को सुव्यवस्थित करने में संलग्न हो गया ।[5] वित्तीय कार्य में बाजाजी राव की तत्परता तथा कुशलता की प्रशंसा करते हुए सर देसाई लिखते हैं कि वित्तीय नियन्त्रण सायद बालाजी राव की प्रशासनिक क्षमता की विशिष्टता थी । राज्य के साधनों को बढ़ाने और उनका सर्वोच्च लाभ उठाने की नीति में इस पेशवा ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की ।[6] समस्त वित्तीय मदों पर सावधानी पूर्वक निरीक्षण एवं

1- राजवाड़े, मराठ्या इतिहासाची साधने, भाग 2, पृ0 23.

2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 218.

3- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुसलिम शासन का इतिहास, पृ0 638.

4- राजवाड़े, वही, खण्ड 3, पृ0 212.

5- ग्राण्ड डफ, हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 1, पृ0 318.

6- मालकम, सेन्ट्रल इण्डया, खण्ड 1, पृ0 79.

नियंत्रण रख कर स्वयं को अर्थाभाव से मुक्त रखने में वह दक्ष था। यात्राओं के दौरान अधिकारियों से स्पष्टीकरण माँगता, उनका साक्षात्कार करता, दोषियों को फटकारता और योग्यों को पुरस्कृत करता था।[1] अपनी यात्राओं, अभियानों, घेरों तथा युद्धों के दौरान वह सदैव ही चुपचाप तथा शान्तिपूर्वक लेखा परीक्षण करने, सन्धियों में सामंजस्य बिठाने तथा प्रत्येक दृष्टि से राज्य हित के कार्यों में व्यस्त रहता था।[2]

मालवा पर कानूनी अधिकार -

यद्यपि 1738 ई० में दुरई सराय की सन्धि द्वारा निजाम ने मुगल वजीर की हैसियत से मालवा पेशवा बाजीराव को दे दिया था, लेकिन मुगल सम्राट ने अभी तक इस शर्त पर अपनी मुहर नहीं लगाई थी। बालाजी का पहला लक्ष्य मालवा पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित करना था।[3] इसके लिए उसने एक बड़ी सेना लेकर मालवा की ओर कूच किया, लेकिन जयपुर नरेश राजा जयसिंह ने पेशवा और मुगल सम्राट् के बीच 1741 ई० में एक सन्धि करा दी।[4] जिसके अनुसार मालवा पेशवा को मिल गया और पेशवा ने स्थायी रूप से 500 सैनिक तथा अवसर पड़ने पर 4000 तक सैनिक मुगल सम्राट् की सेवा में देने का वायदा किया।[5] इस प्रकार मालवा पर पहली बार पेशवा का कानूनी अधिकार हो गया। मुगल सम्राट् की सहायता का बचन देकर पेशवा ने मराठों को दिल्ली की राजनीति से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित कर दिया।[6]

1- एच०एन० सिंनहा, राइज़ आफ् द पेशवाज़, पृ० 93.

2- सर देसाई, मराठा रियासत, (मध्य भाग),, खण्ड 2, पृ० 119.

3- आर०वी० नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० 188.

4- लाइफ् आफ् द शाहू महाराज द एल्डर, पृ० 57.

5- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ० 219.

6- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ० 138.

कर्नाटक विजय -

बालाजी बाजीराव को अपने पिता बाजीराव प्रथम के विपरीत कर्नाटक के मामलों में अत्यधिक रूचि थी ।[1] इसके अधोलिखित कारण थे :-

§1§ कर्नाटक दक्षिण का सबसे उपजाऊ और सम्पन्न प्रदेश था, निजाम उसपर अपना अधिकार जमाना चाहता था । ऐसा उपजाऊ प्रान्त मराठों के शत्रु निजाम के हाथ में चला जाय, यह बालाजी कदापि नहीं चाहता था ।[2]

§2§ मराठा प्रदेश की सुरक्षा की दृष्टि से भी कर्नाटक की स्थिति विशिष्ट थी ।[3]

§3§ कर्नाटक के हिन्दू नागरिक निज़ाम की अपेक्षा मराठों के आधिपत्य को सहन कर सकते थे । अभीतक कर्नाटक मुगल प्रभाव से बचा हुआ था ।[4]

§4§ इस समय कर्नाटक में पाँच नवाब थे और सभी आपस में लड़ा करते थे । कर्नाटक की यह अराजकता महाराष्ट्र के लिए घातक थी ।[5]

§5§ कर्नाटक में फ्रांसीसी और अंग्रेज कम्पनी अपनाप्रभुत्व स्थापित करने में लगी थी । इनमें से किसी भी कम्पनी का अधिकार मराठों के लिए कष्टकारी था ।[6]

§6§ शाहू कर्नाटक विजय के लिये बड़ा आतुर था और यदि बालाजी कर्नाटक अभियान के लिए तैयार नहीं होता तो शाहू इस अभियान का नेतृत्व रघुजी भोंसले को दे देता जो बाजाजी का शत्रु था ।[7]

1- राजवाड़े, वही, खण्ड 7, पृ0 56.

2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज़्, भाग 2, पृ0 317.

3- स्काट्, डक्कन, खण्ड 4, पृ0 58.

4- किनकेड एण्ड परसनिस, हिस्ट्री आफ् द मराठा पीपुल्स, पृ0 180.

5- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, खण्ड 5, पृ0 206.

6- राइज़ आफ् द पेशवाज़्, पृ0 68.

7- राजवाड़े, वही, खण्ड 8, पृ0 105.

इन सभी कारणों से पेशवा बालाजी बाजीराव ने कर्नाटक विजय का निश्चय कर लिया । कर्नाटक अभियान मराठों का सबसे बड़ा और सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा आक्रमण की दृष्टि से बहुत व्यापक अभियान था ।[1] पेशवा ने 1746 ई0 में बाबूजी नायक को और 1746 ई0 में सदाशिव भाऊ को कर्नाटक भेजा, जिन्होंने कर्नाटक की विजयपूर्ण की ।[2] आर्थिक दृष्टि से कर्नाटक का अभियान बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ । तंजौर के राजा और अर्काट के नवाब से मराठों को बड़ी मात्रा में धन मिला ।[3] कड़प्पा और पोर्टोनोवो के नगरों से मराठों को विपुल धनराशि प्राप्त हुई । कृष्णा से कावेरी नदी तक का कर्नाटक का प्रदेश मराठों ने रौंद डाला ।[4] कर्नाटक पर मराठों का प्रभुत्व स्थापित हो जाना बालाजी की महान सैनिक, राजनीतिक सफलता थी ।

उड़ीसा, बंगाल और बिहार -

रघुजी भोंसले पेशवा का प्रतिद्वन्दी था । उसकी महत्वाकांक्षा सन्तुष्ट करने के लिए पेशवा ने उड़ीसा, बंगाल, बिहार पर हमला करने की छूट दे दी ।[5] रघुजी ने अपने प्रतिनिधि भास्कर पन्त को इन सूबों के शासक अलीवर्दी खां से चौथ मांगने भेजा । लेकिन अलीवर्दी खां ने भास्कर पन्त का धोखे से वध करवा दिया ।[6] क्रुद्ध रघुजी भोंसले ने उड़ीसा पर भयानक आक्रमण करके 1751 ई0 में नवाब को उड़ीसा का सूबा और चौथ के रूप में 12 लाख रूपये प्रतिवर्ष देने के लिये विवश कर लिया ।[7]

1- हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, पृ0 412.
2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 182.
3- सर देसाई, मराठी रियासत, (मध्य विभाग), पृ0 228.
4- स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ् इण्डिया, पृ0 418.
5- भीमसेन, वीर मराठे, पृ0 137.
6- दामोदर सावरकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 68.
7- पेशवाज् डायरी, खण्ड 3, पृ0 34.

रघुजी भोंसले से निपटना -

पेशवा बालाजी और रघुजी भोंसले में प्रतिद्वन्दिता बढ़ती गई । रघुजी ने मालवा और बुन्देल खण्ड पर हमले शुरू कर दिये जो पेशवा की जागीर में थे । इसको लेकर दोनों में कई बार द्वन्द्व हुए । उत्तर में 1743 में शाहू ने दोनों के अधिकार क्षेत्रों में बंटवारा करके एक समझौता करवा दिया ।[2]

निज़ाम से सम्बन्ध -

1748 में आसफ खाँ की मृत्यु के बाद सलाअत जंग निजाम बना । उसने मराठों को 2 लाख रूपये वार्षिक लगान की भूमि देने का वायदा किया, लेकिन मराठे सलाअत जंग की सीमाओं पर आक्रमण करते रहे ।[3] धीरे-धीरे उन्होंने असीरगढ़, बुरहानपुर, दौलताबाद तथा आस-पास के भू-भाग पर अधिकार जमा लिया ।[4] इन प्रदेशों की वार्षिक आय लगभग 50 लाख थी ।

दिल्ली और पंजाब की राजनीति में हस्तक्षेप -

बालाजी ने दिल्ली और पंजाब की राजनीति में अधिकाधिक हस्तक्षेप करके मराठा राज्य के लिए संकट मोल ले लिया ।[5] मुगल सम्राट की दुर्बलता के कारण दिल्ली दरबार भारतीय और तुरानी मुसलमानों के आपसी विरोध का अखाड़ा बना हुआ था ।[6] इस सत्ता संघर्ष में मराठों ने भारतीय मुसलमानों का पक्ष लेकर विदेशी तुरानी मुसलमानों को असन्तुष्ट कर दिया । विदेशी मुसलमान

1- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, खण्ड 4, पृ0 450
2- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 312.
3- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 205.
4- लेनपुल, औरंगजेब, पृ0 192.
5- एम0जी0 रानाडे, राइज़ आफ् द मराठा पावर, पृ0 226.
6- एलफिन्स्टन, हिस्ट्री आफ् इण्डिया, पृ0 448.

बाहर से सहायता प्राप्त करने के लिए बाध्य हो गये ।[1] उन्हें इसमें सफलता भी मिल गई, क्योंकि अफगानिस्तान का तत्कालीन शासक अहमद शाह अब्दाली भारत पर आक्रमण करने और दिल्ली की राजनीति में हस्तक्षेप करने को तैयार बैठा था ।[2] इस प्रकार मराठे अपने भूल से अहमदशाह अब्दाली के प्रत्यक्ष विरोध में आ गये और पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ ।

मराठों ने मार्च 1758 में सरहिन्द पर और अप्रैल 1758 में लाहौर पर अपना अधिकार जमा लिया ।[3] उन्होंने अहमद शाह अब्दाली के गवर्नर तिमूरशाह को पंजाब से भगाकर उसकी जगह अपने मित्र अदीनाबेग को पंजाब का गवर्नर बना दिया ।[4] जिसके बदले में उसने मराठों को 75 लाख रुपया वार्षिक देना मंजूर किया । पंजाब में मराठों के इस हस्तक्षेप से भी अहमदशाह अब्दाली भड़क उठा । पंजाब पर वह 1756 के अपने पिछले आक्रमण में अधिकार जमा चुका था, अत: मराठों की छेड़-छाड़ ने उसे पुन: आक्रमण के लिए विवश कर दिया ।[5]

पानीपत का तृतीय युद्ध (14 जनवरी, 1761) -

1760 तक बालाजी के नेतृत्व में मराठों का गौरव-ध्वज फहराता रहा, लेकिन शीघ्र ही उनकी शक्ति और प्रभुता को अहमदशाह अब्दाली ने धूल में मिला दिया ।[6] पानीपत के तीसरे युद्ध में उसने मराठों को निर्णायक शिकस्त दी । सम्पूर्ण महाराष्ट्र में सम्भवत: एक भी परिवार ऐसा नहीं था, जिसने अपने किसी न किसी व्यक्ति की मृत्यु पर शोक न मनाया हो ।[7] पानीपत के तीसरे युद्ध ने

1- सावरकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 70.
2- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् द मुगल एम्पायर, भाग 2, पृ0 52.
3- बालाजी हर्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 123.
4- भीमसेन विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ0 137.
5- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज़, भाग 2, 263.
6- एच0एन0 सिनहा, राइज़ आफ् द पेशवाज़, पृ0 147.
7- राजवाड़े, खण्ड 8, पृ0 38.

पहले से ही पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को तो मिटाया ही साथही मराठों के सम्पूर्ण भारत में साम्राज्य स्थापित करने के सपने को भी चूर-चूर कर ।[1] यद्यपि इससे मराठों की शक्ति तो निमूल नहीं हुई, क्योंकि कुछ ही वर्षों बाद वे पुन: शक्तिमान् हो गये थे, लेकिन उनके बढ़ते हुए गौरव को भयंकर आघात लगा ।[2] इस युद्ध में लगभग एक लाख मराठे मारे गए । मराठा शक्ति इस आघात के कारण अनेक वर्षों तक सभल न सकी । उत्तर भारत में तो उनका प्रभाव कुछ समय के लिए समाप्त हो ही गया, किन्तु दक्षिण में भी उनकी प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का लगा ।[3] उत्तर में उनका प्रभाव घटने से पंजाब में सिक्खों की शक्ति मजबूत हो गई ।[4]

बालाजी बाजीराव की मृत्यु, मूल्यांकन -

पेशवा बालाजी बाजीराव को पानीपत के विनाश का समाचार जनवरी, 1761 के अन्तिम सप्ताह में ज्ञात हुआ ।[5] पानीपत की अपमान जनक पराजय और मराठों को घोर विनाश के धक्के को बालाजी अधिक समय तक सहन नहीं कर सका । 23 जून 1761 को उसकी मृत्यु हो गई ।[6] बालाजी मृदुभाषी, कला-प्रेमी और कुशल पेशवा था । उसने सैनिक प्रतिभा और कूटनीति का अच्छा परिचय दिया तथा मराठा साम्राज्य का विस्तार किया ।[7] परन्तु अनेक योग्यताओं के बाद भी वह अपने पिता की भाँति महान् सेनापति और कूटनीतिक

1- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 118.

2- ग्राण्ड डफ, हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, पृ0 213.

3- एम0जी0 रानाडे, राइज् आफ् द मराठा पावर, पृ0 203.

4- बालाजी हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 146.

5- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् द मुगल एम्पायर, भाग 2, 217.

6- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 165.

7- सर देसाई, मराठी रियासत (मध्य विभाग), पृ0 214.

सिद्ध नहीं हुआ । वह होल्कर और सिन्धिया को अपने वश में नहीं रख सका ।[1] उसने अनुचित हस्तक्षेप से शक्तिशाली राजपूतों और जाटों को मराठों के विरुद्ध कर दिया ।[2] यदि पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों के साथ जाट और राजपूत भी साथ हो जाते तो अफगानों की कदापि जीत नहीं हो सकती थी ।[3] वास्तव में वह मराठों को समय और परिस्थितियों के अनुकूल नेतृत्व देने में असफल रहा । सर रिचर्ड टेम्पल ने बालाजी का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि बालाजी का चरित्रअऔर स्वभाव उसके पिता की ही तरह था । यद्यपि वह चतुर, मंत्रणा में प्रभावशाली और युद्ध में योग्य था, तथापि एक सैनिक और राजनीतिज्ञ के रूप में वह अपनी पिता के समकक्ष नहीं था ।[4] वह अपने साथियों के गुणों से पूर्ण लाभ उठाना जानता था और उसकी उल्लेखनीय सफलताएँ उसके अधीन पदाधिकारियों ने प्राप्त की थी । वह सर्वदा सबसे आगे बढ़कर व्यवस्था स्थापित करता था । अपने समय में ही उसने मराठा शक्ति के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया ।[5] उसके नियन्त्रण में एक लाख मराठे घुड़सवार इस बात को गर्व से कह सकते थे कि उनके मराठा घोड़े कन्या कुमारी से लेकर हिमालय तक की सभी नदियों में प्यास बुझाते रहे । लेकिन इस विस्तृत राज्य को वह जन साधारण के हित के लिए प्रयोग नहीं कर सका ।[6] शायद उसमें यह योग्यता ही नहीं थी । कुछ इसी प्रकार के विचार ग्राण्ड डफ ने व्यक्त किया है ।[7] किनकेड ने लिखा है

1- राजवाड़े, वही, खण्ड 5, पृ0 69.

2- पारसनिस, हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 2, पृ0 165.

3- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 4, पृ0 137.

4- सावरकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 86.

5- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 170.

6- नूरूद्दीन, पेशवा के अन्तिम दिन, पृ0 52.

7- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासांची साधने, जि0 3, पृ0 211.

कि बालाजी बाजीराव को पूना सबसे अधिक पसन्द था, उसने बड़े विद्वान ब्राह्मण और कवि वहाँ बुलाकर बसाये और व्यापार को प्रोत्साहन दिया। सड़कें बनवाई। फव्वारे लगवाये, कई मुहल्ले बसाये और पेड़ लगवाये। पार्वती पहाड़ी पर बालाजी ने देवदेवेश्वर का एक मन्दिर बनवाया था।[1] इस प्रकार उसका मूल्यांकन सम-सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल किया जा सकता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने जिस कार्य को सफलता पूर्वक आरंभ किया, उसे पेशवा बाजीराव ने योग्यता पूर्वक आगे बढ़ाया और बालाजी बाजीराव ने उसे चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। यह ठीक है कि मराठों की शक्ति का पतन भी उसी के काल में पानीपत के मैदान में हुआ, किन्तु इससे उसकी उपलब्धियों को पूरीतरह से भुलाया नहीं जा सकता है। सम्पूर्ण भारत में मराठों की पताका फहराने वाला पेशवा भी वही था।

1- पुरन्दरे दफ्तर, जि0 1, पृ0 393.

पंचम अध्याय -

मराठा-रुहेला एवं मराठा-जाट सम्बन्ध

मराठा-रूहेला एवं मराठा-जाट सम्बन्ध

मराठा साम्राज्य के उन्नायक पेशवाओं के काल में मराठा साम्राज्य का विस्तर गुजरात, मालवा, बुन्देलखण्ड, दोआब तथा बंगाल-बिहार-उड़ीसा आदि भागों में हो गया था। मुगल साम्राज्य के अवसानकाल में अनेक नये राज्यों का अभ्युदय हुआ जिनमें दोआब में रूहेला तथा मथुरा क्षेत्र में जाटों के राज्य मुख्य थे। रूहेला राज्य मुगल साम्राज्य का अनुयायी था। अत: पेशवाओं के विस्तार काल में इस राज्य से वही सम्बन्ध रहा जो मराठों का मुगलों से था। इसी प्रकार जाट राजा सूरजमल इस समय अपने राज्य को चतुर्दिक विस्तार कर रहा था, अत: मराठों से उसका कूटनीतिक सम्बन्ध होना स्वाभाविक था। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम मराठों तथा रूहेलों के सम्बन्धों तथा बाद मराठों तथा जाटों के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है।

रूहेलों की उत्पत्ति तथा राज्य संगठन -

औरंगजेब के बाद बहादुरशाह के काल में (1707-1712) दाउद नामक एक महत्वाकांक्षी अफगान गुलाम अपने स्वामी शाह आलम खाँ के घर से भागकर रूहेलखण्ड में आया और वहाँ पर उसने एक सरदार के यहाँ नौकरी करली।[1] इस समय रूहेल खण्ड कटेहर के नाम से प्रसिद्ध था। मधकार के मुदरशाह की सेवा करते उसने बरेली से 26 मील उत्तर बाँकौली के शासक के विरूद्ध एक अभियान में भाग लिया। वहाँ उसे अन्य वस्तुओं के साथ एक 7-8 वर्ष का जाट बालक मिला।[2]

1- गुलिस्ता, इलियट का अनुवाद, पृ0 5-7.

2- अशोब, तारीख-खरोज नादिरशाह, 424.

उसने उस बालक को मुसलमान बना लिया । उसका नाम अली मुहम्मद खाँ रखा और उसे गोद ले लिया ।[1] कुछ समयबाद दाऊद ने मुदारशाह की नौकरी छोड़ दी और कुमाऊँ के राजा देवीचन्द की सेवा में चला गया । उसका दूसरा कदम राजा और मुरादाबाद के नायब फौजदार अज्मतुल्ला खाँ के बीच एक युद्ध में विश्वास-घात कर अपने नये स्वामी से भाग जाना था । इसलिये उसे मृत्यु दण्ड दिया गया ।[2] अब अली मुहम्मद खाँ दाऊद की सेना का संचालन अधिकारी बना । उसने 1722 में अज्मतुल्ला खाँ के अधीन नौकरी करली ।[3]

निबिया बोवली और दाऊद की जागीर के अन्य गावों पर अधिकार प्राप्त कर अली मुहम्मद खाँ ने, जो अब रूहेला समझा जाता था[4], चन्दौसी से 14 मील दक्षिण-पूर्व में बिसौली को अपना निवास स्थान बनाया । अपने सैनिकों की संख्या बढ़ाकर उसने अपनी सैन्य शक्ति को मजबूत किया और आस-पास के गावों को लूटकर अपनी सम्पत्ति पर्याप्त बढ़ाली ।[5] कुछ दिनों पश्चात् दिल्ली दरबार के एक हिजड़ा मुहम्मद सालेह पर जो मनौना परगना के अधिकार में था, उसने सहसा आक्रमण किया और उसको मार डाला ।[6] उसके बाद उसने बदायूँ के उत्तर में ओला और पड़ोस के गावों के जमीदार दुर्जन सिंह की हत्या कराकर उसके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया ।[7] इस प्रकार आधुनिक बरेली जिला के एक बड़े भाग का वह मालिक बन गया और एक स्वतन्त्र शासक की तरह रहने लगा ।

1- अख्बारूल्सनादीद-उर्दू - 1918, भाग 1, 82.

2- हादिक, हदीकतुल अकालीम, पृ0 139.

3- गुलिस्ता, इलियट का अनुवाद, पृ0 9-10.

4- हादिक, हदीकतुल अकालीम, पृ0 140.

5- सीयर, 11, पृ0 480.

6- गुलिस्ता, इलियट का अनुवाद, पृ0 12.

7- अब्दुलकरीम - 88 ब; शाकिर - 86; आनन्द राम - 335.

अपनी स्थिति सुरक्षित बनाने के लिए रुहेला सरदार अली मुहम्मद खाँ ने मुगल वजीर का आश्रय प्राप्त करने का प्रयत्न किया ।[1] वजीर इस समय स्वयं दरबार में इरानी दल के विरूद्ध बाहरी सहायकों की खोज में था ।[2] 1737-38 में वजीर की सेना को जानसठ के सैयद सैफुद्दीन खाँ के विरूद्ध सहायता देकर तथा युद्ध के मर्मस्थल पर उसको मारकर उसने वजीर कमरूद्दीन की विशेष सेवा की । जिसके फलस्वरूप पुरस्का में उसको नवाब की उपाधि मिली ।[3] वजीर ने उसके द्वारा देय राज्य कर में भी कमी करदी, किन्तु नादिरशाह के आक्रमण काल में इस रूहेला सरदार ने देय राज्य कर में छल किया और पीलीभीत के उत्तर-पश्चिम में 18 मील रीछा तक शाही भूमि पर अधिकार कर लिया ।[4] अप्रैल 1741 को राजा हरनन्द और उसके पुत्र मोतीराम पर जिसको वजीर ने उसको दण्ड देने के लिए भेजा था उसने सहसा हमला किया और मार डाला ।[5] इस प्रकार बरेली नगर के अतिरिक्त उसके अनेक परगनों पर कब्जा कर लिया । साथही मुरादाबाद, सम्भल, शाहाबाद, और शाहजहाँपुर के अनेक परगने भी उसके अधिका में आ गये ।[6] इस प्रकार रूहेला राज्य का एक बड़े क्षेत्र में विस्तार हो गया ।

वजीर ने रूहेला को उसके अतिक्रमणों का दण्ड देने के स्थानपर उसकी अन्याय से प्राप्त भूमि के अधिकार में स्थिरीकरण कर दिया ।[7] साथही उसने इसपर राज्य कर देना स्वीकार कर लिया । दिल्ली दरबार के भय से मुक्त होकर

1- अशोब, तारीख खरोजनादिरशाह, पृ0 426.

2- हादिक, हदीकतुल अकालीम, पृ0 142.

3- सीयर, भाग 2, पृ0 483.

4- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 316.

5- रोहिला पावर इन द एटीन्थ सेन्चुरी, शोध प्रबन्ध, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, पृ0 186.

6- सियारूल्मुताखिरीन, पृ0 563.

7- अहमदशाही, पृ0 42 अ,

जिसके सन्देह को उसने अपनी वर्तमान वाह्य अधीनता से स्वप्निल कर दिया था, अलीमुहम्मद खाँ ने, कुमायूँ के देवीचन्द के उत्तराधिकारी राजा कल्याण चन्द के प्रदेश पर, दाऊद की मृत्यु का बदला लेने के लिए आक्रमण किया ।[1] बहेरी के 14 मील उत्तर-पश्चिम में रूद्रपुर के युद्ध के बाद राजा अल्मोड़ा को और वहाँ से गढ़वाल को भाग गया । रूहेला ने उसके राज्य पर भी अधिकार करलिया ।[2] यहाँ उसने बहुत से लोगों को बन्दी बनाया, हिन्दू मन्दिरों को नष्ट किया और सार्वजनिक मार्गों में गो-वध किया । अली मुहम्मद खाँ ने काशीपुर, रूद्रपुर, और पहाड़ियों के दक्षिण में दो और परगनों को अपने प्रदेश में जोड़ लिया और शेष रियासत कुमायूँ के भूतपूर्व शासक के एक नातेदार को कर पर दे दी ।[3] इस प्रकार पठानों के एक छोटे से सरदार ने बरेली को राजधानी बनाकर एक मजबूत राज्य का संगठन किया । आगे चलकर रूहेला सरदारों ने मुगल बादशाहों की आन्तरिक राजनीति में भी सक्रिय रूप से भाग लेना आरम्भ कर दिया ।

मराठा-रूहेला सम्बन्ध -

मराठा-रूहेला सम्बन्धों का आरम्भ मराठों के उत्तर भारत के अभियानों के साथ हुआ । इस समय दिल्ली का मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख था । इस समय मराठों की शक्ति तेजी से चारो ओर बढ़ रही थी और ऐसा प्रतीत होता था कि कुछ ही काल में वे दिल्ली के अधिपति भी हो जायेगें ।[4] निजाम-उल-मुल्क ने जब साम्राज्य के वजीर का पद स्वीकार नहीं किया तो सम्राट अहमदशाह ने इस पद पर अवध के सूबेदार सफदरजंग को नियुक्त किया ।[5] नये वजीर का पहला

1- आनन्दराम, पृ0 325; सियर, भाग 3, पृ0 362.

2- अब्दुलकरीम, पृ0 173.

3- वही, पृ0 252; सियर, भाग 3, पृ0 875.

4- डा0 आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 185.

5- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 137.

लक्ष्य रूहेलों का दमन करना था । नजीब के नेतृत्व में रूहेलों ने रूहेलखण्ड पर अधिकार कर लिया था और अवध प्रान्त में वजीर के इलाकों पर अतिक्रमण भी कर रहे थे ।[1] नजीब की बढ़ती हुई ताकत को अकेले रोकने में सफदरजंग असमर्थ था । अत: उसने अपनी सहायता के लिए मराठों को बुलाया ।[2] मराठों और रूहेलों का सम्बन्ध यहीं से आरम्भ हुआ जो 1761 के पानीपत युद्ध तक अनेक उतार-चढ़ावों के साथ चलता रहा ।[3] 1761 के बाद रूहेले उत्तर भारत में सर्वशक्तिमान हो गये, किन्तु विवेच्य काल के बाहर होने के कारण यहाँ 1761 तक के सम्बन्धों का विवेचन किया गया है ।

वजीर सफदर जंग के बुलाने पर रूहेलों को दबाने के लिए मल्हार राव होल्कर और जयप्पा सिन्दे जमुना पार कर दोआब में घुसे और कादरगंज के पास उन्होंने दस हजार फौज सहित एक पठान सरदार को मार डाला ।[4] उन्होंने फर्रुखाबाद को भी लेना चाहा । 25 दिन तक युद्ध चलता रहा, पर रूहेलों को इसबीच सहायता मिल गई जिसके कारण युद्ध का कोई परिणाम नहीं निकला ।[5] अन्त में मराठों ने नौकाओं का पुल बनाकर सेना सहित गंगा पार की और रूहेलों के राज्य में प्रवेश कर गये । मराठों और रूहेलों का पहला सम्बन्ध यहीं आरम्भ हुआ ।[6] इस समय मराठों ने पठानों और रूहेलों की 30 हजार की सम्मिलित सेना को परास्त किया और सफदरजंग के शत्रुओं को सबक सिखाया । जिस समय गंगा-यमुना के दोआब में मराठों ने अपने थाने कायम किये उस समय

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 2, पृ0 225.

2- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 342.

3- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् द मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 155.

4- गुलिस्ता, इलियट का अनुवाद, पृ0 18-19; हरीराम गुप्ता मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 22.

5- सियर, भाग 2, पृ0 490.

6- अहमदशाही, पृ0 53.

रूहेला सरदार नजीबुद्दौला गुप्तरूप से युद्ध की तैयारी कर रहा था ।[1] अन्ताजी मानकेश्वर ने सिकन्दराबाद पर अधिकार कर लिया । नजीबुद्दौला के भाई ने उसका सामना किया तथा रूहेले वीरतापूर्वक लड़े पर अन्त में पराजित हो गये ।[2] अन्त में सहारनपुर, मेरठ, सिकन्दराबाद, शिकोहाबाद, इटावा और दक्षिण की ओर को जहानाबाद के सब स्थानों से दिल्ली की ओर नजीब के सभी कारिन्दों को निकाल दिया गया ।[3] मराठों के समझाने से शुजाउद्दौला इस दोआब की लड़ाई से अलग रहा । मराठों ने रूहेलों के प्रदेश से कोई विशेष लाभ नहीं प्राप्त किया ।[4] आगे भी रूहेलो और मराठों में युद्ध जारी रहा ।

मराठा-रूहेला वैमनस्व -

अब्दाली के आक्रमण, लूट और नरसंहार में नजीब उसका दाहिना हाथ था और भारत से लौटते समय अब्दाली उसको वकील-ए-मुतलक बना गया था । अब्दाली के चले जाने पर सम्राट ने दिल्ली के आस-पास के जिले नजीब के सुपुर्द कर दिये थे और उसको अधिकार दे दिया था कि लगान वसूली के लिये वह चाहे जिसको नियुक्त करे किन्तु शाही कोष में रूपया आना चाहिये ।[5] वह आय के चतुर्थांश या पंचमाश से अधिक बादशाह को नहीं देता था । सम्राट अनुभव करने लगा कि इमाद-उल-मुल्क की तानाशाही ने उसकी जितनी दुर्दशा की थी, अब नजीब ने उसकी इससे भी अधिक दुर्दशा कर डाली । इसलिये आलमगीर द्वितीय पुन: इमाद को ही वजीर बनाना चाहता था ।[6]

इमाद ने मराठों से भी सन्धि करली थी । इसलिये इमाद और मराठे

1- आशोब, पृ0 297·

2- कासिम, पृ0 396·

3- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 27, पृ0 169-70·

4- वही, जिल्द 2, पृ0 70·

5- तारीखे आलमगीर सानी, पृ0 168-69·

6- देहली क्रोनिकल, गुलाम अलीकृत इमाद-उस-सहादत, जि0 1, पृ0 49·

दोनों नजीब के विरोधी थे । आलमगीर द्वितीय इस प्रकार मराठों के साथ हो गया था, परन्तु वह नजीब का एक प्रकार से बन्दी बना हुआ था । इसलिए प्रत्यक्ष रूप से चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता था ।[1] अब मराठों का मुकाबला करने वाला केवल नजीब रोहिला ही था, सम्राट के पास जो कोई भी शक्ति बची हुई थी वह सब नजीब के हाथ में थी । इसलिये उसने समस्त शाही सेना के द्वारा मराठों का मुकाबला किया ।[2] इमाद और मराठों ने मिलकर योजना बनायी कि नजीब को दिल्ली से निकालकर इमाद को पुन: वजीर बना दिया जाय । मराठों का विचार था कि उनकी सहायता से इमाद को अपना खोया हुआ अधिकार प्राप्त होगा तो वह उनका साथ देगा ।[3] उत्तर भारत में अपने राज्य विस्तार की जो भी योजना वे बनायेंगे उसमें उन्हें इमाद का सहयोग प्राप्त होगा, जिससे उनकी विजय पर शाही मोहर लग जायेगी ।[4]

रघुनाथ राव और मल्हारराव होल्कर ने जयपुर से रेवाड़ी की ओर नजीब के विरुद्ध शीघ्रतापूर्वक कूच किया और नजीब से चौथ की माँग की । मोहम्मद शाह और अहमदशाह दोनों बादशाहों ने मराठों को चौथ चुकाने के लिये कुछ इलाके दिये थे, परन्तु अब वे इलाके नजीब ने दबा लिये थे ।[5] इसलिए निश्चित की हुई चौथ देने की जिम्मेदारी भी नजीब पर थी । रघुनाथराव ने नजीब के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की । नरोशंकर के नेतृत्व में उसने एक सेना भेजी, जो आगरा जा पहुँची । इस समय सूरजमल जाट भी मराठों को चौथ देने पर सहमत हो गया था ।[6] आगरा पर इस समय पेशवा का अधिकार था । मल्हारराव

1- शाकिर खाँ कृत ताजकीरा, पृ0 93-94.

2- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जि0 27, पृ0 220.

3- सियर-उल-मुतखारीन, जि0 3, पृ0 60.

4- हरीराम गुप्ता, मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 79.

5- फलके कृत शिन्देशाही इतिहासांची साधने, जि0 1, पृ0 103.

6- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासांची साधने, जि0 27, पृ0 118.

होल्कर वहाँ का सूबेदार तथा विट्ठल शिवदेव उनका नायब सूबेदार था ।[1] आगरा को केन्द्र बनाकर मराठों ने अपनी सेना की टुकड़ियों का जाल बिछा दिया । अभी मराठे दिल्ली से दूर थे, परन्तु उनके आने से राजधानी में आतंक छा गया और वहाँ अन्न का घोर अभाव हो गया ।[2] नजीब ने आलमगीर द्वितीय को सलाह दी कि यदि मराठे लड़ना चाहें तो कोई दूसरा रास्ता न अपनाकर उनका मुकाबला किया जाय ।

16 जुलाई 1757 को दिल्ली की दुर्ग प्राचीर से मराठे दिखाई देने लगे । उनकी सेना यमुना नदी के दूसरे तट पर आ पहुँची थी और वे अन्न ले जाने वालों को लूटने लगे थे । उन्होंने नाव घाट बन्द कर दिये थे । दोनों किनारों से कोई आ-जा नहीं सकता था ।[3] इसलिये राजधानी में अन्न बहुत मँहगा हो गया था । नजीब खाँ ने मराठों को रोकने के लिये अपने भाई के नेतृत्व में एक सेना भेजी, परन्तु वह कुछ नहीं कर सका ।[4] मराठों के विस्तार को देखकर नजीब ने अन्तत: दोआब मराठों को समर्पित कर दिया ।और अपनी सारी सेना राजधानी की रक्षा के लिये केन्द्रित करली ।[5] 15 दिन जुलाई के और अगस्त के 7 दिन इसी अनिश्चितता में बीते । इस समय तक मराठों की केवल अग्र-सेना की ही टुकड़ी आयी थी, परन्तु शीघ्र ही यह खबर आई कि रघुनाथ राव भी राजधानी के निकट आ गया है ।[6]

30 अगस्त को रघुनाथ राव और इमाद के बीच दिल्ली दरवाजे के

1- डा0 यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 119.

2- देहली क्रोनिकल {नूरुद्दीन} जि0 27, पृ0 194.

3- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 156.

4- तारीखे हुसैनशाही, पृ0 47-48.

5- सियर-उल-मुतखरीन, जि0 3, पृ0 62.

6- मिराते अहमदी, पृ0 132.

सामने युद्ध हुआ । मराठों ने तोपें और बन्दूकें चलाना शुरू किया । मराठों की तोपों के गोले हयात वख्श बाग, दीवान-ए-आम और शाही गुसलखाने तक गिरे । दिल्ली दरवाजे की दो बुर्जे टूट गईं ।[1] 31 अगस्त की सारी रात चारों ओर इसी प्रकार अग्नि वर्षा होती रही । नजीब के पास अब थोड़े से आदमी रह गये थे । इसलिये विवश होकर वह अपने मित्रों के समझाने पर मल्हार राव के पास आत्म समर्पण करने गया और उसने उनकी सारी शर्तें मान लीं ।[2] 6 सितम्बर को की गई सन्धि के अनुसार -

1- नजीब अपनी सम्पत्ति और युद्ध सामग्री के साथ दाराशिकोह की हवेली से निकलकर वजीराबाद चला गया ।

2- रोहिलों ने अपना सामान निकालकर दुर्ग खाली कर दिया ।

3- नगर के दरवाजे पर मराठों के पहरे बिठा दिये गये ।

इससन्धि के बाद नये वजीर इमाद ने नजीब के सभी कारिन्दों को हटा दिया और अपने आदमियों को नियुक्त कर दिया ।[3] नजीब का स्थान अहमद बंगश को दिया गया । अब मराठे राजधानी के सर्वेसर्वा बन गये ।[4] इतने पर भी सम्राट के नाम का प्रभाव ऐसा प्रबल था कि मल्हार राव ने प्रसन्नता के साथ बादशाह द्वारा भेजा हुआ खिलअत पहना ।[5] तब नये अफसरों ने रघुनाथ राव को उसके डेरे पर जाकर झुक कर नमस्कार किया ।

मराठों ने शाही महल और राजधानी पर कब्जा कर लिया, परन्तु इससे आलमगीर द्वितीय की न हानि हुई न कोई लाभ । वह पहले भी दूसरों के हाथ की कठपुतली था और अब भी वैसे ही बना हुआ था । परन्तु नजीब को

1- एच0जी0 कीने, द फाल आफ द मुगल इम्पायर, पृ0 147.

2- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 240.

3- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 2, पृ0 134.

4- इस्लामिक कल्चर, 1933, पृ0 34.

5- अवध गजेटियर, जिल्द 2, पृ0 460.

पदच्युत कर देने के कारण स्थिति और भयंकर हो गयी । वह अपनी जागीरों में वापस तो चला गया परन्तु उसने खुले तौर पर दिल्ली का विरोध करना नहीं छोड़ा । दिल्ली से मराठों को निकाल भगाने के लिए अहमदशाह अब्दाली को निरन्तर निमन्त्रण देता रहा ।[1]

अनेक परिवर्तनों के बाद भी दिल्लीवासियों के कष्ट में कोई कमी नहीं आई थी । नजीब युद्ध की तैयारियाँ करने लग गया था । मराठों की लड़ाई के कारण नगर में अन्न का घोर अभाव हो गया था ।[2] ऐसी दशा में दुर्व्यवस्था का होना स्वाभाविक था ।

सितम्बर 1759 में राजपूताना छोड़कर दत्ताजी सिन्धिया जिस समय दिल्ली पहुँचा उस समय मराठों की नीति बिलकुल बदल गई थी । अब तक रही नीति का संचालन मल्हार राव होल्कर के हाथों में था जो बड़ा ही मधुरभाषी राजनीतिज्ञ था ।[3] वह परिस्थिति को देखकर समझौते के लिए भी तैयार रहा करता था । जबकि दत्ताजी का स्वभाव कठोर था, उसमें अधीरता और जल्दबाजी थी । इसके अतिरिक्त होल्कर नजीब खाँ का घनिष्ट मित्र था ।[4] इतना ही नहीं, उसको वह अपना दत्तक पुत्र भी मानता था । पेशवा की नीति इसके विपरीत थी । वह नजीब को उत्तर भारत में मराठों के लिए काँटा समझता था । उसका विचार था कि नजीब के हट जाने पर ही मराठों का पंजाब और बिहार में आधिपत्य जम सकता है ।[5] इस प्रकार मराठों की दृष्टि रुहेलों के प्रति भिन्न थी । यही कारण था कि उनके पारस्परिक सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव होते रहते थे ।

1- भाऊ, साहो बाँची बखर, पृ0 110.

2- पारसनीस, ऐतिहासिक टिप्पड़ी, जिल्द 1, पृ0 17.

3- तारीखे हुसैन शाही, पृ0 49.

4- तारीखे आलमगीर सानी, पृ0 188 ए.

5- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 137.

दत्ता जी सिन्धिया और नजीबुद्दौला -

रघुनाथ राव पंजाब का शासन प्रबन्ध स्थायी रूप से देखने के लिए दत्ता जी सिन्धिया को छोड़ गया था ।[1] रघुनाथ राव के प्रबन्ध में मुख्य दोष यह था कि उसने प्रान्त का भार दो मुसलमान सरदारों के हाथ में सौंपा था । ये अब्दुल समद खाँ और अर्ब्दुरहमान थे, जो वफादारी के साथ मराठों के हितों की सुरक्षा तब तक नहीं कर सकते थे जब तक कि उन्हें उच्च कोटि के मराठा सरदारों का सहयोग प्राप्त न हो ।[2] दत्ता जी मई 1758 में पूना से चला, जून में रघुनाथ राव से उज्जैन में मिला और दिसम्बर में दिल्ली आ गया । इसके बाद उसने लाहौर जाकर सवाजी सिन्धिया को फरवरी 1759 में पंजाब का सूबेदार बना दिया ।[3] उसने दोआब लौटकर उस प्रदेश के प्रबन्ध के लिए नजीबुद्दौला से सलाह की । नजीबुद्दौला क्रुद्ध हो गया और "मेरा जीवन खतरे में है" कहते हुए मराठा खेमें से बाहर चला आया[4], किन्तु वह मुजफ्फर नगर से 16 मील पूरब में गंगा के पश्चिमी किनारे पर बसे हुए शूकरताल में रहकर अपने दूतों द्वारा दत्ताजी से समझौते की बात करता रहा ।[5] जब बरसात के कारण उस प्रदेश में बाढ़ आई, तब दत्ताजी को फँसाने के लिए उसने जाल बिछाया । उसने अपने रूहेला सम्बन्धियों, हाफिज रहमत खाँ आदि पठानों, अवध के शुजाउद्दौला और काबुल के अहमदशाह अब्दाली से तुरन्त सहायता देने की जोरदार अपील की ।[6] दत्ताजी ने इसकी रोक-थाम के लिए 15 सितम्बर को नजीबुद्दौला के खेमें पर हमला कर

1- राजवाड़े कृत मराठा चाँ इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 227.
2- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ़ दी मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 190.
3- गुलाम अली कृत इमाद-उस-शहादत, पृ0 53.
4- देहली क्रोनिकल सियार-उल-मूत खारीन, जिल्द 3, पृ0 64.
5- मथुरालाला शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 131.
6- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 252.

दिया, किन्तु यह हमला असफल रहा और लड़ाई जारी रही ।[1] दत्तजी ने नजीबुद्दौला की रसद को तथा उसकी फौज ने रूहेलों के आगमन को रोकने के लिए 21 अक्टूबर को गोविन्द पंत बुन्देले को गंगा पार भेजा ।[2] किन्तु हाफिज रहमत और बुन्दे खाँ ने गोविन्द पन्त को हरा दिया ।[3] इसी बीच में अक्टूबर के अन्त में शुजाउद्दौला की सेना अनूपगिरि गुसाईं के नेतृत्व में पुल से नदी पर कर शूकरताल में नजीबुद्दौला की सेना से मिल गई ।[4] अतः दत्ता जी ने तुरन्त ही नजीबुद्दौला के शिविर का घेरा डाल दिया[5], किन्तु उसे बहुत दिनों तक केवल घेरे ही रहा । अन्त में उसे विवश होकर अपना घेरा हटाना पड़ा ।

पंजाब का मराठों के हाथ से निकलना–

जिस समय दत्ताजी शूकरताल का घेरा डाले पड़ा था तभी अहमदशाह अब्दाली ने नजीबुद्दौला की अपील पर पंजाब पर अधिकार करने के लिए जहान खाँ के नेतृत्व में सेना भेज दी, किन्तु साबाजी ने जहान खाँ को हराकर घायल कर दिया जिससे उसे पेशावर लौटना पड़ा ।[6] इससे अब्दाली ने क्रुद्ध होकर पंजाब पर स्वयं आक्रमण किया और साबाजी को हरा दिया । इस युद्ध में मराठों की छोटी सी सेना को भारी हानि उठानी पड़ी । साबाजी भयभीत होकर 8 नवम्बर को शूकरताल भाग गया और पंजाब मराठों के हाथ से निकल गया ।[7]

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़, भाग 2, पृ0 268·

2- तारीखे हुसैनशाही, पृ0 67·

3- ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य, पृ0 82·

4- तारीखे आलमगीर सानी, पृ0 137 बी·

5- डा0 जे0यू0 मल्लिक, रोहिला पावर इन द एटीन्थ सेन्चुरी, शोध-प्रबन्ध, अलीगढ़ विश्वविद्यालय 1975, पृ0 270·

6- देहली क्रोनिकल, सेलेक्सन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 27, पृ0 190·

7- गुलिस्ताने रहमत, पृ0 52-53·

दत्ताजी की पराजय तथा मृत्यु -

दत्ताजी ने प्रतिकूल परिस्थितियों से घबराए बिना बड़े साहस के साथ शूकरताल का घेरा डाला। वजीर इमादुलमुल्क दिल्ली में बहुत व्याकुल था और इस बात से डरकर कि कहीं सम्राट भी अब्दाली से न मिल जाय।[1] उसने 29 नवम्बर 1759 को उसे मार डाला और कुछ दिन बाद सूरजमल जाट की शरण में भरतपुर चला गया।[2] इधर अब्दाली सरहिन्द तक आ पहुँचा था।[3] जब उसने आलमगीर द्वितीय की हत्या का समाचार सुना तो क्रुद्ध होकर वजीर तथा उसके मित्र मराठों को दण्ड देने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।[4] दत्ताजी को शूकरताल का घेरा उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा और 11 दिसम्बर 1759 को अब्दाली का मुकाबला करने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान करना पड़ा।[5] उसने 18 दिसम्बर को यमुना पार करके बड़ी निर्भीकता के साथ कुंजपुरा पर अधिकार कर लिया। यहाँ उसने सुना कि तैमूर के नेतृत्व में 40 हजार अफगान अम्बाला में पहले से ही जमा हो गये हैं।[6] अतः उसने भारी तोपखाने और उसके भारी सामग्री के साथ सेना की एक टुकड़ी गोविन्द पन्त के नेतृत्व में दिल्ली भेज दी और बचे हुए 25 हजार सैनिकों को अपने साथ लेकर शत्रु का मुकाबला करने के लिए चल दिया। किन्तु अब्दाली खुली मुठभेड़ करना नहीं चाहता था।[7] अतः उसने यमुना पार करके दिल्ली से 10 मील उत्तर में लूनी के पास बरारी घाट में

1- सर देसाई, मराठा रियासत (मध्य विभाग), पृ० 320.

2- गिरीशचन्द्र द्विवेदी, लेख - द जाट किंगडम ऐट इट्स् जेनिथ (सूरज सुजान " फरवरी 1987), पृ० 70.

3- पुरन्दर दफ्तर, जिल्द 1, पृ० 386.

4- होल्कर कैफीयत, पृ० 28.

5- भाऊ साहेब बाँची बखर, पृ० 105.

6- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ० 257.

7- बैन्डल, पृ० 83.

अपना डेरा डाल दिया । यहाँ भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें 10 जनवरी, 1761 ई0 को दत्ताजी गोली से मारा गया और जनकोजी सिन्धिया घायल हो गया ।[1] दत्ताजी की मृत्यु से उसकी सेना में आतंक छा गया और वह भाग खड़ी हुई ।

पानीपत के युद्ध में मराठों ने अवध के नबाव शुजाउद्दौला तथा रूहेलों को अपनी ओर मिलाने का भरसक प्रयास किया पर वे अब्दाली के सहायक रहे । रूहेला सरदार नजीबुद्दौला मराठों को अपना घोर शत्रु समझता था । मराठों ने उसके साथ पहले बड़ा कठोर व्यवहार किया था ।[2] इसको वह कभी नहीं भूल सकता था । पानीपत के युद्ध में जब भाऊ ने अब्दाली के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा तो नजीबुद्दौला ने ही उसका कड़ा विरोध किया था ।[3] उसके हृदय में मराठों के प्रति ऐसी घोर शत्रुता थी कि वह इस युद्ध में लड़ते-लड़ते मर जाना अच्छा समझता था, किन्तु मराठों के साथ किसी प्रकार की सन्धि नहीं करना चाहता था ।[4]

इस प्रकार विभिन्न तथ्यों के विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मराठों और रूहेलों का सम्बन्ध सदा शत्रुतापूर्ण रहा । मराठे उत्तर भारत में आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे किन्तु रूहेलों के प्रबल विरोध के कारण वे सफल नहीं हो सकते थे । मराठों को दबाने के लिए ही रूहेला सरदार नजीबुद्दौला ने अपने सजातीय पठान अहमदशाह को आक्रमण के लिए निमन्त्रित किया था । यह मराठों की व्यक्तिगत कमजारी थी कि वे अपने सहधर्मी जाटों और राजपूतों की सहानुभूति खो चुके थे और उनसे कोई सहायता नहीं प्राप्त कर सके । परिणाम स्वरूप पानीपत में हुए 14 जनवरी 1761 के युद्ध में उनकी शक्ति का ही पतन हो गया साथही उत्तरी भारत में हिन्दू राज्य स्थापित करने का उनका स्वप्न भी चूर हो गया ।

1- हरीराम गुप्ता, मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 169·

2- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ दी मुगल इम्पायर, भाग 2, पृ0 266·

3- काशीराज, पृ0 37; हरीलाल मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 208·

5- सियन-उल-मूत खारीन, जिल्द 3, पृ0 99·

मराठा-जाट सम्बन्ध -

मराठा और जाटों का पारस्परिक सम्बन्ध उस समय से आरम्भ होता है जब वजीर सफदरजंग ने पठानों तथा रूहेलों को दबाने के लिए मराठों को बुलाया। वजीर ने अपने इन मराठा और जाट-मित्रों की सहायता से अहमद खाँ बंगश को हराकर[1] उसे कुमायूँ की पहाड़ियों में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। भारत के पठानों ने अहमदशाह अब्दाली से सहायता की अपील की। अतः अब्दाली ने 1751 ई0 के अन्त में पंजाब में पुनः प्रवेश किया और सम्राट् ने वजीर को कुमायूँ की पहाड़ियों के हमले से वापस बुलालिया। वजीर ने सिंधिया और होल्कर से समझौता किया और अब्दाली को मार भगाने के लिए दिल्ली की ओर कूच किया। यह समझौता 22 अप्रैल, 1752 ई0 को हुआ था।[2] इस समझौते के अनुसार पेशवा को आगरा और अजमेर का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया था। आगरा को भरतपुर का जाट राजा सूरजमल हड़पना चाहता था।[3] अतः मराठों और जाटों में वैमनस्य का होना स्वाभाविक था।

जब वजीर सफदरजंग ने 1751-52 में रूहेलखण्ड पर आक्रमण किया तब जाटों ने उसकी सैनिक सहायता की।[4] 20 अक्टूबर 1752 को कृतज्ञ वजीर ने बादशाह को प्रेरित करके सूरजमल जाट के पिता बदन सिंह को राजा महेन्द्र की उपाधि देकर भरतपुर का राजा बनवाया। इसी प्रकार उसके पुत्र सूरजमल को कुँअर बहादुर राजेन्द्र की उपाधि दी।[5] कुछ दिन पश्चात् उसने सूरजमल को मथुरा का फौजदार नियुक्त करवाया। इससे आगरा प्रान्त में यमुना के दोनों किनारों पर और

1- नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृ0 61-63.

2- कैम्ब्रीज, हिस्ट्री आफ् इण्डिया, भाग 4, पृ0 415.

3- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, खण्ड 6, प्रलेख 57,

4- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 3, पृ0 257; देखे सूदन-सुजान चरित, पृ0 100.

5- तारीखे अहमदशाही, पृ0 43; देखे, सरकार; मुगल साम्राज्य का पतन, खण्ड 2, पृ0 271.

आगरा के आस-पास उसका शासन जम गया और वहाँ से वह वार्षिक कर ग्रहण करने लगा ।[1] जाटों के अभ्युदय में यह पहला कदम था ।

कुम्हेर का घेरा तथा मराठा-जाट वैमनस्य -

मराठों और जाटों का वैमनस्य उस समय उग्र हो गया जब मराठों ने सूरजमल के कुम्हेरगढ़ का घेरा डाला । पेशवा ने पहले से ही अपने 18 वर्षीय भाई रघुनाथ राव को 1753 ई0 को बरसात में उत्तर का अनुभव करने के लिए भेज दिया था ।[2] वह दिसम्बर में जयपुर पहुँचा था । उसने मल्हार राव होल्कर को सूरजमल के सुदृढ़ किले कुम्हेर का घेरा डालने के लिए भेज दिया ।[3] जाट राजा ने युद्ध को टालने का बहुत प्रयत्न किया । उसने अपने विश्वास पात्र दूत के द्वारा चालीस लाख रुपये देकर सन्धि करनी चाही ।[4] किन्तु रघुनाथराव ने बड़े अनादर के साथ इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया । उसने कुम्हेर के घेरे की आज्ञा दे दी ।[5] घेरा जनवरी से मई 1754 तक चार माह रहा । इसी बीच मल्हारराव का पुत्र खण्डेराव मारा गया ।[6] जाटों ने मराठों का इतनी बहादुरी से सामना किया कि मराठे केवल किले को जीतने में ही असफल नहीं हुए, अपितु उन्हें 3 वर्ष की किस्तों में 30 लाख रुपया देना भी स्वीकार करना पड़ा ।[7] उन्हें कुम्हेर का घेरा उठालेना पड़ा । जिस समय जाटों का युद्ध हो रहा था उसी समय मल्हार राव ने

1-तारीखे आलमगीरसानी, पृ0 58 बी; देखें, पी0सी0 चन्दावत, महाराजा सूरजमल और उनका युग पृ0 84; जयपाल एजेन्सीज, आगरा ।

2- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, रिकार्ड - पत्र 104.

3- जी0एस0 सर देसाई, मराठी रियासत, खण्ड 2, पृ0 317.

4- के0आर0 कानूनगो, हिस्ट्री आफ द जाट्स, पृ0 40.

5- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, खण्ड 21, पृ0 137.

6- काशीनाथ साने, भाऊ साहिब चीभाखर, भाग 2, पृ0 18.

7- यदुनाथ सरकार, फाल आफ द मुगल अम्पायर, भाग 2, पृ0 180.

इमादुलमुल्क के साथ सिकन्दराबाद के पास सम्राट् के शिविर पर आक्रमण करके न केवल उसे लूटा अपितु मराठा सैनिकों ने शाही हरम की महिलाओं का शील भंग भी किया ।[1] वह दिल्ली तक मीरबख्शी के साथ गया । वहाँ पर इमादुलमुल्क ने सम्राट् अहमदशाह को मारकर आलमगीर द्वितीय को, जून 1754 ई0 में गद्दी पर बिठा दिया और स्वयं वजीर बन गया ।[2] रघुनाथ राव और जयप्पा सिंधिया शीघ्र ही दिल्ली पहुँचे । इमादुलमुल्क ने इनको सहायता के रूप में 82 लाख रुपया देने का बचन दिया ।[3] रघुनाथ राव 5 माह तक नये सम्राट तथा वजीर से धन पाने की आशा में दिल्ली के पास ही चक्कर काटता रहा । बाद में वह ग्वालियर होते हुए पूना वापस चला गया ।[4] इस प्रकार रघुनाथ राव अक्टूबर 1753 ई0 से अगस्त 1755 ई0 तक अपने दो वर्ष के हमलों के उद्देश्य में असफल रहा । कुम्हेर के घेरे के बाद मराठों और जाटों में वैमनस्य बढ़ गया ।

इस घेरे की समाप्ति के समय सूरजमल का राज्य ज्यों का त्यों था और उसकी प्रतिष्ठा पहले से भी अधिक बढ़ गई थी । उसका मुख्य लक्ष्य मराठों से पीछा छुड़ाना था और इसमें वह पूरी तरह सफल रहा । कुम्हेर की सफल रक्षा के कारण सूरजमल की ख्याति सारे हिन्दुस्तान में फैल गई ।[5]

कुम्हेर का घेरा उठ जाने से सूरजमल को कुछ चैन मिला जिसकी उसे बहुत आवश्यकता थी ।[6] उसके साधन लगभग समाप्ति की सीमा तक पहुँच गये थे । प्रशासनिक, वित्तीय तथा सैनिक स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए उसे कुछ देर

1- नटवर सिंह, पू0 3, पृ0 77.

2- इब्राहिमखाँ, तारीखे इब्राहीमी, पृ0 482.

3- मराठ्यांच्या इतिहासाची साधने, खण्ड 3, पृ0 82.

4- जे0जी0 डफ, हिस्ट्री आफ द मराठाज, भाग 2, पृ0 138.

5- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 162.

6- नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृ0 79.

विश्राम की आवश्यकता थी ।[1] दिल्ली की दशा और भी अधिक बिगड़ गई थी ।[2] इससे सूरजमल को मराठों से समझौता करके छोटे-मोटे लाभ उठाने का अवसर मिल गया ।[3]

सन् 1754 के उत्तरार्ध में मराठों की एक बड़ी सेना ने रघुनाथ राव के नेतृत्व में दिल्ली के चारो ओर के प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया । उसे सूरजमल के साथ समझौता करना नीति-संगत जान पड़ा ।[4] इस फैसले के अनुसार जाट राजा इसबात पर सहमत हो गया कि मराठों की लड़ाईयों में वह उनका विरोध नहीं करेगा । उत्तर भारत में जब मराठों की सेना का कूच होगा तब वह रोक-टोक नहीं करेगा ।[5] यद्यपि कोई भी समकालीन फारसी अथवा मराठी स्रोत इस प्रकार के किसी समझौते की पुष्टि नहीं करती है ।[6] उस समय आगरा के प्रान्त में बहुत सा प्रदेश मराठों के हाथ में था । रघुनाथ राव ने सूरजमल को यह इजाजत दे दी कि वह इस प्रदेश पर कब्जा कर सकता है ।[7] सूरजमल और उसके पुत्र जवाहर सिंह ने पलवल पर अधिकार कर लिया, बल्लभगढ़ वापस ले लिया । सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसने मार्च, 1756 में अलवर को भी अपने नियंत्रण में कर लिया ।[8] किन्तु यह सब काम निर्विघ्न नहीं हो रहा था । अब एक नये

1- डा० गिरीशचन्द्र द्विवेदी, द जाट्स, पृ० 85.

2- वही, पृ० 89.

3- भाऊ साहेबांची बखर, पृ० 123.

4- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 6, पृ० 409.

5- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 2, पृ० 221.

6- प्रो० गिरीशचन्द्र द्विवेदी, द जाट्स, पृ० 155.

7- आर०वी० नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० 138.

8- तारीखे अहमदशाही, पृ० 720; देखें- पी०सी०चन्दावत, महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ० 127.

व्यक्ति ने साम्राज्य के मामलों में प्रवेश किया, जो बाद में बहुत भयावह सिद्ध हुआ । वह था – अफगान रुहेला नजीब खाँ ।[1] सूरजमल को इस नवागन्तुक की उपस्थिति का अनुभव तुरन्त ही करना पड़ा । इसके साथ सूरजमल की एक सन्धि हुई जो 'डासना की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है ।

अब्दाली के आक्रमण और मराठा-जाट सम्बन्ध –

1756 ई0 में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय मराठों और जाटों के सम्बन्ध असन्तोषप्रद थे । पंजाब को जीतने के बाद अब्दाली जब दिल्ली की ओर बढ़ा तब वहाँ के अधिकांश लोगों ने अपने स्त्री-बच्चों को राजधानी से बाहर मथुरा भेज दिया ।[2] मथुरा सूरजमल जाट के अधीन था । वजीर ने सूरजमल और मराठा प्रतिनिधि अन्ताजी मानकेश्वर को पत्र भेजा । सूरजमल का विचार था कि अब्दाली के खिलाफ युद्ध का नेतृत्व वजीर को अपने हाथ में लेना चाहिए और रुहेलों, जाटों, राजपूतों और मुगलों को इकट्ठा संगठित कर लेना चाहिए ।[3] उसका यह भी विचार था कि वजीर मराठों को नर्मदा के पार भेज देना चाहिए और उसके बाद अब्दाली से निपटना चाहिए ।[4] किन्तु वजीर मराठों को छोड़ना नहीं चाहता था, इसलिए किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सका और सूरजमल भरतपुर लौट गया ।[5]

18 जनवरी 1757 को अब्दाली का आक्रमण हुआ, इसका प्रतिरोध केवल अन्ताजी मानकेश्वर ने किया, किन्तु वह आसानी से पराजित हो गया ।[6] 27 जनवरी को अब्दाली ने दिल्ली के बाहरी अंचल में प्रवेश किया । आगे उसे सूरजमल पर आक्रमण करना था । जाट राजा ने अन्ताजी मानकेश्वर और इमाद के परिवार को संरक्षण दिया था ।[7] इसलिये अब्दाली उसपर विशेष क्रोधित हो

1- गुलिस्ताने रहमत, पृ0 78·
2- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 210·
3- अन्ताजी काशीराज, पृ0 128·
4- नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृ0 33·
5- सियार उल मुतखारीन, जिल्द 3, पृ0 82; देखें- नटवर सिंह (पू·उ·), पृ0 88·
6- गुलामअली कृत इमाद उल सआदत, जिल्द 2, पृ0 196·
7- सिलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 2, पृ0 125·
8- कानूनगो, हिस्ट्री आफ द जाट्स, पृ0 87·

गया था। उसने मथुरा पर आक्रमण किया, जहाँ जवाहर सिंह सुरक्षा में नियुक्त था। जवाहर सिंह मथुरा की रक्षा नहीं कर पाया। मथुरा में भीषण लूट और रक्तपात हुआ।[1] अब्दाली का विचार आगरे पर आक्रमण करने का था पर महामारी फैल जाने के कारण उसके सैनिक आग्रा बढ़ने से इनकार कद दिये, अब्दाली सूरजमल से रुपये लेकर वापस लौट गया।[2] इस प्रकार सूरजमल आक्रमण से बच गया। अब्दाली के वापस जाते ही दिल्ली के आस-पास अराजकता फैल गयी। अभी अब्दाली लाहौर तक ही पहुँचा था कि असुरक्षा अनुभव करते हुए इमाद ने मराठों को दिल्ली आने को कहा।[3] रघुनाथ राव की राह में जो भी पड़ा उसे रौंदते हुये आकर उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया, पुन: पंजाब पर चढ़ाई की, और अब्दाली के पुत्र तैमूरशाह को वहाँ से खदेड़ कर अप्रैल 1758 में लाहौर पर कब्जा कर लिया।[4] यह मराठा शक्ति के उत्कर्ष का चरम विन्दु था।

रघुनाथ राव की विजय अल्पकालिक रही। यह विल्कुल स्पष्ट था कि मराठों ने अपने पाँव चादर से बाहर पसार लिये हैं। किन्तु मराठों ने कोई कार्य-क्रम, कोई योजना कार्यान्वित नहीं की। उन्होंने अपने कार्यों द्वारा उत्तरी भारत के लोगों का प्रेम अर्जित नहीं किया था।[5] रघुनाथ राव की कुल उपलब्धी यह थी कि उसने पेशवा का लगभग देवाला ही निकाल दिया था। अहमदशाह अब्दाली ने पुन: प्रत्याक्रमण किया, रघुनाथ राव सन् 1758 की ग्रीष्मऋतु में दक्षिण लौट गया, फिर भी उसने कुछ समय के लिये मराठों के गौरव और यश को पुन: स्थापित कर दिया था।[6] उसने राजा सूरजमल से एक मित्रतापूर्ण समझौता किया, जिसके अनुसार

1- कानूनगो, हिस्ट्री आफ् द जाट्स, पृ0 37.

2- भाऊ साहिबांची बखर, पृ0 93.

3- देहली क्रोनिकल, नूरूद्दीन, पृ0 36-37.

4- इमाद उस सआदत, पृ0 189.

5- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 139.

6- भाऊ साहेबांची बखर, पृ0 107.

इस जाट राजा ने जो इलाके अपने राज्य में मिला लिये थे उनकी पुष्टि कर दी गयी। इसके लिये सूरजमल ने नजराना देने का वचन दिया।[1]

अहमदशाह के प्रत्याक्रमण करने पर राजा सूरजमल ने युद्ध की पूरी तैयारी की थी।[2] उसकी दृष्टि एक ओर जहाँ मराठों पर थी, वहीं दूसरी ओर अफगानशाह पर थी। सूरजमल की इस दुविधा को कानूनगो ने चित्रित करते हुए लिखा है कि अब उसे अब्दाली और मराठों में से किसी एक को चुनना था।[3] अपने अखिल हिन्दू हितचिंतक आदर्श के कारण उसका रुझान मराठों की ओर विशेष था, जबकि मराठों के व्यवहार से वह अत्यन्त क्षुब्ध था, परन्तु इतनी समझ उसमें थी कि उसने उनके आक्रमणकारी संग्रामों में उनका साथ नहीं दिया।[4] वैसा करने से उसके साधन कम हो जाते और मुसलमान पड़ोसियों से दुश्मनी बढ़ जाती। यह अनौपचारिक जाट मराठा मैत्री शुद्धरूप से रक्षात्मक थी और विदेशी अफगान आक्रमणकारी के विरोध में की गई थी।[5] इस अवधि में अनेक अवसरों पर इस महान जाट सरदार द्वारा अभिव्यक्त अनेक राजनीतिक विचार अत्यधिक प्रसंशनीय थे, और यदि मराठा सरदारों ने उनके अनुरूप आचरण किया होता तो हिन्दुस्तान में उनकी वास्तविक प्रभुता बहुत समय तक अटल रहती।[6]

सूरजमल अपने घर का मालिक स्वयं था, तथा वह जो भी निर्णय लेता था उसपर एतराज करने वाला कोई नहीं था।[7] परन्तु मराठों की स्थिति ऐसी

1- नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृ0 38.
2- गंडासिंह, अहमदशाह अब्दाली, पृ0 130.
3- गिरीशचन्द्र द्विवेदी, द जाट्स, पृ0 102.
4- कानूनगो, हिस्ट्री आफ् द जाट्स, पृ0 78.
5- वही, पृ0 79-80.
6- तारीखे मुजफ्फरी, पृ0 185.
7- सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 192.

नहीं थी । सिंधिया और होल्कर घरानों में चिरकाल से मतभेद चले आ रहे थे और पूना में पेशवा के शिविर में विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रभावशाली व्यक्तियों में खींचतान चलती रहती थी ।[1]

सन् 1758 में भावाजी सिंधिया के अधीन एक छोटे से सैन्य दल को लाहौर में छोड़कर मुख्य मराठा सेना पंजाब से चल पड़ी ।[2] इस समय सूरजमल ने यह सुझाव दिया था कि नजीबउद्दौला को अलग कर दिया जाय तथा अब्दाली के लिये पंचमार्गी के रूप में कार्य कर रहे अन्य रुहेला सरदारों का दमन कर दिया जाय । रघुनाथराव और दत्ताजी सिंधिया सूरजमल के विचारों से सहमत थे, किन्तु मल्हार राव होल्कर इससे सहमत नहीं थे ।[3] सूरजमल ने यह भी प्रस्ताव रखा था कि इमाद से पिण्ड छुड़ाकर सफदरजंग के पुत्र शुजाउद्दौला को वजीर का पद दिया जाय । इस बार पुन: मल्हार राव ने ठीक उल्टा एक प्रस्ताव ला रखा ।[4] उसने अपने धर्मपुत्र नजीब का समर्थन किया । उसकी सहायता से वह शुजाउद्दौला को कुचल कर अवध पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकता था ।[5] इस प्रकार पारस्परिक गतिरोध होने के कारण मराठों और जाटों में अब्दाली के विरुद्ध कोई संयुक्त मोर्चा नहीं बन सका । नवाब शुजाउद्दौला को मल्हार राव की योजनाओं की भनक मिल गयी ।[6] यद्यपि वह भारत पर आक्रमण करने के लिये अब्दाली को निमन्त्रित करने के पक्ष में नहीं था, फिर भी उसने नजीब से समझौते

1- सर देसाई न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 2, पृ0 200.

2- गिरीशचन्द्र द्विवेदी, द जाट्स, पृ0 108.

3- तारीखे आलमगिरसानी, पृ0 125 बी.

4- देहली क्रोनिकल, नूरूद्दीन, पृ0 308.

5- नटवर सिंह, महाराजा सूरजमल, पृ0 52.

6- मराठांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 237.

की बातचीत शुरू कर दी थी ।[1]

अब्दाली के आक्रमण ने 1760 में दत्ताजी सिंधिया की बादली में पराजय हुई और वह मार डाला गया । जनमोजी सिंधिया बच तो गया पर बहुत बुरी तरह घायल हो गया ।[2] उसे और मराठा महिलाओं को सूरजमल जाट के यहाँ कुम्हेर ले जाया गया, जहाँ सूरजमल ने उनकी देखभाल की ।[3] यद्यपि सूरजमल तटस्थता की नीति अपनाये हुये था, फिर भी संकट काल में अब्दाली के प्रतिशोध का भय उसे आगे बढ़कर मराठों का साथ देने से रोक न सका ।[4] कुम्हेर के घेरे के दिनों में जियाजी सिंधिया ने उसका जो उपकार किया था उसे इस जाट ने भुलाया नहीं था ।[5]

सूरजमल को यह ज्ञात था कि अब्दाली जिन लोगों को दण्ड देना और सीधा करना चाहता है और जिन लोगों का राजकर बहुत समय से बकाया है, उनकी सूचि में उसका नाम बहुत ऊपर है ।[6] जनवरी 1760 के प्रथम सप्ताह में अब्दाली दिल्ली पहुँच गया, तथा राजधानी का मालिक बन बैठा । वह सूरजमल को दबोचने के लिये बैचेन था ।[7] 14 जरवरी को उसने सूरजमल को पत्र भेजे जिसमें उसने राजकर के साथ उपस्थित होने को कहा गया था । सूरजमल ने इसकी पूर्ति की ।[8]

इस प्रकार जाटों और मराठों के पारस्परिक सम्बन्ध अनेक अवसरों पर

1- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 237.

2- भाऊ साहेबांची बखर, पृ0 113.

3- कानूनगो, हिस्ट्री आफ् द जाट्स, पृ0 60.

4- सुजान चरित, पृ0 228.

5- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ0 235.

6- कानूनगो, हिस्ट्री आफ् द जाट्स, पृ0 73.

7- ज्वाला सहाय, हिस्ट्री आफ् भरतपुर, पृ0 47.

8- गंडा सिंह, अहमदशाह अब्दाली, पृ0 186.

कूटनीतिक दिखाई देते हैं। सूरजमल एक तरफ जहाँ कुशल प्रशासक, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ ज्ञात होता है, वहाँ दूसरी तरफ मराठों के कृत्य हमेशा कुटिल तथा स्वार्थपरता से युक्त मिलते हैं। यही कारण है कि मराठों और जाटों के सम्बन्धों में हमेशा उतार-चढ़ाव दिखाई देते हैं।

षष्ठ अध्याय -

मराठों के राजपूतों और बुन्देलों के साथ सम्बन्ध

मराठों के राजपूतों और बुन्देलों के साथ सम्बन्ध

औरंगजेब के काल में राजपूतों के अनेक राज्य मालवा, गुजरात तथा राजस्थान में विद्यमान थे। इनमें राठौर राजा जसवन्त सिंह तथा सवाई राजा जयसिंह मुख्य था। ये दोनों प्रमुख मुगल मनसबदार भी थे। राजपूतों के सहयोग से ही मुगलों ने मराठों के दमन का प्रयास किया था। मध्यदेश में बुन्देलों के राज्य पर छत्रसाल का शासन था। मराठों ने मुगल आक्रमण के समय छत्रसाल की सुरक्षा भी की थी। जिसके फलस्वरूप उन्हें बुन्देला राज्य के कुछ भाग मिल गये थे। प्रस्तुत अध्याय में मराठों के राजपूतों एवं बुन्देलों के साथ रहे सम्बन्धों पर विस्तार से विचार किया जाएगा।

मराठा-राजपूत सम्बन्ध -

मराठों का पहला सम्बन्ध राठौर राजा जसवन्त सिंह के साथ हुआ। जसवन्त सिंह (1638-1678 ई0) मारवाड़ का वंशानुगत शासक था। वह छ: हजार जात छ: हजार सवार का मुगल मनसबदार था, जिसे महाराज की पदवी दी गई थी।[1] उसकी सेवा के बदले में औरंगजेब ने 19 मार्च, 1659 ई0 को उसे गुजरात की सूबेदारी प्रदान की। 15 अप्रैल, 1659 ई0 को जसवन्त सिंह ने अहमदाबाद में अपना नया कार्य-भार ग्रहण किया।[2] जसवन्त सिंह गुजरात में अप्रैल 1659 से जुलाई 1662 तक रहा। इस अवधि में उसने स्थानीय विद्रोहों विशेषत: नेवेदा के दूदा कोली के विद्रोह को दबाया। जसवन्त सिंह ने उसे पेशकश देने व शाही सेवाओं में आने के लिए बाध्य किया। इससे बादशाह की

1- आलमगीरनामा, पृ0 56-57.

2- मआसिर-ए-आलमगीर, 7 ब; मआसिर-उल-उमरा -3, पृ0 600.

दृष्टि में जसवन्त सिंह का मान बढ़ गया ।[1] अब बादशाह ने उसे शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए दक्षिण में सूबेदार शाइस्ता खाँ के साथ नियुक्त किया । वह जुलाई 1662 में दक्षिण गया ।[2] उसने पूना के पास अपना मुख्य आवास स्थापित किया । नगर में शाइस्ता खाँ का निवास था, अत: सिंहगढ़ की ओर जानेवाली सड़क पर उसने डेरा डाल दिया ।[3] नगर की वाह्य सुरक्षा का भार जसवन्त सिंह को दिया गया और आन्तरिक सुरक्षा का दायित्व शाइस्ता खाँ के सैनिकों पर था, जो महल के चारों ओर फैले हुए थे । शिवाजी ने 5 अप्रैल 1663 की रात्रि को शाइस्ता खाँ के महल पर अचानक आक्रमण कर दिया ।[4] बिना प्रतिरोध के वह किले में प्रविष्ट हुआ । शाइस्ता खाँ सो-रहा था । शिवाजी ने तलवार के वार से उसके हाथ की उँगलियाँ काट ली । किसी प्रकार उसने भाग कर अपनी जान बचाई । बिना प्रतिरोध एवं हानि के शिवाजी किले से बाहर निकलने में सफल हुआ । शाइस्ता खाँ के दो पुत्र एवं अनेक सेवक इस आक्रमण में मारे गए ।

इस घटना के कारण दक्षिण में मुगल प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा ।[5] इसने एक विवाद को जन्म दिया कि क्या जसवन्त सिंह शिवाजी से मिला हुआ था ? अथवा शिवाजी ने अकेले ही बिना उसकी सहायता के; जो कि कमान में उस समय दूसरे स्थान पर था, यह कृत्य किया ? समकालीन और अर्द्ध समकालीन अभिलेखों[6] के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि जसवन्त सिंह शिवाजी

1- मआसिर-ए-आलमगिरी, 15 ब दिलखुस 1, पृ0 44.

2- फतूहात-ए-आलमगिरी, 50 ब दिलखुस 1, पृ0 44.

3- एफ0आर0 (सूरत), भाग 103, पृ0 268.

4- डा0 यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 358.

5- कवीन्द्र परमानन्द, श्री शिव भारत, पृ0 18.

6- वी0का0 राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, पृ0 65.

के साथ मिला हुआ था । इसीलिए उसने अपने सूबेदार की मदद नहीं की और न ही मराठों को रोकने का प्रयत्न किया । इसकी पुष्टि कई सूत्रों ने की है ।[1]

जसवन्त सिंह और शिवाजी -

शाइस्ता खां के प्रस्थान के बाद दक्षिण में मुगल हितों की रक्षा का दायित्व जसवन्त सिंह को दिया गया । उसने शीघ्र ही मराठा शक्ति का केन्द्र कोचाना के किले पर आक्रमण कर दिया ।[2] 15 मार्च, 1664 के हमले में राठौर सेनापति सुन्दर दास न केवल असफल रहा अपितु 20 राठौर मारे भी गए ।[3] मराठों के रक्षा प्रबन्ध अभेद्य थे । अप्रैल में एकबार पुन: राठौरों ने किले में सेंध लगाकर किलेबन्दी तोड़नी चाही । किले की दीवार में सौ-गज की दरार पड़ गई ।[4] 50 या 60 मराठे सिपाही मारे गये, परन्तु आक्रमण कारियों को किले में प्रवेश करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी ।[5] 6 मई को पुन: दीवार तोड़ने का प्रयत्न किया गया । इसबार 700 सैनिक किले की दीवार को पार कर गये । घमासान युद्ध हुआ, जिसके फल स्वरूप दोनों पक्षों को काफी हानि उठानी पड़ी ।[6] एक सप्ताह बाद एक और झड़प हुई । वर्षा प्रारम्भ होते ही राठौरों और मुगलों की स्थिति कमजोर होने लगी । कोचाना के किले पर अधिकार सम्भव नहीं था ।[7] अत: जसवन्त सिंह ने किले का घेरा हटा लिया और पूना चला आया । वर्षा के महीनों तक राठौर शासक पूना में ही रहा । उसने औरंगाबाद

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 1, पृ0 315.

2- डा0 सरकार, शिवाजी और उनका युग, पृ0 25.

3- एम0जी0 रानाडे, राइज़ आफ द मराठा पावर, पृ0 78.

4- रालिन्शन, शिवाजी, द मराठा, पृ0 120.

5- आलमगिरीनामा, पृ0 867.

6- फतूहात-ए-आलमगिरी 52 अ ।

7- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 218.

से अपनी रानियों को बुलवा लिया ।[1] जब पांचोली केसरी सिंह 2100 सैनिकों के साथ औरंगाबाद से पूना जा रहा था तो मार्ग में मराठों से मुठभेड़ हुई ।[2] जो कि मुगल क्षेत्र में लूट-मार कर रहे थे । राठौर शक्ति के समक्ष मराठे टिक न सके और वे भाग गये ।[3]

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने में जसवन्त सिंह असफल रहा । उसके स्थान पर आमेर के शासक मिर्जा राजा जयसिंह को भेजा गया । 14 मई 1665 को जसवन्त सिंह दिल्ली वापस आ गया ।[4] दरबार में पहुँचने पर बादशाह ने उसे गले लगाया तथा खिलअत एवं रत्न जटित तलवार प्रदान कर उसका सम्मान किया ।[5] 12 मई, 1666 को बादशाह की 50वीं जन्म तिथि के समारोह में भी जसवन्त सिंह को सम्मान सूचक खिलअतें दी गई ।[6] उस समय पंच-हजारी मनसबदारों की श्रेणी में शिवाजी भी उपस्थित था ।[7] जसवंत सिंह के शाही सम्मान से वह क्रोधित हो उठा । उसने जिस राठौर शासक को पराजित किया था वह तो सम्मानित हो और वह स्वयं पांच-हजार का मनसबदार ही रहे, यह बात वह सहन नहीं कर सका । दरबार में उसने इसका खुला विरोध किया ।[8] इस अनुशासन हीनता के लिए शिवाजी को हिरासत में ले लिया गया । कैद में जयसिंह के पुत्र रामसिंह को उसपर निगरानी रखने का भार सौंपा गया ।[9]

1- डा0 यदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज टाइम, पृ0 136.
2- भीमसेन बुरहानपुरी, नुक्सा ए दिलकशा, पृ0 82.
3- डा0 आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 68.
4- आलमगीरनामा, पृ0 884.
5- वही, पृ0 884.
6- पार काल दास की दीवान कल्याण दास की रिपोर्ट ज्येष्ठ वदी 7 वि0सं0 1723.
7- उपर्युक्त, आलमगीरनामा, पृ0 958.
8- उपर्युक्त, पृ0 960.
9- उपर्युक्त, पृ0 969.

शाही दरबार में शिवाजी का आचरण अप्रत्याशित था । जसवन्त सिंह ने वजीर जफर खाँ और जहानआरा बेगम का समर्थन पाकर 16 मई को बादशाह से प्रार्थना की कि शिवाजी को इस प्रकार के कार्य के लिए कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए । अन्यथा इस अनुशासनहीनता का कुप्रभाव समस्त साम्राज्य पर पड़ेगा ।[1] ऐसी स्थिति में बादशाह ने शिवाजी को मृत्युदण्ड या देश निर्वासन का दण्ड देने का निर्णय लिया गया ।[2] परन्तु शिवाजी अत्यन्त सजग था । अगस्त 1666 ई0 में एक जाली दस्तखत की सहायता से वह मुगल कैद से भाग निकला तथा नारनौल होते हुए बिना रुके दक्षिण की ओर चल पड़ा ।[3] मुगल दरबार में भगदड़ मच गई । शिवाजी के भागने के पीछे बादशाह ने रामसिंह और परोक्ष रूप से मिर्जा राजा जयसिंह का हाथ माना । मार्च 1667 में शाहजादा मुअज्जम और जसवन्त सिंह को शिवाजी के विरुद्ध दक्षिण भेजा गया ।[4]

दोनों अनुभवी सेनापति 12 मई को बुरहानपुर और 20 मई को औरंगाबाद पहुँचे ।[5] आगरा से लौटकर शिवाजी अपने राज्य के प्रशासन और सैनिक शक्ति को पुन: संगठित करने में लग गया ।[6] इस समय शिवाजी शान्ति चाहता था । अत: उसने जसवंत सिंह से सम्पर्क स्थापित किया । इस समय जसवन्त और मुअज्जम भी सन्धि के लिए तैयार थे । इसके दो कारण थे, प्रथम – दक्षिण में मुगलों के पैर अभी जमे नहीं थे । दूसरा, दोनों के शत्रु दिलेरखाँ की नियुक्ति दक्षिण में

1- उपर्युक्त ज्येष्ठ वदी 8, वि0सं0 1723.

2- अख़बारात दिनांक 8 जिलहज्जा, 9वीं शासनवर्ष, 12 अप्रैल, 1666.

3- वाकुकानी को दीवान कल्याण दास की रिपोर्ट, भाद्रपदी शुदी 7 वि0सं0 1723/26.

4- उपर्युक्त चैत्र शुदी 13, वि0सं0 1724/27 मार्च, 1667.

5- अखबारात दिनांक 11 जिलहज्जा, 10वीं शासनवर्ष 21 जून, 1667.

6- सभासद, पृ0 58.

कर दी गई थी ।[1] शिवाजी द्वारा भेजे गये शान्ति प्रस्ताव को शाहजादे ने स्वीकार करलिया । बात करने हेतु गोविन्द राय और रणछोड़ दास को 20 सितम्बर को शिवाजी के पास भेजा गया ।[2] इस संधि हेतु औरंगजेब के पास भेजे गए मसविदे में निम्नलिखित प्रस्ताव थे ।[3]

§1§ मुगलों की सेवा में शिवाजी एक मराठा टुकड़ी भेजेगा, जो औरंगाबाद में रहेगी ।

§2§ शिवाजी मुगल सत्ता को स्वीकार करेगा; बादशाह उसे राजा की उपाधि देगा तथा मुगल क्षेत्रों से उसे देशमुखी वसूल करने का अधिकार भी दिया जायेगा ।

§3§ उसके शत्रु शम्भाजी को मनसब दिया जायेगा ।

§4§ शिवाजी को जागीर दी जायेगी ।

औरंगजेब ने इनमें से कई प्रस्ताओं को स्वीकार कर लिया । शम्भाजी को 5 हजार का मनसब दिया गया । शिवाजी को बरार की जागीर प्रदान की गई । बाकी प्रस्तावों के सम्बन्ध में सूचना भेजी गई कि वे विचाराधीन थे ।[4] मनसब प्राप्त करने के लिये शम्भाजी शाहजादे के खेमे में गया । शाहजादे ने उस पंच-हजारी मनसब का अधिकार-पत्र एवं शिवाजी के लिए वरार में जागीर का एक पट्टा प्रदान किया ।[5] मार्च 1668 को शाहजादे ने शिवाजी को सूचित किया कि बादशाह ने उन्हें राजा की पदवी प्रदान कर दी ।[6] उसने इस बातपर

1- दिलखुशा 1, पृ0 66-68.

2- मारवाड़ ख्यात् 1, पृ0 241.

3- अखतारात दिनांक 24, रवी-उल-आखीर ।

4- उपर्युक्त 24, रवी-उल-आखीर ।

5- दिलखुशा 1, पृ0 70.

6- शिवाजी को मुअज्जम का निशान, दि0 5 शब्वल ।

जोर दिया कि मराठा टुकड़ी शीघ्रातिशीघ्र औरंगाबाद भेजी जाय ।[1] अगस्त में नीराजी राव जी और प्रतापराव के नेतृत्व में मराठा सेना शाहजादे की सेवा में भेजी गई । इस सेना को दो भागों में विभाजित किया गया । एक भाग औरंगाबाद में रखा गया और दूसरा भाग बरार में भेज दिया गया ।[2] 1667 से 1669 तक के काल में मुगल-मराठा सम्बन्धों में शांति रही । जसवन्त सिंह और मुअज्जम शिवाजी की ओर से निश्चिंत हो गए और शिवाजी मुगल सेना के आधार पर अपनी सेना को संगठित करने में लगा रहा । अत: जब 1669 ई0 के अन्त में शिवाजी ने बरार और औरंगाबाद से अपनी सैनिक टुकड़ियाँ वापस बुलाकर मुगलों पर अकस्मात आक्रमण करना आरम्भ किया तो मुगलों के लिए यह स्थिति अप्रत्याशित थी । इसपर बादशाह ने दिलेर खाँ को जनवरी 1670 में औरंगाबाद भेजा । जसवंत सिंह और मुअज्जम को यह ठीक नहीं लगा । उन्होंने दिलेर खाँ का विरोध किया और ताप्ती तक पीछे हटने के लिए उसे विवश किया ।[3]

बादशाह को अपने पुत्र और राठौर शासक का आचरण नागवार लगा । जहाँ तीनों मिलकर शिवाजी के विरूद्ध अभियान करते वहाँ वे गृह-युद्ध में लिप्त हो गये थे । उसे सन्देह हुआ कि शिवाजी जसवंत सिंह और मुअज्जम से निकट संबन्ध स्थापित कर रहा था । इनकी दिलेर खाँ के विरूद्ध कार्यवाही साम्राज्य के हित में नहीं थी ।[4] अत: सितम्बर 1670 में उसने जसवंत सिंह को मुअज्जम से अलग कर दिया । कुछ समय तक उसे बुरहानपुर में रखा गया । जिससे वह उस ओर से मराठों के हमलों को रोक सके ।[5] इसके लिए उसे तीन-चार लाख रूपये भी

1- अखबारात दि0 24.

2- दिलखुशा 1, पृ0 70.

3- अखबारात दि0 12वाँ शासन वर्ष ।

4- दिलखुशा 1, पृ0 101.

5- एस0 मास्टर का सूरत फैक्ट्री के अध्यक्ष को पत्र, 19 दि0, 1670 ई0

दिये गये ।[1] साथ में उसे आदेश दिये गये कि वह महावत खाँ से सहयोग करे ।[2] अगलेवर्ष उसे गुजरात भेज दिया गया ।[3] फिर उसका स्थानान्तरण जमरूद (पेशावर के पास) कर दिया गया ।[4] 10 सितम्बर 1678 को वहाँ उसकी मृत्यु हो गई ।[5] जसवंत सिंह का दक्षिण अभियान मराठों के प्रति उसकी निष्क्रियता का प्रतीक था ।[6] 1667-69 की विराम-सन्धि का लाभ वह नहीं उठा सका । जहाँ शिवाजी ने अत्यन्त कूटनीतिक चाल से मुगल सेनापति को निष्क्रिय कर दिया था ।[7] वहाँ मुअज्जम और जसवंत सिंह दोनों शिवाजी की इमानदारी के प्रति विश्वस्त बने रहे । जसवंत सिंह और दिलेर खाँ का व्यक्तिगत द्वेष मुगल प्रतिष्ठा के लिए हानिकर रहा ।[8] तत्कालीन मराठा खतरे के प्रति उनकी उपेक्षा ने शिवाजी को शक्तिशाली बना दिया । जसवंत सिंह को दक्षिण से हटाना बादशाह के लिये अनिवार्य हो गया था ।[9] पर साम्राज्य को इसका कुछ भी लाभ नहीं हुआ, मराठों की शक्ति बढ़ती ही गई ।

औरंगजेब के बाद मराठा-राठौर सम्बन्ध -

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मराठा-राठौर, सम्बन्धों पर हमारे स्रोत मौन हैं । यह इस तथ्य के कारण हो सकता है कि अजीत सिंह 1707 से 1710 तक अपने राज्य को मुगल साम्राज्य से मुक्त रखने के लिए व्यस्त रहा ।[10] और

1- एस0मास्टर का सूरत फैक्ट्री के अध्यक्ष को पत्र 19 दि0 1670 ई0
2- ओरिजिनल करेसपोण्डेन्स, भाग 31, नं0 3547·
3- फतूहात-ए-आलमगिरी 60 ब ।
4- मयासीर ए0 आलमगिरी, पृ0 109·
5- वही, पृ0 171·
6- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 2, पृ0 212·
7- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 1, पृ0 209·
8- सर देसाई, मराठा रियासत (मध्य विभाग), पृ0 211·
9- बी0एन0 नूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 37·
10- अजितोदय सर्ग 17 और 18·

छत्रपति शाहू अपनी आन्तरिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने में लगा रहा। अजीत सिंह ने मई 1710 में बहादुर शाह की अधीनता स्वीकार करली।[1] 1712 में जहांदार शाह से गुजरात की सूबेदारी का फरमान उसे प्राप्त हो गया।[2] पर जहांदार शाह अधिक दिनों तक शासक नहीं रहा। नये बादशाह फर्रुखसियर (1712 से 1719) ने अजीत सिंह से पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया। फलस्वरूप 1714 में राठोर शासक को गुजरात की सूबेदारी प्राप्त हुई।[3] अजीत सिंह जुलाई 1717 तक गुजरात का सूबेदाररहा।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि शाहू की मुगलों से मुक्ति[5] के बाद के काल में राठोर-मराठा सम्बन्ध अच्छे बने रहे, क्योंकि जब अजीत सिंह ने गुजरात के बहुत से प्रदेश मारवाड़ में मिलाने शुरू किए।[6] तो मराठों ने जो कि इनके निकट पड़ोसी थे और जिनका प्रभाव क्षेत्र सूरत तक फैला हुआ था[7] उनका कोई प्रतिरोध नहीं किया।

फर्रुखसियरकालीन मुगल राजनीति की उथल-पुथल ने अजीत सिंह के प्रभाव को और बढ़ा दिया। बादशाह अपने वजीर अब्दुल्ला खां और मीरबख्शी हुसैन अली से अप्रसन्न हो गया। ये दोनों सैयद बन्धु बादशाह के विरोधी बन गये। 1716 में हुसैन अली को दक्षिण का सूबेदार बना कर मराठों की शक्ति दबाने के लिए भेजा गया। पर हुसैन अली चतुर था, अपने और अपने भाई की स्थिति को मजबूत करने के लिए उसने फरवरी 1718 में पेशवा बालाजी विश्वनाथ से संधि

1- बहादुर शाह का फरमान दि० 4 रवी-उल-आखीर।

2- अखबारात दि० 25 अव्वल।

3- जगजीवन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट दि० कार्तिक वदी वि०सं० 1770.

4- मीरात-ए-अहमदी 10, पृ० 12.

5- मुंतखब-उल-लुवाब 2, पृ० 582.

6- मीरात-ए-अहमदी 2, पृ० 1-12; 28-35.

7- मुन्तखब-उल-लुवाब 2, पृ० 777-78.

करली ।[1] बादशाह अपने श्वसुर अजीत सिंह को गुजरात से वापस बुलाकर काफी सम्मानित किया ।[2] वह उससे सैयदों के विरुद्ध सहायता चाहता था ।

अजीत सिंह एक अनुभवी राजनीतिज्ञ की तरह कुछ समय तो तटस्थ रहा पर बाद में उसने अपना भाग्य सैयद बन्धुओं के साथ जोड़ दिया । उसने वजीर अब्दुल्ला खां को सलाह दी कि हुसैन अली को गुप्त रूप से दिल्ली बुला ले जिससे कि उसके स्थिति को कोई आंच न आ सके ।[3] हुसैनअली बालाजी विश्वनाथ की मराठा फौज के साथ 7 फरवरी 1718 को दिल्ली पहुँचा और अजीत सिंह के निवास के समीप उसने अपना शिविर लगाया ।[4] दोनों नेताओं ने गुप्त मपरमर्श किया । 18 फरवरी को दिल्ली के किले पर दोनों ने अधिकार कर लिया । बालाजी विश्वनाथ को नगर में विद्रोह दबाने के लिए नियुक्त किया गया ।[5] सभी विद्रोह क्रूरता से दबा दिये गये, जिसमें भारी संख्या में लोग हताहत हुए ।[6] उसी दिन अजीत सिंह और हुसैन अली ने फर्रुखसियर को गद्दी पर से हटा दिया और रफी उद दरजात को बादशाह घोषित किया ।[7] नये बादशाह के समय अजीत सिंह और सैयदों की शक्ति पराकाष्ठा तक पहुँच गई । उन्होंने जजिया 'कर' समाप्त करदिया ।[8] मराठों के साथ फरवरी 1718 में की गई सन्धि को

1- मुन्तखब-उल-लुवाब 2, पृ0 784.

2- अजीत सिंह का दयाल दास को पत्र, ज्येष्ट वदी 11 वि0सं0 1775.

3- वही,

4- मुन्तखब-उल-लुवाब 2, पृ0 804.

5- महाराजा अजीत सिंह का दयाल दास को पत्र, ज्येष्ठ वदी 11.

6- मुन्तखब-उल-लुवाब 2, पृ0 812-13.

7- महाराजा अजीत सिंह का दयाल दास को पत्र, दि0 ज्येष्ठ वदी 11.

8- वही ।

नए बादशाह से स्वीकृत करा लिया गया ।[1] अजीत सिंह को गुजरात की सूबेदारी पुन: प्राप्त हो गई । इसके अलावा उसे अजमेर का सूबा भी सौंप दिया गया ।[2] मार्च 1719 में मराठा फौज दक्षिण वापस चली गई । मुगल बादशाहत में एक और परिवर्तन के बाद अंतत: सितम्बर 1719 में मोहम्मद शाह को बादशाहत प्राप्त हुई । दोनों सैयद इस काल तक मुगल दरबार पर बुरीतरह से हाबी हो चुके थे । इसलिए इनके विरूद्ध केवल बादशाह ही नहीं दरबार का प्रमुख भाग भी उनके विरूद्ध हो गया था । बादशाह ने दरबार में तूरानी दल से मिलकर 8 अक्तूबर 1720 ई0 को हुसैन अली की हत्या करवा दी तथा 13 नवम्बर 1720 को अब्दुल्ला खां को बन्दी बना लिया । उनके सहयोगी अजीत सिंह को गुजरात और अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया गया ।[3] और अंत में शाही दरबार के निर्देशनों पर 23 जून, 1724 को उसकी हत्या करवा दी गई । इस प्रकार मराठा-राजपूत राजनीतिक सम्बन्धों का एक और अध्याय समाप्त हुआ ।[4]

जयसिंह और मराठे -

1728 के बाद मराठों के उत्तरी प्रान्तों में बढ़ते हुए प्रसार की समस्या और भी गम्भीर हो गई । मालवा व गुजरात के मराठों के हाथ में चले जाने से राजपूतों को जो खतरा हो सकता था, उसके बारे में जयसिंह को कभी सन्देह नहीं था ।[5] उसने 1730 में उत्तर की ओर बढ़ते मराठों के प्रभाव को यथासंभव रोका और राजपूत राज्यों की संगठित शक्ति द्वारा उनके आक्रमणों को रोकने हेतु आवश्यक कदम उठाये ।[6] इस समस्या के विषय में जयसिंह का कमरूद्दीन खां,

---

1- आई0एच0आर0सी0 (प्रोसीडिंग्स) 1940, पृ0 204-212.

2- मुन्तखब-उल-लुबाब 2, पृ0 838.

3- वही, पृ0 937.

4- अजितोदय सर्ग 31, पद 32-33.

5- वंश भास्कर, भाग 4, पृ0 3121.

6- पेशवा दफ्तर, 30 नं0 78.

सादत खाँ, आदि से भिन्न दृष्टिकोण था ।[1] वे समस्या के सैनिक हल में विश्वास रखते थे । किन्तु इस नीति का भलीभाँति परीक्षण हो चुका था और यह औरंगजेब के अथक प्रयत्नों और साम्राज्य के सारे साधन जुटा लेने पर भी पूर्णतया असफल रही थी ।[2] फिर मुगल राज्य की जर्जरित अवस्था में इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी । साम्राज्य के आर्थिक साधन इस समय पहले की अपेक्षा बहुत कम थे । पंजाब, बंगाल तथा दक्षिण के सूबे केवल नाम मात्र के लिए ही मुगल नियन्त्रण में रह गये थे ।[3] सैयदों के समय में बादशाह की प्रतिष्ठा को भी बहुत धक्का लगा था । मराठों ने 1730 तक दक्षिण के सूबों और गुजरात से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार ले लिया था ।[4] उनकी सेनाओं की अजेयता की ख्याति फैलने लगी थी । ऐसी परिस्थितियों में जयसिंह ने मराठों व मुगलों की सरकार के बीच ऐसे समझौते का प्रयत्न किया, जो मराठा आकांक्षाओं की बहुत कुछ पूर्ति करते हुए मुगल साम्राज्य व बादशाह के सार्वभौमिक स्तर के विरुद्ध न हो ।[5]

जयसिंह की नीति -

जयसिंह का विचार था कि शाहू को जागीरें और मराठा सरदारों को उपयुक्त मनसब देकर उन्हें गिरते हुए मुगल साम्राज्य का प्रमुख आधार बना लिया जाय ।[6] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1730 के बाद जयसिंह ने अनवरत प्रयत्न किये और बाद में ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसका उद्देश्य पूरा हो

1- वी0एस0 भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 18.
2- न्यू लाइट आन मिर्जाराजा जयसिंहस् पालसी इन बीजापुर जर्नल आफ् इण्डियन हिस्ट्री, भाग 32, पृ0 212. (1964)
3- आर0ए0 शर्मा, द मेकिंग आफ् मार्डन इण्डिया, पृ0 132.
4- इर्विन, वही, भाग 2, पृ0 7.
5- किनकैड, हिस्ट्री आफ् मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 40.
6- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ् औरंगजेब, भाग 3, पृ0 183.

जायेगा और मराठे एक जिम्मेदार शक्ति के रूप में बादशाह को सार्वभौम मानते हुए साम्राज्य के प्रमुख आधार बन जायेगें ।[1] अपनी इस नीति की पूर्ति में जयसिंह को निजाम, कमरूद्दीन खाँ, सादत खाँ आदि के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा ।[2] जयसिंह ने यथा सम्भव यह प्रयत्न किया कि मराठों के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए विस्तार को रोका जाय या उसकी गति धीमी की जाय जिससे कि राजनीतिक व्यवस्था एकाएक नष्ट न हो जाय ।[3]

निजाम का मराठों को आमन्त्रण -

1718 में निजाम को मालवा का सूबेदार बनाया गया । मार्च 1719 में वह दिल्ली से चला किन्तु शीघ्र ही उसका सैयदों से झगड़ा हो गया और अगस्त 1722 में उसे विजारत का कार्य-भार सम्भालने के लिए पुन: दिल्ली आना पड़ा ।[4] ऐसी स्थिति में मालवा की सूबेदारी राजा गिरधर बहादुर को दी गई । बाजीराव 13 फरवरी 1723 को मालवा आया और निजाम से बोलासा में मिला । यह भेंट अशुभ थी[5], क्योंकि निजाम दक्षिण में अपनी स्थिति को मराठों के अतिक्रमण से बचाने के लिए उन्हें मालवा व गुजरात में अपनी ओर से किसी प्रकार की रूकावट न डालने का आश्वासन देने को तैयार था ।[6] उसे आशा थी कि मराठों के उधर उलझ जाने से दक्षिण के सूबों पर मराठा दबाव कम रहेगा । बाजीराव ने भी इस समय निजाम से निपटने के स्थान पर मालवा में

1- आलमगीरनामा, पृ0 609.

2- एस0आर0शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 437.

3- इलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, भाग 5, पृ0 173.

4- सर देसाई, मराठो का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 314.

5- सवाई जयसिंह, पृ0 160.

6- खाफीखाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 212.

मराठा प्रभाव को बढ़ाने के कार्य को प्राथमिकता दी । साम्राज्य के हितों को देखते हुए निजाम का यह काम निन्दनीय था ।[1]

जयसिंह की मालवा की सूबेदारी -

गिरधर बहादुर के विरोध के कारण मराठों को मालवा से 1725 से 1726 ई0 के मध्य खाली हाथ लौटना पड़ा बाद में पेशवा के भाई चिमनाजी अप्पा ने 29 नवम्बर 1728 को अम्झेरा में गिरधर बहादुर की सेना को हराया ।[2] राजा गिरधर, दया बहादुर व अनेक प्रमुख अफसर लड़ते हुए मारे गये । मालवा में मुगलों की स्थिति पर वह बहुत बड़ा आघात था । इस विजय के बाद मराठों को मालवा में लूट-मार करने में कोई रुकावट नहीं रही ।[3] बादशाह ने कुछ समय के लिए छवीला राव के पुत्र भवानी राम को राजा का खिताब देकर मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया, किन्तु उससे हालत नहीं सुधरी, अत: अक्टूबर 1729 में जयसिंह को मालवे की सूबेदारी दी गई ।[4] वह जयपुर से उज्जैन के लिए रवाना हुआ । वहाँ पहले से ही मराठे विद्यमान थे और नवम्बर के अन्त में उन्होंने माडू भी ले लिया था ।[5] जयसिंह की मराठों से एक झड़प हुई, किन्तु कुछ ही दिनों के बाद छत्रपति शाहू से उसने समझौते की जो वार्ता जताई उसके परिणाम स्वरूप मराठे मांडू जयसिंह को देकर वापस चले गये ।[6] शाहू ने 26 फरवरी 1730 को जयसिंह का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि शाहू के दत्तक पुत्र कुशल सिंह को मालवा में मराठा आक्रमण तुरन्त रोकने की शर्त पर

1- डा0 आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 126.
2- अलीमुहम्मद, मीराते अहमदी, पृ0 295.
3- भीमसेन बुरहानपुरी, नुक्सा-ए-दिलकशा, पृ0 92.
4- किनकैड, हिस्ट्री आफ् द मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 116.
5- डा0 एम0जी0 रानाडे, राइज आफ् द मराठा पावर, पृ0 113.
6- राजवाड़े, लेख संग्रह (राधामाधव विलास चम्पू), पृ0 226.

40 लाख रूपये की जागीर दे दी जाए ।[1] जयसिंह ने बादशाह को लिखा कि इस समझौते से मुगल सरकार को प्रतिवर्ष मराठों को रोकने के लिए फौज का खर्चा नहीं उठाना पड़ेगा और सूबे में शान्ति भी स्थापित हो जायेगी ।[2] मई 1730 में जयसिंह मालवासे जयपुर वापस आ गया । सितम्बर 1730 में जयसिंह के स्थान पर मुहम्मद खाँ वंगश को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया । वंगश को विश्वास था कि उपलब्ध साधनों का पूरा व योजनाबद्ध रूप से उपयोग करके मराठों को मालवा से निकाला जा सकता था । पेशवा ने मालवा में मराठा सैनिक कार्यवाही का संचालन होल्कर व राणोजी सिन्धिया को दिया ।[3] वंगश मालवा को मराठा सेनाओं के आक्रमणों व लूटमार से नहीं बचा सका ।[4] मराठे 1731 में पहले से भी अधिक सक्रिय रहे । ऐसा अनुमान था कि उस वर्ष लगभग एक लाख मराठा सवार प्रान्त में लूट-मार कर रहे थे ।[5] वंगश को सूचना मिली की उसके स्थान पर जयसिंह को सूबेदार नियुक्त किया जारहा है और 6 दिसम्बर 1732 को जयसिंह द्वारा भेजे गये अफसरों को सूबे का चार्ज देने के बाद वंगश दिल्ली लौट आया ।[6] मालवा में वंगश की असफलता वास्तव में कमरूद्दीन खाँ सादत खाँ आदि की मराठा समस्या के प्रति उनकी नीति की असफलता थी ।[7]

मालवा और जयसिंह की योजना -

मराठों के विरुद्ध तैयारी हेतु 13 लाख रूपये लेकर जयसिंह 20 अक्टूबर

1- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, पृ0 193.
2-
3- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डेंस आफ मराठा फ्रीडम, पृ0 41.
4- डफ, हिस्ट्री आफ मराठाज़, पृ0 218.
5- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 24.
6- खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुवाब, भाग 2, पृ0 119.
7- वसातिन-उस-सलातिन, अध्याय 12, परिच्छेद 10, पृ0 348.

1732 को जयपुर से चलकर दिसम्बर में उज्जैन पहुँचा ।[1] उस समय जयसिंह जयपुर व मेवाड़ के सम्मिलित प्रयत्नों से मालवा की सुरक्षा के लिए एक नई योजना बना रहा था । उसने अपने दीवान राजा अयामल को योजना के अन्तर्गत दोनों राज्यों के भार व लाभ के वितरण के बारे में निश्चित रूप से सब बातें तय करने के लिए उदयपुर भेजा ।[2] सवार और प्यादों के साथ यह भी निश्चय हुआ कि राजस्व और पेशकश से जो आमदनी होगी, उसका एक भाग मेवाड़ को और दो भाग जयसिंह को मिलेगें ।[3] दोनों राज्यों के बख्शी, नायब व मुसद्दी मिलकर काम करेगें और यदि मराठों में समझौता हो गया तो जो भूमि व राजस्व बादशाह उन्हें सूबेदारों को दे देगें । उसका भार दोनों राज्य बराबर-बराबर बाँट लेगें ।[4] महाराणा की ओर से धाभाई नगराज ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए । यह योजना कार्यान्वित भी न हो पाई थी कि मराठे मालवा में आ पहुँचे ।[5] उन्होंने मन्दसौर के निकट जयसिंह को अचानक जा घेरा जो इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था । जयसिंह ने कृष्णाजी व ऊदाजी पवार से गुप्त वार्ता आरम्भ की जिसे होल्कर ने विफल कर दिया ।[6] दिल्ली से भी तुरन्त मदद आने की आशा नहीं थी अत: जयसिंह ने होल्कर से समझौते की बात शुरू कर दी । जयसिंह ने छ: लाख रूपये नकद व मालवे के 28 परगनों की वसूली देने का प्रस्ताव रखा जिसे होल्कर ने अस्वीकार कर दिया ।[7] अब जयसिंह को दिल्ली से मदद

1- सर यदुनाथ सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग 2, पृ0 11·

2- वी0एम0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 496·

3- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 27·

4- ईश्वरदास नागर, फ्तूहाते आलमगीरी, पृ0 115·

5- डा0 आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 104·

6- फारसी पत्र, अब्दुल्ला खाँ, जयसिंह, भाग 1, अप्रैल, 1718 ई0

7- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 110·

आने की सूचना मिली । इसने समझौते की वार्ता बन्द कर दी तथा मराठों पर एक जोरदार आक्रमण करके उन्हें पीछे हटने पर बाध्य किया । होल्कर ने उसे पुन: घेर लिया और पहले वाला समझौता ही मान लिया । एक मराठा फौज ने रामपुरा जाकर जयपुर के वहाँ नियुक्त अधिकारियों से वहाँ 75 हजार रूपये वसूल किये ।[1] जयसिंह को मराठों के इस व्यवहार से बड़ा दु:ख हुआ ।

जयसिंह और बूँदी की राजगद्दी का षड्यन्त्र -

बूँदी का राजा बुद्ध सिंह जयसिंह का बहनोई था, इन दोनों के 1727 ई0 तक घनिष्ठ सम्बन्ध रहे, फिर तेजी से बिगड़ते सम्बन्ध अन्त में बिल्कुल टूट गये ।[2] इसका कारण यह था कि अप्रैल 1728 में उदयपुर से सलूम्बर का ठाकुर केशरी सिंह, जयसिंह के पुत्र ईश्वरी सिंह के लिए सगाई का नारियल लाए । जयसिंह की बहन तथा महाराज बुद्ध सिंह की रानी अमर कुँवर अपने आठ वर्षीय पुत्र भवानी सिंह के साथ थी ।[3] उसने जयसिंह से भवानी सिंह के लिए नारियल स्वीकार करने को कहा । इसपर बुद्ध सिंह ने मना करते हुए कहा कि भवानी सिंह की आम्बेर में हत्या करवा दी गई ।[4] इसपर मामला बढ़ गया और जयसिंह ने बुद्ध सिंह को बूँदी की गद्दी से हटाने का निर्णय किया ।[5] उसने करवर के सालिभ सिंह हाड़ा के पुत्र दलेल सिंह को बूँदी की गद्दी पर बैठा दिया तथा बादशाह से इसकी स्वीकृति प्राप्त करली ।[6] कुछ दिनों बाद बुद्ध सिंह की अपनी

1- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् द मुगल इम्पायर, भाग 1, पृ0 115.

2- सूर्यमल मिश्र; वंश भास्कर , 3095.

3- रूस्तम अली, तारीखे हिन्द, पृ0 469.

4- डा0 सतीशचन्द्र मित्तल, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 134.

5- मुहम्मद हादी कामवर खाँ, तजकीरतुस सलीताने चुगताई, पृ0 27.

6- श्यामल दास, वीर विनोद, पृ0 962.

कछवाही रानी के सगे भाई विजय सिंह को जयपुर की गद्दी दिलवाने के षड़यंत्र में पकड़ा गया। विजय सिंह 1711 से नजरबन्द था, जब इसका पता चला तो विजय सिंह को मार दिया गया।[1] ये घटनाएं राजपुताने के लिए अत्यन्त दुर्भाग्य पूर्ण थीं। बुद्ध सिंह को अपदस्थ करने से राजपूत राज्यों में वैमनस्य एवं गहरा मतभेद उत्पन्नहो गया।[2] यद्यपि ऊपरी तौर से कोटा व जोधपुर ने जयसिंह के कार्य का विरोध नहीं किया, तथापि जयसिंह की मृत्यु के बाद उन्होंने उम्मेद सिंह का समर्थन किया।[3]

मराठों का बूंदी में हस्तक्षेप -

नवम्बर 1733 में मराठा नेताओं ने होल्कर, सिन्धिया, पीलाजी आदि के नेतृत्व में मालवा में पुन: प्रवेश किया। वे बुद्ध सिंह की कछवाही रानी के निमंत्रण पर महाराज को पुन: बूंदी दिलवाने आ रहे थे। उन्होंने 18 अप्रैल को बूंदी में प्रवेश किया और चारदिन के घेरे के बाद किले पर अधिकार कर लिया।[4] बुद्ध सिंह का शासन स्थापित होने की घोषणा करके मराठे बूंदी से चले गये और जयसिंह द्वारा भेजी गई 20 हजार की सेना बूंदी आ गई।[5] दलेल सिंह पुन: गद्दी पर बैठादिया गया। मराठों ने पुन: इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहा, क्योंकि अब वे जय सिंह से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने को अधिक महत्व देने लगे थे[6]।

राजपूतों की प्रतिक्रिया -

मुगल सरकार की मालवा, गुजरात व बुन्देल खण्ड में मराठों को रोकने

1- खाफीखाँ, मुन्तखब-उल-लुवाब, भाग 2, पृ0 935.
2- इर्विन, द लेटर मुगल्स, भाग 1, पृ0 330.
3- शिवदास, मुनव्वर उलकलाम, 15 बी।
4- वी0एस0 भटनागर, सवाई जय सिंह, पृ0 47.
5- जयपुर अखबारात, 4 दिसम्बर, 1723 ई0
6- गुलाम हुसेन, सियारउत मुताखिरीन, भाग 1, पृ0 231.

में असफलता तथा मराठों के बूंदी के मामले में हस्तक्षेप के कारण राजपूत शासकों ने अनुभव किया कि उन्हें मराठों के बढ़ते प्रभाव को रोकने हेतु सम्मिलित प्रयास करने चाहिए । अन्यथा मालवा की भाँति राजपूताने की भी दुर्दशा हो जायेगी ।[1] राजपूत राज्यों की सुरक्षा के लिए मालवा में मराठों के प्रभाव को समाप्त करना या कम करना आवश्यक था ।[2] महाराज को यह आशा थी कि राजपूतों के सम्मिलित प्रयास से वे मालवा को अपने अधिकार क्षेत्र में ला सकेंगे ।[3] उन्होंने मालवा विभाजन के बारे में रूपरेखा भी तैयार की थी, किन्तु जनवरी 1734 में महाराणा संग्राम सिंह की असामयिक मृत्यु राजपूताने के लिये अपार क्षति थी ।[4] महाराजा जगत सिंह द्वितीय ने 16 जुलाई 1734 को हुरड़ा (अजमेर) में समायोजित सम्मेलन की अध्यक्षता की ।[5] इससे जय सिंह, महाराजा अभय सिंह, माहराव दुर्जन साल, राजाधिराज वख्त सिंह व उनके उमराव सलाहकार थे । समझौते में तय हुआ कि वे अच्छे व बुरे समय में एकता बनाए रखेंगें । एक की इज्जत सबकी इज्जत समझेंगें ।[6] कोई राज्य दूसरे के देश-द्रोही को शरण न देगा । बरसात के बाद कार्य-क्रम शुरू होगा जिसके लिए सभी राजा अपनी सेनाओं के साथ रामपुरे एकत्रित होंगे और यदि कोई राजा अपनी अस्वस्थता के कारण आने में असमर्थ है तो वह कुँवर या भाई को भेजेगा ।[7] किन्तु ये निर्णय कार्यान्वित नहीं हो सके ।

1- रघुवीर सिंह, मालवा इन ट्रान्जीशन, पृ0 216.

2- सूर्यमल, वंश भास्कर, भाग 4, पृ0 3090.

3- वी0एस0 भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 52.

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 160.

5- खाफीखाँ, मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 829.

6- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 490.

7- ईलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, भाग 7, पृ0 248.

जय सिंह को मराठा शक्ति की क्षमता की जानकारी थी । जयसिंह नये महाराणा और अभय सिंह के बीच सद्भावना का अभाव था ।[1] इसलिए राजपूत राजाओं ने रामपुरे में एकत्रित होने की अपेक्षा मुगल सरकार द्वारा आयोजित अभियान में सम्मिलित होना अधिक लाभप्रद समझा ।[2] दिल्ली में इस अभियान की तैयारी हो रही थी ।

मालवा में संघर्ष -

नवम्बर 1734 में मुगल सरकार ने दो बड़ी सेनायें मराठों को मालवा से निकालदेने के लिए भेजी । प्रथम वजीर कमरूद्दीन खां के अधीन थी जो नितान्त असफल होकर, मई, 1735 में वापिस दिल्ली आ गई । द्वितीय खांन दौरा के नेतृत्व में थी । इसमें राजपूत शासकों के भी आ-मिलने से उनकी संख्या एक लाख हो गई थी ।[3] मराठों ने चतुराई से इस विशाल वाहिनी को 3-4 भागों में बांट दिया । अत: खांनदौरा को विवश होकर मराठों से समझौता करना पड़ा और सैनिक दृष्टि से खानदौरा का अभियान पूर्णतया असफल रहा ।[4]

सन् 1728 में मालवा में जो युद्ध हुआ था, उसमें मुगलों के सूबेदार राजा गिरिधर बहादुर की मृत्यु हो गई थी । बादशाह ने उसके पुत्र भवानीराम को राजा की उपाधि देकर मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था ।[5] जयसिंह तथा अन्य अधिकारियों को आदेश दिये गये थे कि वे उसकी सहायता करने मालवा जांय,

---

1- गुलाम हुसैन, सिमारूल मुताखरीन, पृ0 128.

2- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 89.

3- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 117.

4- वी0आर0 लूनिया, मराठा प्रभुत्व, पृ0 168.

5- एच0एन0 सिनहा, द राइज़ आफ् द पेशवाज़, पृ0 214.

पर जयसिंह उसकी सहायता को नहीं गया ।[1] इसपर बादशाह ने राजा भवानी-राम के चाचा दयाबहादुर को भेजा, पर इनके आने के पूर्व ही चिमणाजी अप्पा तथा उदाजी पवार ने मालवा के कई भागों पर आक्रमण कर उन्हें लूटना आरंभ कर दिया ।[2] 20 दिसम्बर 1728 को मराठों ने मालवा की राजधानी उज्जैन पर आक्रमण कर उसे घेर लिया । राजा भवानीराम ने बड़ी वीरता से इसकी रक्षा करते हुए मराठों को बड़ी हानि पहुँचाई । कंथाजी ने मंडलेश्वर से 25 मील दक्षिण खारगाँव पर आक्रमण कर वहाँ से 50 हजार की रकम वसूल की ।[3] इसके बाद उसने धार के आस-पास के भागों को तहस-नहस करना आरम्भ किया ।

दयाबहादुर ने मालवा पहुँचकर, शासन को व्यवस्थित करने के लिए प्रयत्न आरंभ कर दिये । उसने अनुभव किया कि मालवा की शान्ति की कुंजी नंदलाल मंडलोई के ही पास है । इनके अधिकार में टंडा, भैरव नालछा आदि अनेक महत्वपूर्ण उतारे थे ।[4] इन्हीं से मराठे मालवा में आते थे । अत: उसने इसे मराठों के पक्ष से तोड़कर अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया पर इसमें उसे सफलता न मिली ।[5] उसने न इसके प्रलोभनों की परवाह की और न धमकियों की । वह मराठों का ही सहायक बना रहा ।

बाजीराव ने मालवा के सूबेदार से चौथ और सरदेशमुखी की माँग की, पर उसने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया । इसपर 1730 में चिमणाजी अप्पा मालवा पहुँचा और उसने दयाबहादुर को पराजित कर दिया तथा वहाँ से कर

1- राजवाड़े, भाग 3, पृ0 18·

2- पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द 24, पृ0 261·

3- ग्वालियर फाल्के, खण्ड 3, पृ0 295·

4- पुरन्दरे, दफ्तर संग्रह, खण्ड 6, पृ0 273·

5- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् दि मुगल एम्पायर, खण्ड 2, पृ0 379·

पर जयसिंह उसकी सहायता को नहीं गया ।[1] इसपर बादशाह ने राजा भवानी-राम के चाचा दयाबहादुर को भेजा, पर इनके आने के पूर्व ही चिमणाजी अप्पा तथा उदाजी पवार ने मालवा के कई भागों पर आक्रमण कर उन्हें लूटना आरंभ कर दिया ।[2] 20 दिसम्बर 1728 को मराठों ने मालवा की राजधानी उज्जैन पर आक्रमण कर उसे घेर लिया । राजा भवानीराम ने बड़ी वीरता से इसकी रक्षा करते हुए मराठों को बड़ी हानि पहुँचाई । कंथाजी ने मंडलेश्वर से 25 मील दक्षिण खारगाँव पर आक्रमण कर वहाँ से 50 हजार की रकम वसूल की ।[3] इसके बाद उसने धार के आस-पास के भागों को तहस-नहस करना आरम्भ किया ।

दयाबहादुर ने मालवा पहुँचकर, शासन को व्यवस्थित करने के लिए प्रयत्न आरंभ कर दिये । उसने अनुभव किया कि मालवा की शान्ति की कुंजी नंदलाल मंडलोई के ही पास है । इनके अधिकार में टंडा, भैरव नालछा आदि अनेक महत्वपूर्ण उतारे थे ।[4] इन्हीं से मराठे मालवा में आते थे । अत: उसने इसे मराठों के पक्ष से तोड़कर अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया पर इसमें उसे सफलता न मिली ।[5] उसने न इसके प्रलोभनों की परवाह की और न धमकियों की । वह मराठों का ही सहायक बना रहा ।

बाजीराव ने मालवा के सूबेदार से चौथ और सरदेशमुखी की माँग की, पर उसने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया । इसपर 1730 में चिमणाजी अप्पा मालवा पहुँचा और उसने दयाबहादुर को पराजित कर दिया तथा वहाँ से कर

1- राजवाड़े, भाग 3, पृ0 18.

2- पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द 24, पृ0 261.

3- ग्वालियर फाल्के, खण्ड 3, पृ0 295.

4- पुरन्दरे, दफ्तर संग्रह, खण्ड 6, पृ0 273.

5- सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ दि मुगल एम्पायर, खण्ड 2, पृ0 379.

वसूल किया ।[1] नंदलाल भी दयाबहादुर से निपटने के लिए सेना एकत्रित करने लगा । बाजीराव ने दिसम्बर 1731 में मल्हार राव होल्कर को मालवा भेजा, पर उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही दयाबहादुर ने नंदलाल मंडलोई को परास्त कर उसे वहाँ से भगा दिया था । उसने मांडू की घाटी पर अधिकार करलिया ।[2] मालवा जाने का यही प्रमुख मार्ग था । दयाबहादुर ने इस मार्ग में सुरंगें बिछा दी तथा वहाँ 25 हजार सेना तैयार की । मराठा सेना को इन बातों का पता न था, ज्यों ही वे मांडू की घाटी में घुसे त्योंही उनके अनेक दल मार डाले गये ।[3] अगर वह और आगे बढ़ते तो सुरंगों पर पलीते रख दिये जाते । परिणाम स्वरूप सारी मराठा सेना उड़ जाती, पर इसी समय उसे सुरंगों का पता चल गया। इसपर मराठों ने अपना मार्ग बदल दिया ।[4] अब वे भैरव घाटी से मालवा में प्रविष्ट हुए । अब मांडू की घाटी से मुगल सेना हटने लगी, पर इसी समय सुरंगों में आग लग गई ।[5] वहाँ भयंकर विस्फोट हुए । इसमें कई मुगल सैनिक मर गये ।[6]

तिलेरा का युद्ध (1731) -

धार से तीन मील दूर तिलेरा नामक स्थान पर दयाबहादुर तथा मराठों में एक भयंकर युद्ध हुआ । इसमें दयाबहादुर को वीरगति प्राप्त हुई । इस

1- इतिहास संग्रह - पेशवा दफ्तर, पृ0 8.

2- नाना साहब रोज्युसी खण्ड 1, पृ0 43.

3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 2, पृ0 75.

4- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 316.

5- बर्नियर, ट्रेवल्स इन मुगल इम्पायर, पृ0 128.

6- सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 22.

युद्ध में नन्दलाल ने मराठों की बड़ी सहायता की, पर इसके कुछ ही समय बाद 3 नवम्बर, 1731 को उसकी मृत्यु हो गई ।[1]

मालवा की व्यवस्था -

इस विजय का समाचार प्राप्त होते ही बाजीराव मालवा आ पहुँचा, उसने इस प्रान्त की व्यवस्था शाहू के आदेश के अनुसार ही की । इसकी आधी आमदनी राजकोष में जमा होती थी, शेष आधी सेना के खर्च के लिए पेशवा को मिलती थी ।[2] पर कुछ समय बाद इसकी एक नवीन व्यवस्था की गई । इसके अनुसार कर का 31 प्रतिशत भाग राजकोष में जमा होता था तथा 30-30 प्रतिशत भाग होल्कर और शिन्दे को तथा बाकी का 9 प्रतिशत पवार को सेना के खर्च के लिए मिलता था ।[3] आगे कई वर्षों तक यही व्यवस्था चलती रही ।

मुगल-दरबार की चिंता -

मालवा में राजा गिरधर बहादुर की मृत्यु तथा मुहम्मद खाँ बंगश की पराजय के कारण मुगल दरबार में तहलका मच गया था । मराठा शक्ति दृढ़ता पूर्वक उत्तर की ओर बढ़ते देखकर बादशाह तथा उसके दरबारी थर्रा उठे ।[4] इस संकट का किस प्रकार सामना किया जाय, यही महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सामने उपस्थित था ।[5]

इस प्रश्न को सुलझाने के संबन्ध में मुगल-दरबार में मतभेद था । जहाँ खानदौरान तथा जयसिंह मराठों को सन्तुष्ट कर उनसे मित्रता स्थापित करना ही

1- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 190.

2- इर्विन, द लेटर मुगल्स, पृ0 47.

3- पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द 6, पृ0 153.

4- सतीशचन्द्र, पार्टी एण्ड पालिटिक्स एट मुगल कोर्ट, पृ0 166.

5- रघुबीर सिंह, मालवा इन ट्रेंजीसन, पृ0 215.

हितकर मानते थे वहाँ सआदत खाँ, मुहम्मद खाँ बंगश, अभय सिंह आदि मराठों से युद्ध कर उन्हें दक्षिण भगा देना उचित नीति मानते थे ।[1] अपने दरबार के इस मतभेद के कारण बादशाह तथा उसका वज़ीर कमरूद्दीन खाँ कोई निर्णय करने में असमर्थ थे । विगत 50 वर्षों के मराठों के पराक्रम का इतिहास उनकी आँखों के सामने था । ऐसी शक्ति से लड़ने का साहस करना, परिणाम में घातक सिद्ध हो सकता था, साथही मुगल साम्राज्य के पूर्व गौरव की स्मृतियाँ उन्हें मराठों के सामने नतमस्तक नहीं होने देती थी ।[2] दुविधा की इस स्थिति में जयसिंह ने मराठों के प्रश्न को सुलझाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया । उसने शाहू पर दबाव डालकर मांडवगढ़, जिसपर मराठों ने अधिकार कर लिया था, बादशाह को वापस करा दिया । इससे बादशाह को कुछ सान्त्वना मिली ।[3]

प्रतिनिधि मंडल -

मराठों के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करने के पूर्व यह जानना आवश्यक था कि उनके वास्तविक उद्देश्य क्या हैं, वे कहाँ तक सन्धि करने को तैयार हैं तथा मुगल सम्राट के प्रति उनके क्या विचार हैं ? जयसिंह ने इन बातों के संबन्ध में विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से दीपसिंह, मनसाराम पुरोहित तथा संग्राम सिंह का एक प्रतिनिधि मंडल सतारा भेजा ।[4] इसके साथ ही जयसिंह ने अपने अत्यन्त विश्वसनीय और चतुर राजनीतिज्ञ व्याघ्राजी को भेजा ।

यह प्रतिनिधि मंडल सन् 1730 को सतारा पहुँचा । शाहू ने इसका स्वागत किया । वहाँ छत्रपति शाहू आदि से वार्तालाप करने के बाद दक्षिण के मुगल सूबेदार तथा और भी अन्य अनुभवी राजनीतिज्ञों से परामर्श किया । सतारा

1- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ0 651.

2- डॉ0 ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 439.

3- डॉ0 वी0एम0 भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 41.

4- वही, पृ0 45.

में इस प्रतिनिधि मंडल के विचार मराठों के अनुकूल ही बने ।[1] पर जब यह औरंगाबाद पहुँचा तो निजामुलमुल्क ने "इन प्रतिनिधियों पर ऐसा प्रभाव डालने का प्रयत्न किया ताकि वे मराठों की महत्वाकांक्षा के विरूद्ध जोरदार रिपोर्ट दें" ।[2] वापस जाने पर इस प्रतिनिधि मंडल ने अपनी रिपोर्ट दी कि मराठे किसी बुरी नीयत से आक्रमण नहीं करना चाहते हैं, वे केवल चौथ वसूल करना चाहते हैं । साथही वे बादशाह की सेवा में आने को पुन: तैयार हैं । और आवश्यकता पड़ने पर वे बादशाह की सहायता भी करेंगे । वे मालवा से 15 लाख तथा गुजरात से 11 लाख वार्षिक चौथ चाहते हैं ।[3] अपना निर्ण देते हुए प्रतिनिधि मंडल ने कहाकि यदि इन आधारों पर बादशाह और मराठों में संधि हो जाती है तो मराठे भविष्य में कोई संकट खड़ा नहीं करेंगे ।

सन्धि की योजना -

प्रतिनिधि मंडल की रिपोर्ट के आधार पर जयसिंह ने मराठा-मुगल सन्धि का एक मसविदा तैयार किया । इसके अनुसार मालवा से शाहू को चौथ के रूप में 10 लाख रूपये वार्षिक मिलने वाले थे तथा दिल्ली में बादशाह की सेवा में एक मराठा सरदार रहने की बात थी । पर बादशाह ने इस मसविदे को पसंद नहीं किया ।[4] इसपर हताश होकर जयसिंह ने बादशाह को लिखा -"आप 20 वर्षों से मराठों को मालवा से निकालने के प्रयत्न कर रहे हैं । अगर आप हिसाब लगाकर देखें कि इन प्रयत्नों में आपको कितना खर्च करना पड़ा और कितनी सफलता मिली तो आप अनुभव करेंगे कि इस कठिनाई से बचने का एक मात्र उपाय

1- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, पृ0 258.

2- सतीशचन्द्र, उत्तर मुगल भारत का इतिहास, पृ0 85.

3- एच0एन0 सिनहा, दी राइज़ आफ़ दि पेशवाज़, पृ0 235.

4- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 193.

वह उन्हें नष्ट करने में कोई कसर उठा न रखे ।[1]

इस समय मालवा में होल्कर तथा अंताजी मानकेश्वर थे । वंगश ने अंताजी को उज्जैन के निकट पराजित कर दिया । इस समय बाजीराव दाभाडे का दमन करने में व्यस्त होने के कारण वह मालवा की ओर ध्यान देने में असमर्थ था, पर कुछ महीने बाद जब राणोजी शिन्दे मालवा पहुँचा तो वंगश घबरा गया । वह समझ गया कि अब मराठों के सामने उसका टिकना कठिन है ।[2] अतएव उसने बादशाह को लिखा कि सेना तथा धन से तत्काल उसकी सहायता की जाय । साथही उसने सीधे शाहू से संधि वार्ता करनी चाही, परन्तु उसने वंगश से कहा कि वह इस सम्बन्ध में पेशवा से वार्ता करे । इसपर उसने मराठा सरदारों से सुलह की बातचीत आरंभ करदी ।[3]

इस समयतक बादशाह वंगश से इसलिए नाराज हो चुका था कि उसने उसके आदेशानुसार निजामुलमुल्क के विरूद्ध कोई कारवाई नहीं की थी, पर जब उसे पता चला कि वंगश मराठों से सन्धि वार्ता कर रहा है तो बादशाह को उसकी राजभक्ति पर सन्देह होने लगा । मालवा में मिली असफलता से निराश बादशाह ने उसे वापस बुला लिया तथा उसके स्थान पर सवाई जयसिंह को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया ।[4]

जयसिंह की सूबेदारी -

ज्योंही चिमणाजी को जयसिंह के उज्जैन आने का समाचार मिला, त्योंही वह उससे मिलने के लिये दक्षिण से मालवा की ओर रवाना हुआ । पर इस

1- भीमसेन विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ0 72.

2- आर0वी0 नादकर्णी, द राइज़ एण्ड फाल आफ़ मराठा पावर, पृ0 196.

3- तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 300.

4- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 481.

समय जयसिंह मराठों से वार्ता करने के बजाय उन्हें मालवा से खदेड़ने पर तुला हुआ था ।[1] चिमणाजी उसके उद्देश्य को समझ गया और उसने आनन्द राव पवार, विठोजी बुले, तथा होल्कर को जयसिंह के विरूद्ध रवाना किया । कुछ समय तक घनघोर युद्ध हुआ । शीघ्र ही मराठों की सेनाओं ने जयसिंह की सेना को घेर लिया । उसे किसी ओर से भी सहायता न मिल सकी ।[2] अन्त में जयसिंह ने होल्कर से सन्धि वार्ता आरंभ की उसने मराठों को छः लाख रूपये तथा मालवा प्रान्त से उसने जो कर वसूल किया था उसे वापस देकर सुलह करली ।[3] मालवा प्रान्त का कर मराठे वसूल करने लगे । वे इस कर को वसूल करते हुए ग्वालियर के आगे भदावर तक पहुँच गये । जयसिंह में उनका विरोध करने का साहस नहीं रह गया था ।[4] निःसंदेह इससे जयसिंह की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा ।

जयसिंह मराठों को उत्तर से निकालकर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करने के लिए उत्सुक था ।[5] उसने राजपूत नरेशों का एक मराठा विरोधी संघ बनाया तथा राजपूतों की एक बड़ी सेना संगठित की । बादशाह भी मराठों को द्रुतगति से उत्तर में दिल्ली की ओर तथा पूर्व में दो-आब की ओर बढ़ते देखकर चिंतित हो उठा था ।[6] उसने पश्चिम से मालवा पर तथा पूर्व की ओर से बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर वहाँ से मराठों को निकालने की योजना बनाई ।[7]

1- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 57.

2- खाफी खाँ - मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग 2, पृ0 727.

3- फारसी पत्र, अब्दुल्ला खाँ - जयसिंह, अप्रैल, 1714 ई0

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज्, भाग 2, पृ0 199.

5- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 59.

6- आर0वी0 नादकर्णी, द राइज एण्ड फाल आफ् मराठा पावर, पृ0 22.

7- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 195.

उसने पूर्व से किये जाने वाले आक्रमण का उत्तरदायित्व अपने वज़ीर कमरुद्दीन को तथा पश्चिम से होने वाले आक्रमण का भार मीरबक्सी शमसुद्दौला को सौंपा। स्वत: बादशाह कई प्रख्यात् तथा अनुभवी सेनानियों के साथ इनकी सहायता करने रवाना हुआ।[1]

इस आनेवाले संकट से मराठों ने भी मुगलों के आक्रमण का सामना करने की तैयारियाँ आरंभ करदी। इस समय बाजीराव तथा चिमणाजी दक्षिण के युद्धों में व्यस्त थे। अतएव उन्होंने पिलाजी जाधव के साथ बाजीराव के 14 वर्षीय पुत्र बालाजी बाजीराव (नाना साहब) को एक बड़ी सेना के साथ मालवा की ओर रवाना किया।[2] इस प्रकार मालवा के भाग्य के निर्णायक युद्ध के लिए मुगल तथा मराठा सेनाएँ आगे बढ़ रही थीं।

मीरबख्शी की असफलता -

जनवरी 1735 में मुगलों तथा राजपूतों की संयुक्त सेना तथा शिन्दे और होल्कर की सेना में कई संघर्ष हुए। ये युद्ध अत्यन्त भीषण थे। मुगल सेना की संख्या लगभग 2 लाख थी और मराठा सेना केवल 20 हजार थी।[3] किन्तु मराठों ने छापामार रणनीति अपनाकर मुगलों को बहुत परेशान कर डाला। शिन्दे ने मालवा में मुगल सेना को उलझाये रखा। उधर होल्कर ने अपनी सेना के साथ मारवाड़ तथा जयपुर के राज्य में घुसकर वहाँ लूट-पाट करना आरंभ किया।[4] उसने साँभर के सम्पन्न नगर को लूट-कर बहुत सा धन प्राप्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुगलों की सहायता करने वाले राजपूत नरेश अपने-अपने राज्यों की

1- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 251.

2- महागोविन्द रानाडे, राइज़ आफ द मराठा पावर, पृ0 97.

3- ग्राण्ट डफ, हिस्ट्री आफ द मराठाज़, संस्करण एस0एम0 एडवर्ड्स, भाग 2, पृ0530.

4- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 196.

सुरक्षा के लिए चिंतित हो उठे ।[1] संघर्ष से अलग होने में ही उन्होंने अपना हित समझा और उन्होंने 24 मार्च 1735 को कोटा में मराठों से सुलह करली । और मराठों को 22 लाख रुपये देना स्वीकार किया ।[2] वज़ीर कमरूद्दीन भी अपने आक्रमण में सफल नहीं हुआ । उसमें तथा पिलाजी जाधव में नरवर के निकट कई झड़पें हुई । उसने पिलाजी को कईबार पराजित किया, पर गर्मी का आरंभ होते ही वह दिल्ली लौट गया । इस अभियान में भी मुगल सेना मराठों को निकालने में असफल रही ।[3] इस प्रकार मीर बख्शी शमसुद्दौला तथा वज़ीर कमरूद्दीन के अभियान निष्फल सिद्ध हुए ।

राजपूताने पर धावे -

1736 को दशहरे के उत्सव की समाप्ति के बाद ही मराठा सेना पुन: उत्तर की ओर रवाना हुई । इसबार उसने राजपूत राज्यों पर, जिन्होंने मराठों के विरूद्ध मोरचा बनाया था, धावे करना आरंभ कर दिया । उदयपुर राज्य के मेवाड़, मेड़ता आदि स्थानों पर तथा मुगल राज्य के अजमेर तथा उसके उत्तर में स्थित रूपनगर को लूट लिया ।[4] इससे दिल्ली तथा राजपूत दरबारों में तहलका मच गया । मराठों के विरूद्ध दिल्ली से दो सेनाएं वज़ीर कमरूद्दीन तथा मीर बख्शी शमसुद्दौला के नेतृत्व में भेजी गई ।[5] साथही अवध के नवाब सआदत खाँ को इनकी सहायता के लिए आगरा पहुँचने का भी आदेश दिया गया ।[6] चिमणाजी अप्पा भी बुन्देलखण्ड पार करता हुआ यमुना नदी तक पहुँच गया । मार्ग

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज़, भाग 2, पृ0 144.
2- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 256.
3- जी0एस0 छावड़ा, आधुनिक भारतीय इतिहास, भाग 1, पृ0 55.
4- किनकेड,एण्ड पारसनीस, ए हिस्ट्री आफ् द मराठा पीपुल, पृ0 222.
5- रघुवीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ0 169.
6- जी0आर0 परिहार, मारवाड़ एण्ड दि मराठाज़, पृ0 62.

में उसने कोड़ा, काल्पी, इटावा आदि नगरों को लूटते हुए[1] ग्वालियर पहुँचा। पर वह यहाँ सफल न हो सका क्योंकि मुहम्मद बंगश ने चंबल नदी की घाटी की सुदृढ़ व्यवस्था की थी।

कमरुद्दीन अपनी सेना के साथ ओरछा तक पहुँच गया। यहाँ उसने पिलाजी जाधव को पराजित किया।[2] इसके बाद वह मल्हाराव होल्कर को राजपूताने से बाहर निकालने के लिए वहाँ पहुँचा। जयसिंह भी उसकी सहायता को आ पहुँचा पर मल्हारराव ने बूँदी के राजा प्रताप सिंह हाड़ा की सहायता से इन दोनों को पराजित किया।[3]

पेशवा की माता की तीर्थ-यात्रा -

1735 ई0 का वर्ष मराठों तथा मुगलों के गंभीर संघर्ष का काल था। इसी वर्ष बाजीराव पेशवा की माता राधाबाई ने उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा करने का निश्चय किया।[4] उसके दामाद बरामती के आबाजी नायक तथा उसका भाई बाबूजी इस लंबी यात्रा में व्यवस्थापक नियुक्त किये गये थे।[5] राधाबाई के इस यात्रा का समाचार सारे देश में फैल गया।[6] राजपूत रानाओं तथा मुगल अधिकारियों ने अपने राज्यों तथा अधिकार-क्षेत्रों में आने के उसे निमंत्रण भेजे। स्वत: मुगल बादशाह ने अपने अंगरक्षकों में से एक हजार सैनिकों के एक दल को यात्रा में सुरक्षा के लिए राधाबाई के साथ रहने के लिए नियुक्त किया।[7] बाजीराव के

1- के0एस0 गुप्ता, मेवाड़ एण्ड दी मराठा रिलेशन्स, पृ0 60-61.

2- आर0वी0 नादकर्णी, द राइज़ एण्ड फाल आफ् मराठा पावर, पृ0 182.

3- जी0आर0 परिहार0 मराठा-मारवाड़ सम्बन्ध, पृ0 66.

4- पेशवा दफ्तर, भाग 3, पृ0 134.

5- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 198.

6- राजवाड़े, भाग 2, पृ0 58.

7- तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 270.

कट्टर शत्रु मुहम्मद वंगश ने भी उसका, जब वह उसके अधिकार-क्षेत्र में पहुँची बड़ा स्वागत किया ।[1]

14 फरवरी 1735 को राधावाई पूना से रवाना हुई तथा 6 मई को उदयपुर पहुँची । 18 मई को उसने नाथद्वार में दर्शन किए । 21 जून को जयपुर पहुँचने पर वह जयसिंह के विशेष आग्रह पर 3 मास तक वहाँ रही ।[2] जयपुर स्थित पेशवा का वकील लिखता है कि "तीर्थरूप माता जी आषाढ़ मास के आरंभ में बाबू जी नायक के संरक्षण में जयपुर पहुँची । उससे आग्रह किया जा रहा है कि वह यहाँ (वर्षा ऋतु भर) दशहरे के महान् उत्सव तक रहें ।[3] महाराजा जय सिंह ने राय नारायण दास को यात्रा में साथ करदिया ।[4] नारायण दास का एक सम्बन्धी हरप्रसाद मुहम्मद खाँ वंगश का दीवान था । हर प्रसाद यमुना के निकट मिलने आया । उसने नदी पार करने में हमारा मार्ग दर्शन किया । वह हमें अपने स्वामी खान (वंगश) से भेंट करने ले गया । उसने हमारा हार्दिक स्वागत किया । खान ने इसबात पर प्रसन्नता प्रगट की कि बाजीराव ने उसे पत्र लिखकर भेजा है कि वह अपनी माता को मेरे संरक्षण में भेज रहा है ।[5] उसने कहा "वह मेरे लिये स्वत: मेरी माता के समान हैं" । सवाई जयसिंह ने भी पेशवा के प्रति अपना सम्मान प्रगट किया । उदयपुर के राणा ने भी अपनी श्रद्धा प्रगट की ।[6]

जयपुर से राधावाई मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र तथा प्रयाग होते हुए 17 अक्टूबर को काशी पहुँची, यहाँ वह दो मास तक रही, फिर गया गई । गया से

1- सर देसाई, मराठी रियासत, भाग 2, पृ0 216.

2- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 200.

3- पेशवा दफ्तर, भाग 30, पृ0 137.

4- किनकेड, ए हिस्ट्री आफ् दी मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 232.

5- राजवाड़े, भाग 2, पृ0 82-83.

6- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 165.

वह बुन्देलखण्ड होते हुए सागर पहुँची । वहाँ कुछ दिनों तक विश्राम करने के बाद वह 1 जून 1736 को पूना पहुँच गई ।[1]

इतनी लंबी यात्रा अशान्तिकाल में बिना किसी दुर्घटना के सकुशल पूर्ण होना उस समय के लिए वास्तव में आश्चर्य की बात थी । पर बाजीराव के प्रति समस्त देश के लोगों में सम्मान की भावना थी । उसके विरोधी उससे आतंकित रहते थे ।[2] इसी कारण उसकी माता को सर्वत्र गौरव और सम्मान प्राप्त हुआ ।

सुलह के प्रयत्न -

मराठों की निरन्तर होने वाली सैनिक और विजयों से बादशाह त्रस्त हो गया था । अत: वह उनसे स्थायी सन्धि करने के लिए उत्सुक हो उठा ।[3] जय सिंह तो पहले से ही सुलह करने के पक्ष में था । वह बादशाह पर इसीबात का लगातार जोर डालता रहा कि मराठों से मित्रता करने में ही उसका हित है । समशुद्दौला ने भी पिछले युद्धों के अनुभवों के आधार पर बादशाह को यही सलाह दी ।[4] मराठों तथा मुगलों की मध्यस्थता करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति जयसिंह ही था, अत: बादशाह ने उसे इस दिशा में कार्यवाही करने का आदेश दिया ।[5] जयसिंह ने सीधे बाजीराव से ही सन्धि वार्ता करना उचित समझा । उसने यह तय किया कि पहले पेशवा और राजपूत राजाओं में वार्ता हो ताकि उसे बादशाह से सुलह करने के लिए तैयार किया जा सके ।[6] बाद में बादशाह तथा

1- भीमसेन विद्यालंकार, वीर मराठे, पृ0 58·

2- सातवलेकर, हिन्दूपद पादशाही, पृ0 128·

3- डा0 मथुरालाल वर्मा, मराठों का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 211·

4- मराठी रियासत, भाग 1, पृ0 342·

5- इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग 2, पृ0 262·

6- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 54·

बाजीराव के मिलन की व्यवस्था की जाय । जयसिंह ने अपनी यह योजना बादशाह से कही थी । उसने बाजीराव से मिलने की अपनी स्वीकृति दे दी ।[1]

राजपूताने में पेशवा का स्वागत –

छत्रपति शाहू वैसे ही मुगलों से लड़ना पसन्द नहीं करता था, परन्तु परिस्थितियों वश उसे अनेक वर्षों तक उससे संघर्ष करना पड़ा था । जब मुगलों से मित्रता स्थापित करने का अवसर आया तो उसने पेशवा को इस सन्धि वार्ता के चलाने का आदेश दिया ।[2] 1736 के फरवरी माह में, जयसिंह के निमंत्रण पर पेशवा राजपूताना पहुँचा । इस यात्रा में उसका पुत्र बाजाजी, मल्हार राव होल्कर, राणो जी शिन्दे तथा यशवन्त राव पवार भी साथ थे ।[3] पेशवा सबसे पहले उदयपुर पहुँचा, वहाँ के राणा ने दरबार में उसका सम्मानपूर्ण स्वागत किया ।[4] दरबार में दो सिंहासन पास-पास रखे हुए थे । एक राणा के लिए तथा दूसरा बाजीराव के लिए । पर बाजीराव ने राणा के बराबर में बैठने से इनकार कर दिया ।[5] उसने कहा कि राणा देश के गौरवशाली सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ है । अत: वह उसके बराबर बैठना ठीक नहीं समझता । यह कहकर वह एक नीचे के स्थान पर बैठ गया ।[6] राणा और बाजीराव में, इस मिलन के फलस्वरूप मित्रतापूर्ण संबन्ध स्थापित हुए । राणा ने मराठों को डेढ़ लाख रूपये प्रतिवर्ष चौथ के रूप में देना स्वीकार किया ।[7]

जयसिंह और बाजीराव की भेंट किशन-गढ़ में हुई । दूर से एक दूसरे को

1- पेशवा दफ्तर, भाग 30, पृ0 156·

2- हार्डिकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 200·

3- राजवाड़े, भाग 2, पृ0 86·

4- सर देसाई, मराठी रियासत, मध्य विभाग, भाग 1, पृ0 183·

5- डा0 वी0जी0डीघे, पेशवा बाजीराव, फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ0 33·

6- जे0के0 ओझा, मेवाड़ का इतिहास, पृ0 22·

7- के0एस0 गुप्ता, मेवाड़ एण्ड दी मराठा रिलेशन्स, पृ0 42·

देखते ही दोनों अपने-अपने घोड़े से उतर पड़े और बड़े प्रेम से गले मिले । जयसिंह ने भी 5 लाख रूपये वार्षिक चौथ देना स्वीकार किया ।[1] जहाँ-जहाँ बाजीराव गया वहीं उसका धूम-धाम से स्वागत हुआ । जयसिंह तथा पेशवा में गंभीर वार्ता के बाद बाजीराव और बादशाह की भेंट कराने के उद्देश्य से वे दोनों दिल्ली की ओर रवाना हुए ।[2] उनके साथ दिल्ली दरबार में मराठा वकील महादेव भट्ट हिंगणे तथा यादव राव मुंशी भी थे । मार्ग में ही उन्हें वह संधि का मसविदा मिला, जिसे बादशाह ने यादगार खाँ तथा जयसिंह के वकील कृपाराम के साथ उनके पास भेजा था ।[3] इसमें बादशाह ने चम्बल के दक्षिणी भागों के लिए 13 लाख रूपये प्रति वर्ष चौथ के रूप में देना स्वीकार किया था । साथही उसने बूंदी से कोटातक के राजपूत नरेशों पर 60 हजार रूपयों के कर लगाने का मराठों को अधिकार दिया था ।[4] बाजीराव तत्काल समझ गया कि बादशाह मराठों और राजपूतों को लड़ाना चाहता है ।

बाजीराव ने बादशाह के सन्धि के मसविदे को अस्वीकार कर दिया तथा अपना एक सन्धि का मसविदा घोडो गोविन्द तथा बाबूराव मल्हार के द्वारा बादशाह के पास भेजा ।[5] पेशवा का यह सन्धि प्रस्ताव बादशाह को अभिमान-पूर्ण तथा अत्यधिक माँग करने वाला प्रतीत हुआ । उसने बाजीराव से मिलने से इनकार कर दिया । उसने इस प्रस्ताव का उत्तर भेजना भी उचित नहीं समझा ।[6] अत: पुन: संघर्ष का वातावरण निर्मित हो गया । इस समय वर्षा ऋतु आ पहुँची

1- भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 185·
2- ग्राण्ट डफ, हिस्ट्री आफ् दी मराठाज्, भाग 2, पृ0 536·
3- सी0के0 श्रीनिवासन्, बाजीराव द फर्स्ट द ग्रेट पेशवा, पृ0 68·
4- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 272·
5- राजवाड़े, वही, खण्ड 4, पृ0 138·
6- डफ, हिस्ट्री आफ द मराठाज्, भाग 1, पृ0 337·

थी । अत: बाजीराव वहाँ से सीधे दक्षिण के लिए रवाना हो गया, पर उसने राणों जी शिन्दे तथा मल्हार राव होल्कर को आदेश दिया कि वे मालवा में ही रहें तथा युद्ध की तैयारी करें । यह प्रथम अवसर था, जबकि मराठा सेना का वर्षा-कालीन पड़ाव महाराष्ट्र से दूर उत्तर में था ।[1] इसके बाद इन सरदारों ने मालवा में अपनी स्थायी छावनी बना ली ।

बालाजी बाजीराव एवं राजपूत -

पेशवा बाजीराव के समय तक राजपूतों और मराठों में परस्पर सहयोग रहा, लेकिन पेशवा बालाजी के समय दोनों जातियों में मनमुटाव पैदा हो गया । 1743 में जयपुर नरेश सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों ईश्वरी सिंह और माधो सिंह में उत्तराधिकार का संघर्ष शुरू हुआ ।[2] ईश्वरी सिंह ने रानोजी सिंधिया और मल्हार राव होल्कर की सहायता से 1745 में माधो सिंह को हरा बदया । कुछ समय बाद ही रानो जी सिंधिया की मृत्यु हो गई, तत्पश्चात् उसके पुत्र जयघा सिंधिया ने माधो सिंह का पक्ष लेना शुरू कर दिया । अत: मल्हार राव से उसके तीव्र मतभेद हो गये ।[3] पेशवा बालाजी बाजीराव की मध्यस्थता से ईश्वरी सिंह जयपुर का राजा मान लिया गया, क्यों कि उसने अपने चार जिले माधोसिंह को देने का वायदा किया था । उसने होल्कर को भी 3 लाख रूपये देने का वचन दिया ।[4] समझौता तो हो गया लेकिन ईश्वरी सिंह को पेशवा के फैसले से असन्तोष बना रहा ।

1750 में सिंधिया और होल्कर ने ईश्वरी सिंह से चौथ माँगी । मल्हार राव उसके साथ आततायी की तरह व्यवहार करने लगा । यद्यपि ईश्वरी सिंह ने

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज़, भाग 2, पृ0 168.

2- आर0बी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 123.

3- सी0के0 श्रीनिवासन्, बाजीराव द फर्स्ट द ग्रेट पेशवा, पृ0 43.

4- किनकेड एण्ड पारसनिस, ए हिस्ट्री आफ् द मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 122.

2 लाख रूपया देना स्वीकार भी कर लिया था, किन्तु मल्हार राव के अपमानजनक व्यवहार से तंग आकर अन्त में उसने आत्महत्या कर ली ।[1] उसकी तीन पत्नियों ने विष खा लिया और कुछ उसके साथ सती हो गईं ।[2] परिणाम स्वरूप मराठों के प्रति राजपूतों का प्रेमभाव नष्ट हो गया । इस घटना का बदला लेने के लिए माधो सिंह ने धोखे से हजारो मराठों का कत्ल कर दिया ।[3] उसने सिंधिया और होल्कर को मारने का भी षडयन्त्र किया परन्तु विफल रहा । अन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण राजपूतों और मराठों में तीव्र कटुता और शत्रुता पैदा हो गई ।[4]

दोनों जातियों में वैमनस्य तब और बढ़ गया जब राजपूतों ने मराठों का ऋण नहीं चुकाया । 1715 में जयपुर बूँदी और मारवाड़ इन तीन राजवंशों के युद्ध समाप्त हो गये ।[5] इन युद्धों में मारवाड़ के अतिरिक्त दूसरे राजवंशों में मराठों के उम्मीदवार ही विजयी हुए थे । इन राजपूत उम्मीदवारों ने बड़ी-बड़ी धनराशियों का वचन देकर मराठों की सहायता ली थी ।[6] कोटा पर मराठों का लगभग 10 लाख रूपये का ऋण था, तो जयपुर के राजा को लगभग डेढ़ लाख रूपया मराठों को देना था । जयपुर नरेश माधोसिंह पर भी मराठों का लगभग 12 लाख रूपये का कर्ज था तो बूँदी के उम्मेद सिंह को मराठों को 10 लाख रूपया देना था ।[7] इन राजपूत राजाओं ने अपने ऋणों का कोई भी

1- एस0एन0 सेन, द मिलीट्री सिस्टम आफ् द मराठाज, पृ0 228.

2- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डेंग्स आफ् द मराठा फ्रीडम, पृ0 185.

3- डा0 सतीसचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0 222.

4- डा0 मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 136.

5- परन्दरे दफ्तर, जिल्द 5, पृ0 152.

6- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 2, पृ0 223.

7- राजवाड़े, जिल्द 2, पृ0 98-99.

अंश मराठों को नहीं दिया । जब लगातार माँग करने पर पेशवा को धन नहीं मिला तो उसने राजपुताने में हस्तक्षेप का निश्चय किया ।[1]

1754 में मारवाड़ नरेश बख्श सिंह की मृत्यु हो गई । मराठों ने बख्शसिंह के पुत्र विजय सिंह को हटाकर रामसिंह को गद्दी पर बैठाने के लिए मारवाड़ पर हमला कर दिया ।[2] जब विजय सिंह ने नागौर में शरण ली तो जयप्पा सिंधिया ने नागौर को भी घेर लिया । यह घरा लगभग एक साल तक चलता रहा, जिसमें मराठों को भारी क्षति हुई ।[3] जयप्पा सिंधिया को मारवाड़ अभियान बहुत महँगा पड़ा, क्योंकि 1755 में विजय सिंह ने धोखे से उसका कत्ल करवा दिया, पर दत्ता जी सिंधिया ने शीघ्र ही बदला ले लिया । जब 1755 में विजय सिंह ने माधोसिंह, सूरजमल जाट, रोहेलों आदि का सम्मिलित संघ बनाकर मराठों को उत्तर भारत से खदेड़ देने का निश्चय किया ।[4] बाद में गोडवास और रामगढ़ के युद्धों में राजपूतों की भारी पराजय हुई । फरवरी 1756 में राजपूत-मराठा सन्धि हुई जिसके अनुसार - 1. माधो सिंह ने मराठों को पाँच लाख रूपया देना मंजूर किया, 2. राठौरों ने अजमेर पर मराठों का अधिकार स्वीकार किया, 3. विजय सिंह ने 50 लाख रूपया क्षति पूर्ति के रूप में देना स्वीकार किया और 4. जालौर तथा आधे मारवाड़ का रामसिंह को राजा बनाया गया ।[5] इस प्रकार सिंधिया का मारवाड़ अभियान समाप्त हुआ ।

राजपूतों और मराठों में अनबन जारी रही । राजपूत अपना ऋण नहीं

1- पेशवा दफ्तर, 30-32.

2- ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, पृ0 72.

3- जी0आर0 परिहार, मराठा-मारवाड़ सम्बन्ध, पृ0 27.

4- रूस्तम अली, तारीख-ए-हिन्द, इलियट एण्ड डाउसन, भाग 8, पृ0 50-51.

5- वी0एस0 भटनागर, सवाई जयसिंह, पृ0 38.

चुका सके और विजय सिंह आदि ने क्षतिपूर्ति की रकम देने में भी आनाकानी की । परिणाम स्वरूप राजपूत नरेशों से मराठों की सैनिक झड़पें होती ही रही ।[1] मराठा और राजपूतों के सम्बन्ध इसीलिए निरन्तर खराब होते गये । अतः पानीपत के तृतीय युद्ध के अवसर पर मराठों को राजपूतों की कोई सहायता न मिल सकी । यहाँ तक कि मराठों को राजपुताने में खाने की सामग्री भी नहीं मिली ।[2] इस प्रकार बाजीराव की राजपूत नीति न केवल असफल सिद्ध हुई, अपितु उस समय उत्तरी भारत से मराठों के पराभव का कारण बनी जब वे अपनी शक्ति के चरमोत्कर्ष पर थे ।

1- सर देसाई, मराठा रियासत (मध्य विभाग) भाग 1, पृ0 115.
2- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 153.

मराठा - बुन्देला सम्बन्ध

मराठों और बुन्देलों का सम्बन्ध शिवाजी और बुन्देल राजा छत्रसाल के पारस्पस्परिक भेंट से प्रारम्भ हुआ जो अनेक उतार-चढ़ाव के बाद भी मराठा-साम्राज्य के अवसान तक कायम रहा ।[1] छत्रसाल बुन्देल सरदार चम्पतराय का पुत्र था । उसका जन्म 4 मई 1649 में ककर-कचनए नामक ग्राम में हुआ था ।[2] ग्यारह वर्ष की अवस्था में उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई थीं । युवा होने पर वह अपने भाई अंगद तथा चाचा जामशाह के साथ मिर्जा राजा जयसिंह से मिला ।[3] जयसिंह उस समय (1665) शिवाजी के विरूद्ध सेना सहित दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहा था । उसने छत्रसाल को अपनी सेना में नियुक्त कर लिया ।[4] अंगद, छत्रसाल और जामशाह ने पुरन्दर के घेरे (मई 1665) में बड़ी वीरता दिखाई । जयसिंह की सिफारिश पर उन्हें क्रमशः 8 सौ जात, 6 सौ सवार, 250 जात 100 सवार तथा 400 जात 300 सवार के मनसब प्रदान किये गये ।[5] उन्होंने बीजापुर के आक्रमण (सितम्बर 1665 - फरवरी 1666) में भी भाग लिया । तत्पश्चात् जब दिलेर खाँ देवगढ़ की ओर बढ़ रहा था, तब छत्रसाल को एक सैनिक टुकड़ी के साथ उसकी सहायता के लिए भेजा ।[6] गया पर देवगढ़ के राजा कोकसिंह ने बिना युद्ध किये ही अधीनता स्वीकार कर ली ।[7]

छत्रसाल मुगलों से असन्तुष्ट था । वह अनुभव करता था कि उनकी सेवाओं को यथेष्ट रूप से पुरस्कृत नहीं किया गया था ।[8] इधर शिवाजी की मुगलों के विरूद्ध अभूत सफलताओं से उत्तरी भारत तक के हिन्दू प्रभावित थे ।

1- पन्नापत्र संग्रह 63; छत्र प्रकाश, पृ0 63, 68.

2- गोरेलाल तिवारी, बुन्देल खण्ड का इतिहास, पृ0 163-64.

3- हफ्त अंजुमन, पृ0 32; छत्र प्रकाश, पृ0 71, 72.

4- यदुनाथ सरकार, हाउस आफ् शिवाजी, पृ0 105.

5- अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला, (सरकार), भाग 2, पृ0 83; सरकार, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 393, हफ्त अंजुमन, पृ0 32.

6- छत्र प्रकाश, पृ0 72, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 392.

7- आलमगीरनामा, पृ0 1020-25; मासिर-इ-आलमगीरी, पृ0 39.

8- भीमसेन कृत, तारीख-दिलकश, भाग 1, पृ0 132.

छत्रसाल भी उसके व्यक्तित्व से प्रभावित और आकर्षित था । मुगलों की ओर से शिवाजी के विरूद्ध युद्ध करना उसे लज्जाजनक ज्ञात पड़ा । महाराष्ट्र में शिवाजी के उच्च उद्देश्यों के लिए अपना रक्त बहाना उन्हें मुगलों के आदेश पर अपनी तलवार हिन्दू रक्त से रंजित करने की अपेक्षा कहीं अधिक उचित एवं सम्माननीय प्रतीत हुआ ।[1] इसलिए एक दिन शिकार पर जाने का बहाना करके छत्रसाल मुगल सेना से निकल भागा और अपनी पत्नी सहित शिवाजी से भेंट करने दक्षिण की ओर चल पड़ा । जंगली तथा पहाड़ी दुर्गम मार्गों से होते हुए वह भीमा नदी तक आ पहुँचा और उसे पार करके उसने शिवाजी से भेंट की ।[2] छत्रसाल कुछ समय तक शिवाजी के पास पूना में रहा ।[3] इस काल में उसने वहाँ शिवाजी के युद्ध कौशल, उसकी कूट-नीति और शासन संगठन के सम्बन्ध में वह सारी प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करली, जिसका उपयोग बाद में सफलतापूर्वक बुन्देलखण्ड में किया । छत्रसाल की प्रबल आकांक्षा शिवाजी के पास रहकर मराठों के स्वतंत्रता संग्राम में योग देने की थी । परन्तु शिवाजी इससे सहमत नहीं हुआ ।[4] वे सारे भारत में हिन्दू पद पादशाही स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे । अत: महत्वाकांक्षी छत्रसाल को अपने यहाँ रहने देकर स्वराज्य के प्रयत्नों को दक्षिण तक ही सीमित रखना उन्हें अभीष्ट नहीं था ।[5] इसीलिए उन्होंने छत्रसाल को बुन्देलखण्ड लौटाकर मुगलों के विरूद्ध वहाँ भी स्वतन्त्रता संग्राम संगठित कर स्वयं उसका नेतृत्व करने की प्रेरणा दी ।[6] शिवाजी

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 1, पृ0 184.

2- छत्र प्रकाश, पृ0 78, 79; मासिर-उल-उमरा, भाग 2, पृ0 511.

3- पन्नापत्र संग्रह, 57; सरकार, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 390.

4- भीमसेन, तारीख दिलकशा, भाग 1, पृ0 79-80.

5- यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 5, पृ0 393.

6- राजवाड़े, मराठ्यांचा इतिहासांची साधने, भाग 2, पृ0 135.

द्वारा प्रेरित हो छत्रसाल पुन: उत्तरी भारत को लौट पड़े तथा रास्ते में शुभकरण बुन्देला से मिले ।[1] किन्तु उसने स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग देने से इनकार कर दिया । तदनन्तर छत्रसाल औरंगाबाद में अपने चचरे भाई बलदाऊ से मिले ।[2] उसने उन्हें सहयोग देना स्वीकार किया । इस प्रकार अनेक लोगों से सम्पर्क कर वे बुन्देलखण्ड पहुचें । बड़े उत्साह के साथ उन्होंने मुगल सत्ता के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ किया जो लगभग 20 वर्षों तक चलता रहा ।[3] छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड में अपना राज्य स्थापित किया तथा पन्ना को अपनी राजधानी बनाई ।[4] बादशाह उसकी बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित हो उठा । उसने इलाहाबाद के अपने सूबेदार मुहम्मद खां बंगश को लिखा कि वह बुन्देलों का दमन करे । उस समय बुन्देलखण्ड इलाहाबाद सूबे का एक भाग था ।[5] मुहम्मद खां बंगश ने छत्रसाल पर आक्रमण कर दिया । छत्रसाल तथा उसके बीर पुत्रों ने उसका सामना किया पर अनेक स्थानों पर वे पराजित हो गये । अन्त में छत्रसाल ने 1728 में जैतपुर के किले में आश्रय लिया ।[6] बंगश ने इस किले को भी घेर लिया । इस संकटकाल में छत्रसाल ने बाजीराव से जो इस समय मालवा में था, सहायता की प्रार्थना की । उसकी इस प्रार्थना को छत्रसाल ग्रन्थावली में एक हिन्दी के कवि ने उधृत किया है ।[7] प्रकारान्तर से इसमें गज और ग्राह की पौराणिक कथा कही गई है, जिसका

1- छत्र प्रकाश, पृ0 8; मासिर-उल-उमरा, भाग 2, पृ0 318.

2- पाग्सन, हिस्ट्री आफ दी बुन्देलाज, पृ0 218.

3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज, भाग 2, पृ0 105.

4- पन्नापत्र संग्रह, 60; छत्रप्रकाश, पृ0 83.

5- सिंह तथा ओझा, मुगलकालीन भारत, पृ0 205.

6- किनकेड एण्ड पारसनिस, हिस्ट्री आफ दी मराठा पीपुल्स, पृ0 137.

7- वियोगी हरि द्वारा सम्पादित, छत्रसाल ग्रन्थावली, पृ0 30-31. छंद - 2.

जो बीती गजग्राह पर, सो गति भई है आज ।
बाजी जात बुंदेल की राखो बाजी लाज ।।

अर्थ है कि बाजीराव । क्या तुम जानते हो कि मैं इस समय उसी दुखित अवस्था में हूँ जिसमें वह प्रसिद्ध हाथी था जिसको ग्राह ने पकड़ लिया था । मेरे वीर वंश का अन्त होने वाला है । आओ और मेरे सम्मान की रक्षा करो ।[1] पेशवा बाजीराव को यह संदेश गढा के स्थान पर फरवरी 1729 में प्राप्त हुआ । उसने सेनापति चिमनाजी को लिखा "मैं छत्रसाल के सहायतार्थ जा रहा हूँ जैसा आप उत्तम समझें मुझसे स्वतन्त्र रूप में अपनी प्रगति का प्रबन्ध कर सकते हैं ।[2] इस प्रकार बाजीराव को मुँह माँगी मुराद मिल गई । उत्तर की ओर मराठा राज्य का विस्तार करने के लिए बुन्देलखण्ड पर प्रभाव होना बड़ा आवश्यक था । इससे दोआब में प्रवेश करने का भी मार्ग खुल जाता । अत: बाजीराव ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया ।[3]

बाजीराव द्वारा छत्रसाल की रक्षा -

25 हजार सेना के साथ बाजीराव छत्रसाल की सहायता करने रवाना हुआ । उसके साथ पिलाजी जाधव, नारोशंकर, तुकोजी पवार, देवलजी सोमवंशी आदि कई प्रख्यात वीर थे ।[4] 12 मार्च 1729 को मराठा सेना महोबा पहुँची । वहाँ छत्रसाल के एक पुत्र ने आकर उसका स्वागत किया ।[5] दूसरे दिन छत्रसाल जैतपुर के घेरे से निकल कर बाजीराव से आकर मिला । बुन्देलखण्ड के अनेक जमींदार अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आकर बाजीराव से मिले ।[6] शीघ्र ही इस सेना की संख्या 70 हजार तक पहुँच गई । पेशवा आगे बढ़ता ही गया । उसने बंगश की सेना को घेर लिया । चारों ओर से रसद के मार्ग काट दिये ।

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़, भाग 2, पृ0 106.

2- राजवाड़े, वही, पृ0 314.

3- हार्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 186.

4- पेशवा दफ्तर, खण्ड 22, 36.

5- तामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 298.

6- डा0 ए0एल0 श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ0 283.

परिणाम स्वरूप उसकी सेना भूखों मरने लगी ।[1] वंगश का पुत्र कईम खाँ अपने पिता की सहायता के लिए सेना सहित आ पहुँचा । 7 मई 1729 को सूपा नामक स्थान में मराठों की सेना तथा कईम खाँ की सेना में एक युद्ध हुआ । इसमें कईम खाँ पराजित हो गया ।[2]

घिरी हुई रुहेला सेना मराठों की सेनापर एक जोरदार आक्रमण कर घेरे से बाहर आने में सफल हो गई तथा वंगश ने जैतपुर के किले में घुस कर आश्रय लिया । यह किला अत्यन्त सुदृढ़ था । इसपर आक्रमण कर इसे जीतना सरल न था । बाजीराव ने इस किले को घेर लिया । मुहम्मद खाँ वंगश ने बादशाह से प्राथना की कि वह तत्काल उसकी सहायता करे ।[3] साथ ही कईम खाँ ने अवध के नवाब बुरहानुलमुल्क तथा रुहेले सरदारों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया पर कही से कोई सहायता नहीं आई ।[4]

अन्त में वंगश के सामने बाजीराव से सुलह करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह गया था । वंगश को इस लिखित आश्वासन के बाद कि "वह पुन: कभी बुन्देलों पर आक्रमण नहीं करेगा तथा उसे जो कर मिलता है उसपर संतोष करेगा" । उसे जैतपुर से निकल जाने की आज्ञा दी गई ।[5] इस प्रकार गुजरात और मालवा की तरह बुन्देलखण्ड से भी मुगल साम्राज्य को हाथ धोने पड़े ।

छत्रपाल की कृतज्ञता -

वंगश के नेतृत्व में संयुक्त मुस्लिम शक्तियों के आक्रमण से उसकी रक्षा

1- जी0एस0 सब देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज्, भाग 2, पृ0 107.
2- डा0 वी0जी0 डिघे, पेशवा बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ0 8.
3- गणेश चीमाजी वाड, पेशवा डायरीज, जिल्द 3, पृ0 289.
4- इर्विन, आर्मी आफ दी इण्डियन मुगल्स, पृ0 139.
5- राजवाडे, मराठ्याचा इतिहासांची, साधने, भाग 3, पृ0 14.

करने के कारण वृद्ध छत्रसाल बाजीराव का बड़ा कृतज्ञ हुआ । उसने एक दरबार किया और उसमें बाजीराव का बड़ा सम्मान किया । उसे अनेक बहुमूल्य उपहार दिये । साथ ही उसने अपने राज्य को तीन भागों में बाँटा । दो भाग उसने अपने पुत्रों हरदेशाह तथा जगतराज को दिए । तीसरा भाग उसने बाजीरा व को वंशपरंपरागत जागीर के रूप में प्रदान किया ।[1] बाजीराव को जो भाग मिला था उसकी वार्षिक आय 33 लाख थी । 1731 में छत्रसाल की मृत्यु हुई । उस समय उसकी आयु 82 वर्ष की थी । उसने अपना एक मृत्यु-पत्र लिखा था, उसकी प्रमुख धाराएँ इस प्रकार थी[2] -

1- यमुना और चम्बल पार के सैनिक अभियानों में दोनों भाइयों को बाजीराव के साथ जाना चाहिए और सेना की संख्या की अनुपात से लूट और जीती हुई भूमि में हिस्सा लेना चाहिए ।[3]

2- अगर बाजीराव दक्षिण के युद्ध में व्यस्त होता है तो दोनों भाइयों को 2 मास तक बुन्देलखण्ड की रक्षा करनी चाहिए ।

3- महाराजा छत्रसाल बाजीराव को अपना पुत्र मानते हैं, अतएव बाजीराव को उसके पुत्रों को अपने सगे भाइयों की तरह रक्षा करनी चाहिए ।[4]

इन शर्तों द्वारा जहाँ छत्रसाल का बाजीराव पर पूर्ण विश्वास प्रगट होता है वहाँ उसकी दूरदर्शी कूट नीतिज्ञता पर भी प्रकाश पड़ता है । छत्रसाल जानता था कि उसका राज्य चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ है । मुगल बादशाह भी उसके राज्य को मिटा देना चाहता था । वह यह भी अनुभव करता था कि इन संकटों का सामना करना उसके पुत्रों की शक्ति के बाहर है ।[5] अतः

1- जर्नल आफ् एशियाटिक सोसायटी आफ् बंगाल, 1878, पृ0 298.

2- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, पृ0 105.

3- डॉ0 एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 237.

4- भगवानदास गुप्त, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ0 153-54.

5- डब्लू0 आर0 पाग्सन, हिस्ट्री आफ् दी बुन्देलाज़, पृ0 353.

अत: उसने बड़ी चतुरता से पराक्रमी बाजीराव पेशवा को बुन्देलखण्ड में जागीर देकर उसका हित अपने पुत्रों के हितों से सम्बद्ध कर दिया ।[1] इस प्रकार उसने बुन्देलखण्ड की रक्षा का भार बड़ी बुद्धिमत्ता बाजीराव के कन्धों पर डाल दिया ।

बाजीराव को बुन्देलखण्ड में सागर, जालौन, गुरसराय, बांदा, कालपी तथा झांसी के भाग मिले थे । यह ही स्थान इस भाग में मराठा शक्ति के केन्द्र बन गये ।[2] इस प्रकार बाजीराव ने जयसिंह की सहायता से मालवा में तथा छत्रसाल के कारण बुन्देल खण्ड में मराठा राज्य को स्थापित करने में सफलता प्राप्त करली ।

सागर में गोविन्द पंत बुन्देले का उदय -

तीन चार साल के बाद 1733 में छत्रसाल जब बहुत बीमार पड़ा, तब रक्षा के विचार से उसने अपने राज्य के तीन टुकड़े किये और उसमें से एक बाजीराव को दे दिया ।[3] उसने बाजीराव को लिखा था कि जैसे मेरे दो लड़के हैं वैसे ही तुम मेरे तीसरे हो । बाजीराव ने छत्रसाल का दिया हुआ राज्य स्वीकार कर उसके लड़के की रक्षा करने का उसको वचन दिया । इसके बाद शिघ्र ही छत्रसाल की मृत्यु हो गई ।[4] बाजीराव को छत्रसाल से जो हिस्सा मिला था, उसमें कालपी, हटा, सागर, झांसी, सिरोंज, कुंच, गढाकोटा, हृदयनगर आदि स्थान मुख्य थे । गोविन्द बल्लाल खेर नामका बाजीराव का एक सागिर्द युद्ध में बड़ी वीरता दिखाया था । बाजीराव ने इसपर प्रसन्न होकर उसे इस भाग का सूबेदार नियुक्त कर दिया ।[5] यह आगे चलकर गोविन्द पंत बुन्देले के नाम से प्रसिद्ध

1- हार्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 172.
2- सिन्हा, राइज आफ पेशवाज़, पृ0 189.
3- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 209.
4- मथुरालाल वर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 96.
5- बालाजी हार्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 165.

हुआ । धीरे-धीरे गोविन्द पंत ने नये-नये स्थान हस्तगत किये और नये-नये किले बनाये । उसने खुरई के नवाब से भी कुछ भाग जीता था ।[1] उसमें सागर नाम का एक बड़ाभारी तालाब था । उसके किनारे सागर नाम का एक नया शहर बसाकर गोविन्द पंत ने अपनी राजधानी वहीं बनाई ।[2] इस प्रकार पेशवा के नेतृत्व में उसका प्रतिनिधि शासक बुन्देलखण्ड में स्थापित हो गया ।

बाजीराव और छत्रसाल के उत्तराधिकारी -

छत्रसाल ने मराठों से जो मैत्रीपूर्ण संबन्ध स्थापित किये थे, वे उनके पश्चात् भी उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी मराठों की शक्ति के प्रसार में भरपूर सहयोग करते रहे ।[3] छत्रसाल की मृत्यु (4 दिसम्बर 1731) के कुछ ही समय पश्चात् उनके पुत्र हिरदेशाह और जगतराज ने दो लाख की जागीरें पेशवा के प्रतिनिधियों को सौंप दी ।[4] बाजीराव ने भी छत्रसाल की मृत्यु पर शोक प्रगट करते हुए एक सम्वेदनापूर्ण पत्र हिरदेशाह को भेजा और उन्हें संकट में हर प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दिया ।[5] 1732 के अन्त में लगभग चीमाजी अप्पा को छत्रसाल के राज्य में से पेशवा का भाग निश्चित करने और स्थानीय राजाओं से राज्यकर वसूल करने के लिए बुन्देलखण्ड भेजा गया ।[6] चीमाजी ने आते ही गोविन्द बल्लाल खेर को हिरदेशाह और जगतराज के पास रवाना किया । गोविन्द बल्लाल ने जगतराज से एक लाख और हिदरेशाह से सवालाख की जागीरें

1- वी0जी0 डीघे, पेशवा बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ0 43.

2- जी0एस0 सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी पेशवाज, भाग 2, पृ0 66.

3- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 14, पृ0 7-9.

4- पन्नापत्र संग्रह, 90.

5- वही, संग्रह, 91.

6- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज्, भाग 2, पृ0 105.

एवं राजगढ़ का किला प्राप्त किया ।[1] पर छत्रसाल द्वारा निर्धारित उनके राज्य का तिहाई भाग अभी भी पेशवा को प्राप्त न हो सका ।[2] पेशवा के कुछ पत्रों से ज्ञात होता है कि छत्रसाल के उत्तराधिकारी उसे बहुत समय तक टालने में सफल हुए थे ।[3]

पेशवा बाजीराव प्रथम ने अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिए छत्रसाल के पुत्रों के प्रति कठोरता का वर्ताव करना उचित नहीं समझा । वे केवल पत्रों द्वारा ही अपना असंतोष व्यक्त करते रहे । हिरदेशाह और जगतराज से पेशवा ने अनेक सन्धियाँ की और शत्रुओं के आक्रमण करने पर उन्हें भरपूर सहायता देने का आश्वासन दिया ।[4] इस प्रकार पेशवा बाजीराव और छत्रसाल के पुत्रों के सम्बन्ध सदा मैत्रीपूर्ण रहे ।

पेशवा बालाजी बाजीराव के समय में बुन्देल खण्ड का यह भाग अधिकृत कर लिया गया । बालाजी ने ओरछा को जीतकर झाँसी के पास मराठों का अधिकार जमाया ।[5] इसका उसने नया सूबा बनाया और उसका अधिकार नारोशंकर दानी को दिया । 1756 ई0 तक यह सूबा उसके हाथ में थी ।[6] उसने वहाँ के किले के पास झाँसी शहर बसाया और वह शीघ्र ही एक धनवान नगर बन गया ।[7] 1756 के बाद झाँसी में कई सूबेदार हुए, अन्त में सन् 1770 में

1- एच0एन0 सिन्हा, दी राइज आफ् दी पेशवाज, पृ0 242.

2- हार्डीकर, पराक्रमी पेशवा, पृ0 287.

3- पन्नापत्र संग्रह, 94, 96.

4- वही, संग्रह, 91; दिघे, वही, पृ0 113.

5- राजवाड़े, मराठ्यांचा इतिहासांची साधने, भाग 2, पृ0 212.

6- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् दी मराठाज़, भाग 2, पृ0 234.

7- पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द 21, पृ0 9; तामस्कर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 283.

झाँसी की सूबेदारी रघुनाथहरि नेवालकर को मिली और आगे उसी के वंश में चलती रही ।[1] झाँसी की प्रसिद्ध विरांगना लक्ष्मी बाई इसी घराने के गंगाधर राव की पत्नी थी । इस प्रकार मराठों और बुन्देलों का सम्बन्ध सामान्यतया मैत्रीपूर्ण रहा । आरम्भ में मराठों ने बुन्देलखण्ड राजा छत्रसाल को सहायता देकर उसकी रक्षा की । बाद में यह सम्बन्ध कुछ कटुतापूर्ण अवश्य हुआ, पर मराठों ने छत्रसाल द्वारा दिया राज्य प्राप्त कर उसे कटुतापूर्ण सम्बन्ध को समाप्त कर दिया । उनके अनेक सूबेदारों ने बुन्देलखण्ड पर राज्य किया ।

मराठों और राजपूतों के सम्बन्ध प्राय: मैत्रीपूर्ण नहीं ज्ञात होते । राजपूतों का मुगल बादशाहों से सम्बन्धित होना मराठों के लिए कटुतापूर्ण था । किन्तु पेशवाओं के कार्यकाल में इसमें अनेक उतार-चढ़ाव आये । मराठा सारे भारत में हिन्दूपद पादशाही लाना चाहते थे, जिसमें राजपूत ही मुख्य बाधक थे । पर धीरे-धीरे उनमें भी मुगलों के प्रति कटुता आ गई । मराठों ने इस कटुतापूर्ण सम्बन्ध को अपने मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में परिवर्तित कर दिया । इसी प्रकार की स्थिति बुन्देल राजाओं की थी । उनके सम्बन्ध भी मराठों से सौहार्दपूर्ण बने रहे ।

1- राजवाड़े, खण्ड 6, पृ0 174; भीमसेन, मराठों का इतिहास, भाग 1, पृ0 39.

सप्तम अध्याय -

1761 का पानीपत का तृतीय युद्ध

सप्तम अध्याय

1761 का पानीपत का तृतीय युद्ध

पानीपत का तृतीय युद्ध भारत के सैनिक इतिहास की एक और क्रान्तिकारी घटना है। यह युद्ध 14 जनवरी, 1761 ई0 को एक ओर अफगान राजा अहमद-शाह अब्दाली और दूसरी ओर सदाशिवरी के नेतृत्व में मराठों के बीच लड़ा गया था। पानीपत के इस तृतीय युद्ध में अफगानों के विजय के फलस्वरूप मुगल शक्ति हमेशा के लिए बुझ गई।

कामदार एवं शाह ने लिखा है कि "मुगल शासन का आरम्भ और अन्त पानीपत के मैदान में हुआ था। "इसके अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए डा0 एस0 आर0 शर्मा ने लिखा है कि "पानीपत के प्रथम युद्ध में देहली के अफगान बादशाह इब्राहीम लोदी को हराकर बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी"।[1] पानीपत के द्वितीय युद्ध में अकबर ने अफगान बादशाह के हिन्दू सेना-नायक हेमू को, जो दिल्ली में नया विक्रमादित्य बन गया था, हारा, लेकिन वास्तव में यह हिन्दुओं की नहीं बल्कि अफगानों की हार थी। तमाम मुगल इतिहास में पराजित व पतित अफगान भारत के राज्यों को पुन: प्राप्त करने के लिए प्रयास करते रहे, परन्तु दिल्ली, जो वास्तव में राजनीति का केन्द्र था, उनके हाथ में फिर नहीं आयी।[2] अब दो सदी के कुछ अधिक समय के बाद {1556-1761 ई0} ऐसा प्रकट होने लगा कि पानीपत के रक्तरंजित रणक्षेत्र में अफगानों की विजय के फलस्वरूप मुगल शक्ति हिन्दुस्तान से ही नहीं बल्कि दिल्ली से भी हमेशा के लिए समाप्त हो गई।[3] एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब पानीपत का युद्ध अफगानों और मराठों के बीच हुआ तो मुगल सत्ता का विनाश

1- वी0के0 राजवाड़े, इतिहासाचे साधने, जिल्द 1, पृ0 128.

2- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 39.

3- आर0सी0 मजुमदार, द देलही सल्तनत, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल, भाग 6, पृ0 32.

कहाँ आ टपका । इस सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए डा0 एस0आर0 शर्मा ने लिखा है कि- "यह नहीं भूलना चाहिए कि पानीपत का तीसरा युद्ध दिल्ली के बादशाह और अफगान आक्रान्ताों के बीच में नहीं हुआ था, बल्कि "मराठों" और अब्दाली के बीच हुआ था । इसलिए यह पराजय "मराठों" की ही थी, सम्राट् की नहीं ।[1] फिर भी मुगल सम्राट के लिए यह उसकी विजय थी क्योंकि अब्दाली, शुजाउद्दौला और रुहेला प्रत्यक्ष रूप में दिल्ली में मराठा (हिन्दू) साम्राज्य की निकटवर्ती स्थापना के विरूद्ध मुगल (मुस्लिम) साम्राज्य के जबाब थे । पानीपत की अपनी विजय के पश्चात् अहमदशाह अब्दाली शाह को दिल्ली का बादशाह मानकर हिन्दुस्तान से चला गया, लेकिन यहाँ हम 'नामों' की बात कर रहे हैं, वास्तविकता की नहीं ।[2] "वास्तविकता तो यह थी कि नवम्बर 1759 ई0 में आलमगीर द्वितीय की हत्या हो जाने के बाद दिल्ली में कोई बादशाह था ही नहीं । यह काम (हत्या) मराठों से मिलकर विद्रोही वजीर गाजीउद्दीन फीरोजजंग ने किया था । फलस्वरूप अब्दाली ने क्रान्तिकारियों की चुनौती रूप में दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया ।[3] मराठों द्वारा अफगानों को दिल्ली और पंजाब से निकाल देने के प्रयास का परिणाम 'उन्ही के लिए और घोर विपत्ति थी' न कि मुगल साम्राज्य के लिए, "मुगल साम्राज्य का अन्त तो 1759 ई0 में ही हो चुका था" ।[4] पानीपत में तो यह निर्णय हुआ कि भारतवर्ष पर मराठे राज्य नहीं करेगें । शाहआलम को बादशाह मानकर अब्दाली का एकाएक वापिस चले जाना साबित करता है कि भारत पर आक्रमण करने से उसका प्रयोजन दिल्ली में अफगान राज्य पुन: स्थापित करना

1-एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 457.

2- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 240.

3- वही, पृ0 242.

4- एम0जी0 रानाडे, राइज आफ द मराठा पावर, पृ0 126.

नहीं था ।[1] 1757 ई0 में प्लासी की लड़ाई और 1764 ई0 में बक्सर की लड़ाई से यह भी प्रकट हुआ कि मुगल बादशाहों का सूबेदार या उनके वजीर तक भी अब अपने पूवर्जों की शक्ति कायम नहीं रख सकेंगे । इस महत्वपूर्ण बात के लिए भाग्य ने एक विदेशी जाति तैयार कर दी थी ।[2]

अहमदशाह अब्दाली के भारत पर पाँच आक्रमण -

बाबर की भाँति अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर कुल मिलाकर पाँच बार आक्रमण किए, जिनमें अन्तिम आक्रमण में पानीपत के युद्ध (1761) ई0 में उसे निर्णायक विजय प्राप्त हुई ।[3] अब्दाली और बाबर में मुख्य भेद इतना ही रहा कि जहाँ बाबर भारत में हर विजय के बाद आगे बढ़ा और उसने भारत में मुगल साम्राज्य की नींव रख दी वहाँ अब्दाली विजय के बाद आगे नहीं बढ़े । इन दोनों ही अवसरों पर भारत की स्थिति लगभग समान ही है । डा0 एस0 आर0 शर्मा के शब्दों में 1526 में दिल्ली का साम्राज्य सिकुड़ कर एक राज्य बन गया था जैसा 1761 ई0 में भी था । इसके अतिरिक्त आन्तरिक झगड़ों और नाममात्र के सादा नौकरों के वाह्य खतरों के कारण यह निर्बल और विक्षित हो गया था । दोनों ही बार एक हिन्दू शक्ति दिल्ली बादशाह को दबा रही थी ।[4] लोदियों के समय में महाराणा साँगा के नेतृत्व में राजपूत संघ और मुगलों के समय पेशवा के नेतृत्व में मराठा संघ, जबकि मुगलों की दशा बहुत सोचनीय थी । एकही प्रकार की परिस्थिति में विदेशी को आन्तरिक झगड़ों में सहायता देने के लिए बुलाया गया था, किन्तु दुर्भाग्यवश विदेशी ने आकर सबको दबा लिया । भेद निम्नलिखित थे- बाबर यहाँ रहने के लिए आया था, अब्दाली

1- जी0एस0 सर देसाई, द मेन करेन्ट्स आफ् मराठा हिस्ट्री, पृ0 103·

2- एस0आर0 शर्मा, द फाउण्डिंग आफ् मराठा फ्रीडम, पृ0 62·

3- सईद गुलाम अली, इमाद-उस-सहादत, पृ0 218·

4- हिंगणे दफ्तर, 2, पृ0 42·

सैनिक विजय और लूट से ही सन्तुष्ट हो गया था । बाबर ने देहली के शासक से युद्ध किया और अब्दाली ने मराठों से, जो वास्तव में बादशाह के शत्रु थे और संदिग्ध सहायक थे ।[1] बाबर को राणा सांगा ने बुलाया था जो उस समय हिन्दू संघ का नेता था । अब्दाली के प्रधान शत्रु मराठे थे जिन्होंने किसी दल को सहयोग तो किया नहीं बल्कि देश के शत्रु के साथ लड़ने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया ।[2]

अहमदशाह अब्दाली का पहला आक्रमण 1748 ई0 में हुआ । अब्दाली ने लाहौर जीत लिया मुगल सम्राट् मोहम्मदशाह की नींद बहुत देर से उड़ी । सम्राट् ने अहमदशाह का सामना करने में विलम्ब कर दिया तथापि भाग्यवश मोनुपुर की लड़ाई में 11 मार्च, 1748 ई0 को शत्रु को हरा दिया गया ।[3] सौभाग्य से ही मुगल साम्राज्य कुछ समय के लिए बच गया । मुगलों ने अब्दाली का पीछा नहीं किया, वरना अब्दाली भारत में दुबारा हाक्रमण करते समय दो बार सोचता । अब्दाली ने दूसरी चढ़ाई 1748 और तीसरी 1748 में की थी । उस समय अहमदशाह मुगलों का बादशाह था । अपने दूसरे आक्रमण में अब्दाली ने पंजाब के सूबेदार मुइन-उल-मुल्क को 14 हजार वार्षिक कर देने के लिए वाध्य किया । जब सूबेदार उस धनराशि को नहीं दे सका तो अब्दाली का तीसरा आक्रमण हुआ जिसमें उसने पंजाब तथा मुल्तान को जीत लिया ।[4] मुगल सम्राट ने पंजाब और मुल्तान के सूबे अब्दाली को देकर उससे समझौता कर लिया । इससे अब्दाली को पंजाब की राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया और फलस्वरूप वह आगे चलकर दिल्ली की राजनीति में भी हस्तक्षेप

1- सेलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 27, पृ0 259.

2- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज़्, भाग 2, पृ0 370.

3- भाऊ साहेबाची बखर, पृ0 327.

4- तारीख-ए-मुजफ्फरी, पृ0 224.

कर सका ।[1] अब्दाली के तीसरे आक्रमण के बाद ही मुगल सम्राट के नये वजीर गाजीउद्दीन इमामुलमुल्क ने अप्रैल, 1752 ई0 में मराठों से एक सौदा किया ।[2] सिंधिया व होल्कर के साथ किए गये इस समझौते के अनुसार -

1- पेशवा ने वाह्य व आन्तरिक शत्रुओं से मुगल साम्राज्य की रक्षा का आश्वासन प्राप्त किया ।

2- मुगल सम्राट ने इस रक्षा के बदले में 50 लाख रूपये देने का वचन दिया ।

3- पेशवा को पंजाब, सिन्ध व दोआब से चौथ वसूल करने का अधिकार प्रदान किया ।

4- पेशवा को आगरा और अजमेर की सूबेदारी प्रदान की ।

5- यदि पेशवा स्वयं न आ सके, तो सरदारों को सहायतार्थ नियुक्त करेगा ।

उपरोक्त समझौते ने अफगानों और मराठों के बीच विरोध उत्पन्न कर दिया, जिसका निर्णय पानीपत के मैदान में हुआ । सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि समझौते के अनुसार - "उत्तर-पश्चिम के सीमा प्रान्त पर मराठों का अधिकार हो गया, यद्यपि उन पर बादशाह का राज्य कायम था जिससे अब्दाली का सामना करना मराठों के हित में था । बादशाह को इस प्रान्त की रक्षा के विषय में कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं थी ।[3] सफदरजंग यहाँ तक कहने लगा था कि मराठों की सहायता से काबुल को फिर से जीत लिया जाय । यह समझौता मराठों के सीमित साधन को देखते हुए, उनके लिए एक बड़ा

1- शिंदेशाही इतिहासाचे साधने, पृ0 312-13.

2- इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, 1934-35, पृ0 148.

3- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, 251.

कार्य था । वे इसके लिए पूर्ण समर्थ नहीं थे, क्योंकि पेशवा उस समय दक्षिण में व्यस्त था और सिंधिया तथा होल्कर के मध्य अच्छे सम्बन्ध नहीं थे । इसके आन्तरिक व वाह्य आक्रमण से रक्षा का उत्तरदायित्व अब उनपर आ गया"।[1]

1752 ई0 के अन्त में बार-बार अब्दाली के पुन: आक्रमण की खबरें लगी । फरवरी 1753 ई0 में अब्दाली के एक दूत ने मुगल दरबार में आकर 50 लाख की माँग की थी, जिसके विषय में पहले वचन दिया जा चुका था ।[2] जब बादशाह ने क्षुब्ध होकर अपने दरबारियों से सलाह ली तो उन्होंने ताना मारा- "मराठों ने अब्दाली से लड़ने का काम अपने हाथ में लिया है । आपने उनको आगरा और अजमेर की सूबेदारी दे दी है और चौबीस सूबों की चौथ का अधिकार उन्हें दे दिया है । आपने उनको रुपया दिया है और उनके हाथ में शक्ति सौंप दी है, अब आप 'उनसे' पूछिये कि क्या करना चाहिए" ।[3] मुगल दरबार की स्थिति बहुत विचित्र हो गयी । मराठे प्रत्यक्ष रूप से दिल्ली की राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे और मराठा सरदार होल्कर ने मुगल बादशाह अहमदशाह को वजीर सफदरजंग के स्थान पर इमाद-उल-मुल्क को वजीर बनाने के लिए वाध्य किया । नये वजीर ने 1754 ई0 में अहमदशाह को गद्दी से उतार कर अन्दर कर दिया और जहाँदरशाह के दूसरे लड़के अजीजुद्दीन को आलमगीर द्वितीय के नाम से मुगल तख्त पर बैठा दिया गया ।[4]

आलमगीर द्वितीय के समय अहमदशाह अब्दाली का 1757 ई0 में चौथा आक्रमण हुआ । आलमगीर बूढ़ा, अयोग्य, और दुर्बल चरित्र का था । उसका स्वार्थी और सिद्वान्तहीन वजीर इमादुलमुल्क बुरी तरह मराठों की शक्ति पर

1- काशीराज, देहली क्रोनिकल; गुलाम अली कृत इमाद-उस-सहादत, जिल्द 2, पृ0 186.

2- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 2, पृ0 142.

3- राजवाड़े कृत मराठांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 265.

4- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 137.

निर्भर हो गया था ।[1] मराठों की सहायता पर निर्भर करके उसने पंजाब पर हमला किया और उसे अब्दाली द्वारा सूबेदार नियुक्त की गयी "मुगलानी बेगम" को कैद करके उसके स्थान पर अदीनाबेग को सूबेदार नियुक्त कर दिया । अहमदशाह अब्दाली ने क्रुद्ध होकर चाथा भीषण आक्रमण किया जिसमें वह पंजाब को जितते हुए दिल्ली पहुँच गया ।[2] वह लगभग एक महीने दिल्ली में रहा । उसने मुगल बादशाह आलमगीर की एक लड़की से स्वयं शादी की, एक अन्य लड़की की शादी अपने लड़के से की और चारो ओर भारी लूटमार मचायी । जाने से पहले उसने नजीबुद्दौला को मीरबख्शी का पद देने के लिए आलमगीर को बाध्य किया और साथ ही अपने लड़के तिमूर को पंजाब का सूबेदार बना दिया । अब्दाली के लौट जाने पर रघुनाथराव के नेतृत्व में मराठे दिल्ली पहुँचे ।[3] नजीबुद्दौला को मीरबख्शी का पद छोड़कर भागने के लिए विवश कर दिया गया । पंजाब से तिमूर को भगा दिया गया और पहले अदीनाबेग को और उसकी मृत्यु के बाद शाबाजी सिंधिया को पंजाब का सूबेदार बनाया ।[4] इस समय {1758} में मराठा शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी, लेकिन मराठों के इस कार्य ने ही पानीपत की तीसरी लड़ाई की पृष्ठभूमि भी तैयार करदी ।[5] मराठे मुगलों के लिए इतने क्रान्तिकारी बन गये थे कि नजीबुद्दौला और स्वयं बादशाह आलमगीर ने मराठों के विरूद्ध अहमदशाह अब्दाली से सहायता की याचना की । इसके पूर्व कि अब्दाली भारत पहुँचे, वजीर इमादुलमुल्क ने नवम्बर 1759 ई0 में बादशाह आलमगीर की हत्या करवा दी और कामबख्श के एक पोते

1- एच0एन0 सिनहा, दी राइज़ आफ़ द पेशवाज़, पृ0 165·

2- जी0एस0 सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ द मराठाज़, भाग 2, पृ0 235·

3- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ़्तर, जिल्द 21, पृ0 197·

4- फलके द्वारा सम्पादित, शिन्दे शाही इतिहासांची साधने, जि0 1, पृ0 222·

5- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 168·

को शाहजहाँ तृतीय के नाम से गद्दी पर बैठा दिया जो नाममात्र के लिए केवल एक वर्ष तक बादशाह रहा ।[1] उस समय आलमगीर का सबसे बड़ा लड़का अलीगौहर, वजीर इमादुलमुल्क के षड़यन्त्रों के कारण दर-दर भटक रहा था । आलमगीर के मृत्यु के बाद ही उसने बिहार में अपने आप को शाहआलम द्वितीय के नाम से मुगल बादशाह घोषित कर दिया ।[2] यद्यपि वह अगले बारह वर्षों तक दिल्ली आने का साहस नहीं कर सका । उसके समय की मुख्य घटनाएँ पानीपत की तीसरी लड़ाई और भारत में अंग्रेजी सत्ता का विकास था । उसका कार्य-काल 1759-1806 ई0 तक रहा ।[3]

अहमदशाह अब्दाली का भारत पर जब पाँचवां आक्रमण हुआ उसकी परिणति 1761 ई0 में पानीपत के मैदान में मराठों की लज्जाजनक हार के साथ हुयी ।[4] इस युद्ध का विस्तार से विवेचन हम आगे करेंगे ।

पानीपत के तृतीय युद्ध (1761 ई0) के कारण -

1760 ई0 तक बालाजी के नेतृत्व में मराठों का गौरव-ध्वज फहरता रहा, लेकिन शीघ्र ही उनकी शक्ति और प्रभुता को अहमदशाह अब्दाली ने धूल में मिला दिया ।[5] पानीपत की तीसरी लड़ाई में उसने मराठों को निर्णायक शिकस्त दी । इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे । 1- दिल्ली दरबार में मराठों का राजनीतिक हस्तक्षेप इतना बढ़ गया था कि वे मुगल सम्राट को बनाने-बिगाड़ने वाली शक्ति बन गए । अफगानों और ईरानी मुस्लिम सरदारों ने मराठों की बढ़ती हुई शक्ति से ईर्ष्यालु होकर अहमदशाह अब्दाली को आक्रमण करने के लिए

1- तारीखे मुजफ्फरी, पृ0 180-82.

2- भाऊ साहेबांची बखर, पृ0 92.

3- हरीराम गुप्ता, मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 247.

4- वही, पृ0 253.

5- सियार-उल-मुत-खारीन, जिल्द 3, पृ0 66.

भड़काया ।[1] 2- मराठों ने रूहेलखण्ड (उत्तर प्रदेश) को बर्बाद कर दिया । रूहेलखण्ड के नबाब, अहमदशाह अब्दाली से सम्बन्धित थे, अत: उन्होंने अब्दाली को मराठों पर आक्रमण करने के लिए उकसाया । 3- जैसा कि कर्नल गौतम शर्मा ने लिखा है- "अब्दाली, एक सफल अभियान के बाद अप्रैल, 1757 ई0 में अपने देश लौट गया था । उसके जाते ही मराठे उत्तरी भारत में वापस आ गए । उन्होंने दिल्ली में अब्दाली के प्रतिनिधी नजीब को निकाल बाहर किया और दिल्ली पर अपना प्रभाव जमा लिया । फिर पंजाब पर से अफगानों की सत्ता को खत्म कर दिया और अप्रैल, 1758 ई0 में लाहौर पर कब्जा कर लिया[2], फिर वे उत्तर-पश्चिम में अटक तक बढ़ गए और उनके घोड़ों ने सिन्ध नदी में पानी पिया । उनके कुछ दस्ते पेशावर तक चले गए । मराठों की इन हलचलों के बारे में सुनकर अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर फिर से आक्रमण किया" ।[3]

उल्लेखनीय है कि इस समय मराठा शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी, किन्तु मराठों ने कुछ ऐसी भारी भूलें की जो उनके लिए भविष्य में घोर कष्टदायक सिद्ध हुई । राघोबा ने पंजाब की शक्ति को पूर्णत: नहीं कुचला और होल्कर के कहने से इसे मुक्त कर दिया । 1758 ई0 में अब्दाली चारो ओर से घिरा हुआ था । पश्चिम की ओर ईरानी उसे धमकी दे रहे थे तथा उसके भतीजे अर्ब्दुरहमान ने उसके विरूद्ध विद्रोह कर दिया था ।[4] उस समय ईरान के शाह ने मराठों से सिन्ध का प्रस्ताव किया था, जिसे अस्वीकार कर दिया गया । मराठा सरदारों ने पंजाब को छोड़ते समय रक्षा का पूरा प्रबन्ध नहीं किया । पेशवा ने

1- तारीखे हुसैनशाही, पृ0 51·

2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 165·

3- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 190·

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज्, भाग 2, पृ0 268·

स्पष्ट आदेश दिया था कि होल्कर को लाहौर में रखा जाय, क्योंकि राघोबा व होल्कर को आशा थी कि दत्ताजी शीघ्र पंजाब पहुँच जायेगा, अत: रक्षा का प्रबन्ध ठीक हो जायगा, किन्तु अब्दाली को इन गतिविधियों का पूर्ण परिचय प्राप्त था[1], अत: उसने इसी निर्बल स्थान पर प्रहार किया । नजीब का उपयोग और दत्ताजी का वध किया । इन भूलों के परिणाम स्वरूप सुदूर प्रदेशों पर मराठों का शासन छ: माह से अधिक नहीं रह सका ।[2]

मराठों ने अहमदशाह अब्दाली के पुत्र तिमूरशाह को पंजाब से निकाल दिया जबकि अहमदशाह अब्दाली पंजाब को अपना प्रान्त समझता था । अहमदशाह अब्दाली महत्वाकांक्षी विजेता था ।[3] अपने विशाल विजित प्रदेशों पर अधिकार बनाये रखने के लिए उसे एक बहुत बड़ी सेना रखनी पड़ती थी । इस सेना का खर्चा चलाना आसान न था । अत: धनराशि प्राप्त करने की दृष्टि से उसने पंजाब के उपजाऊ प्रदेशों को अपने अधीन करके वहाँ से आक्रमण का आधार बनाकर हिन्दुस्तान की विपुल सम्पदा लूटने की योजना बनाई । इसके लिए उसे अवसर भी मिल गया ।[4]

अब्दाली का आक्रमण और पानीपत का तीसरा युद्ध §1761 ई0§ -

इन परिस्थितियों में अफगान के शासक अहमदशाह अब्दाली और मराठों में युद्ध अवश्यम्भावी हो गया ।

पानीपत के युद्ध से पूर्व की घटनाएँ -

अब्दाली ने जहानखाँ के नेतृत्व में जुलाई, 1759 ई0 में पर्याप्त सेना

1- देहली क्रोनिकल, इमाद-उस-सआदत, पृ0 180.

2- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 123.

3- किनकेड एण्ड पारसनिस, ए हिस्ट्री आफ द मराठा पीपुल, भाग 2, पृ0 226.

4- रानाडे, राइज आफ द मराठा पावर, पृ0 307.

लाहौर पर आधिपत्य करने के लिए भेजी और स्वयं शिकारपुर के मार्ग से रवाना होकर पेशावर में ठहर गया । उस समय मराठा सरदार सबाजी पंजाब का अस्थायी रक्षक था ।[1] वह विस्तृत सेना की रक्षा करने में असमर्थ था । अगस्त में जहानखां को सबाजी ने युद्ध में परास्त किया । इस युद्ध में मुख्यतया सिक्खों ने मराठों की सहायता की । अत: अब्दाली ने समग्र दल सहित पंजाब पर आक्रमण किया ।[2] नवम्बर, 1759 ई0 में सबाजी अंबाला, कुंजपुरा होते हुए दत्ताजी के पास शुकरताल पहुँचे । मुल्तान में केवल त्र्यम्बक की सेना थी, जिसे अफगानों ने काट डाला ।[3]

पानीपत के मैदान में निर्णायक युद्ध से पहले घटनाएं तेजी से घटी । इनका वर्णन कर्नल गौतम शर्मा ने इस प्रकार किया है -

24 दिसम्बर, 1759 ई0 को उसने {अब्दाली} थानेश्वर के निकट मराठों ने दिल्ली के उत्तर में रूहेलों और दुर्रानियों के हाथों दूसरी हार खाई और 4 मार्च को होल्कर और जनकोजी को बुरी तरह पराजित होना पड़ा ।[4]

जब पेशवा को इन हारों की खबर मिली तब उसने मराठा प्रभाव को उत्तर में फिर से स्थापित करने के लिए एक सेना भेजने का निश्चय किया । इसकी कमान सदाशिवराव भाऊ के हाथों में दी गई और पेशवा के लड़के विश्वासराव को प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया । भाऊ उत्तर के लिए एकदम नया था और वह वहाँ कभी नहीं आया था ।[5] उसे उत्तरी भारत की हालातों का, दिल्ली में राजनीतिक सत्ता के लिए चल रहे आपसी षड्यन्त्रों को और यहाँ के

1- पुरन्दरे दफ्तर, जिल्द 1, पृ0 386.

2- हरीराम गुप्ता, मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 322.

3- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 170.

4- भाऊ साहेबांची बखर, पृ0 93.

5- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 224.

प्रमुख व्यक्तित्वों का कोई परिचय नहीं था । अब्दाली और उत्तर के विषय में होल्कर और गोविन्द पन्त बुन्देले ही उसकी सूचनाओं के सूत्र थे । 3,000 नियमित सैनिकों, 22,000 घुड़सवारों, इब्राहीम खाँ गर्दी के 8,000 पैदल सैनिकों की एक सेना के साथ उसने 14 मार्च, 1760 ई0 को कूच किया ।[1]

1 अगस्त को मामूली झपट के बाद दिल्ली पर कब्जा कर लिया गया । 3 अगस्त को राठों का मित्र सूरजमल अपनी पूरी सेना के साथ अचानक उनका साथ छोड़कर चला गया । सूरजमल के जाने से नर्वदा के उत्तर में मराठों का कोई मित्र न बच रहा । भाऊ के पास पहले ही धन की कमी थी । राजधानी पर कब्जा कर लेने के कारण उसका खर्च बढ़ गया ।[2] इसे पूरा करने के लिए उसने दीवानेखास की चाँदी की मढ़ाई का एक हिस्सा उतरवा लिया । इसके बाद उसने दोआब में स्थित कुंजीपुर पर 17 अक्तूबर को अधिकार कर लिया । यहाँ से उसे 17 लाख रूपये, 5,000 घोड़े और लगभग 20,000 मन अनाज मिला । दशहरा आ गया था । सरदारों की पत्नियों के कहने पर 25 अक्तूबर को उसने सेना सहित कुरूक्षेत्र के लिए कूच किया ।[3] मराठे अभी आधा रास्ता ही तय कर पाए थे कि पता चला कि अब्दाली पूर्व की ओर यमुना पार कर चुका है । अब्दाली ने 27 अक्तूबर को यमुना पर की ओर सोनीपत में शिविर लगाया । भाऊ पानीपत में जम गया, उसने सलाहकारों की इस सलाह को न माना कि मोर्चा जमाने के बदले फौरन मराठा ढंग से एक गतिशील युद्ध लड़ा जाए ।[4] उसके न मानने का कारण यह था कि उस समय तक मराठा युद्ध की धारणा ही बदल चुकी थी । मोर्चे बनाए गए और तोपों को नियमित दूरियों पर लगादिया गया।

1- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 233·

2- तारीखे हुसैनशाही, पृ0 57·

3- दामोदरतामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 386·

4- सर देसाई, मराठी रियासत, (मध्य विभाग), पृ0 285·

अब्दाली ने दिल्ली और आगे दक्षिण से जुड़ी मराठों की संचार-लाइनों को काट डाला और उनके लिए एक गम्भीर खतरा पैदा कर दिया। नवम्बर में अब्दाली पानीपत से 7 मील के भीतर आ गया और उसने अपने को मराठा शिविर के दक्षिण में जमा लिया।[1] अब्दाली नादिरशाह का विश्वासपात्र शिष्य था और उसे अपने स्वामी की सेना और सैनिक अनुशासन की एक कुशल प्रणाली मिली थी। दूसरी ओर मराठा सेना में बहुत ढील-ढाल थी। मराठों का प्रशासनिक अंग बहुत भारी भरकम था। सरदारों, प्रमुखों और सिपाहियों के परिवार बड़ी संख्या में साथ थे। वे विभिन्न तीर्थों के दर्शन करने के लिए साथ चल रहे थे।[2]

अगले दो महीने बहुत ही हलचल के रहे, दोनों सेनाओं के मोर्चाबन्दी होने के दिन से ही मराठों ने झपट लेनी शुरू कर दी थी। पानीपत में प्रतिदिन नोंक-झोंक होती थी। 7 दिसम्बर को एक टक्कर हुई, जिसमें बलवन्तराव मारा गया। उसकी पत्नी उसी रात सती हो गई। इससे भाऊ को बहुत गहरा धक्का लगा क्योंकि वह उसका सबसे बढ़िया सलाहकार और दाहिना हाथ था।[3] अफगानों ने मराठों के शिविर को चारों ओर से पूरी तरह काट डाला।

31 दिसम्बर के बाद अन्तिम पखवाड़े में अब्दाली ने फन्दा और भी कस दिया और दक्षिण से मराठों का सम्बन्ध एकदम समाप्त कर दिया। भाऊ के सामने अब सिर्फ उत्तर पश्चिम का मार्ग खुला था। इस दिशा में पटियाला के सिक्खों ने एक दो बार रसद भेजी, अब्दाली ने एक छोटा दस्ता भेजकर इन जाट सिक्खों को मजबूर किया कि वे मदद बन्द कर दें।[4] 16 दिसम्बर को एक

1- तारीखे मुजफ्फरी, पृ0 185-86.

2- भीमसेन, वीर मराठे, पृ0 92.

3- पुरन्दरे दफ्तर, जिल्द 1, पृ0 391.

4- ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य, जिल्द 1, पृ0 145.

मुठभेड़ में पन्त मारा गया और उसका सिर काटकर भाऊ के पास उपहार स्वरूप भेजा गया । भाऊ ने शान्ति के लिए कोशिश की, लेकिन उसने इस प्रयास को सफल नहीं होने दिया । 3 जनवरी, 1761 ई0 को भाऊ ने अपने अधिकारियों को परामर्श किया और युद्ध लड़ने का निश्चय किया । अब तक भूख के कारण सेना का जीवन असह्य हो चुका था ।[2]

पानीपत के मैदान का युद्ध (14 जनवरी, 1761 ई0) -

भाऊ 14 जनवरी की सुबह अपनी सेना के साथ बाहर निकला, अब्दाली ने यह देखा और उसने भी अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दिया । दोनों ओर से मोर्चा बन्दी पूरी की गई और अन्तिम प्रबन्ध पूरे किये गये । अब्दाली के पक्ष में एक बड़ी बात यह थी कि उसे जनवरी के पूरे सप्ताह में अपने घर से ताजे दस्तों की कुमुक मिल चुकी थी, जबकि मराठों को कोई सहायता नहीं मिल पायी थी ।[3] अब्दाली का तोपखाना भी अधिक कुशल और गतिशील था । उसने 1000 ऊँटों पर दो-दो हल्की पोपें 'जम्बूर कें' लादी हुई थीं । मराठों का तोपखाना उनके लिए महँगा पड़ा क्योंकि युद्ध शुरू होने के बाद भारी तोपों को आसानी से इधर-उधर हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता था । एक अनुमान के अनुसार मराठा सेना में 55000 घुड़सवार, 15000 पैदल और विभिन्न किस्मों की दो-सौ तोपें थी ।[4] दूसरी ओर अफगान सेना में 41800 घुड़सवार, 38000 पैदल और 70 या 80 के बीच तोपें थी । इस प्रकार दोनों की सेनाएँ संख्या में लगभग बराबर थीं । सर देसाई ने लिखा है कि हाल में हुए अनुसन्धानों के अनुसार उस युद्ध में वास्तविक सैन्य संख्या 60 हजार मुसलमान तथा 45 हजार

1- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 198.

2- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 187.

3- तारीखे हुसैनशाही, पृ0 58.

4- शिन्देशाही इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 60.

मराठे थे। रण-कौशल में अब्दाली, भाऊ से श्रेष्ठ था। अब्दाली के पास रिजर्व फोर्स भी थी जिसका उसने ठीक समय पर अच्छा इस्तेमाल किया।[1]

मराठे सादे कुरते पहने थे, अफगान ऊन या चमड़े की मोटी बण्डियां पहने हुए थे और उच्च वर्ग के लोगों के द्वारा लोहे का कवच धारण किया गया था, जिनपर मराठों की तलवार व भालों का प्रभाव नहीं होता था।[2]

आखिर रणभेरी बज उठी। पानीपत के इस युद्ध और उसमें दोनों पक्षों के महाविनाश का मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए कर्नल गौतम शर्मा ने लिखा है -

"युद्ध प्रात: 9 बजे शुरू हुआ। मराठों ने तोपखानों की मार से उसे शुरू किया, लेकिन यह गोलाबारी बेकर रही। इसके बाद पैदल सेनाएं आमने-सामने युद्ध के लिए निकट आ गईं। भाऊ चाहता था कि गर्दीखां की पैदल सेना बाएं से आक्रमण का नेतृत्व करे। पैदल सेना द्वारा आरम्भिक हमले के बाद पार्श्व के घुड़सवार आगे बढ़ें और काम को पूरा करें। गर्दी के सामने स्थित बरखुरदार खां के दस्ते उसके दस्ते पर छा गए। दो बटानियनों को रोकने के लिए लगाकर गर्दी ने संख्या में अपने से दुगुने शत्रु पर आक्रमण किया। अपने सुसंगठित हमले से उसने शत्रु के पैर पूरी तरह उखाड़ दिये और उसके लगभग 8 से 9 हजार के बीच सैनिक हताहत रहे। रुहेले फिर भी अड़े रहे।[3] मराठा घुड़सवारों ने गर्दी की मदद नहीं की। आदेश के विरुद्ध वे बहुत दूर तक बढ़ते चले गए। रुहेलों की बन्दूक के फायर ने इन घुड़सवारों के बखिए उधेड़ दिए। उनकी पंक्ति टूट गई और इन्हें बहुत बिखर कर पीछे हटना पड़ा।[4] फिर भी गर्दी पहले तीन घण्टों में अफगानों के दाहिने पार्श्व को तोड़ चुका था। जब अब्दाली को पता लगा तो

1- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज, भाग 2, पृ0 274.

2- सावरकर हिन्दूपद पादशाही, पृ0 107.

3- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 192.

4- इमाद-उस-असादत, पृ0 186.

उसने 3000 सैनिक वहाँ भेजे । ये डेढ़ बजे तक वहाँ आ जमे और उन्होंने गर्दी के सैनिकों का सफाया कर डाला ।[1] गर्दी की सेना पहले ही काफी हानि उठा चुकी थी और उसके पास रिजर्व फोर्स भी नहीं थी । इस हमले के बाद बचे-खुचे सिपाही भाग निकले । इस प्रकार अफगानों के बाएँ पार्श्व पर मराठा हमला बेकार गया ।[2]

पहले दौर में, मराठे केन्द्र में भी शत्रु की अपेक्षा अच्छी स्थिति में थे । तोपों के एक युद्ध के बाद जिसमें ऊँटों पर चलनेवाली तोपों ने प्रभावी काम किया, शाह वलीख खाँ ने पैदल सेना के आक्रमण का नेतृत्व किया । भाऊ की अपनी हजरत ने आक्रमण का वीरतापूर्वक मुकाबला किया । इसके बाद घुड़सवार-युद्ध लड़ा गया, जिसमें मराठा भालों और तलवारों से शत्रु पर कहर ढा दिया । इस मुठभेड़ में लगभग 3000 हजार दुर्रानी मारे गए और अफगानों की पंक्ति में दरार पड़ गई । बड़ी संख्या में अफगान बिखर कर भागे । दोपहर के समय मराठे बाएँ बाजू की तरह केन्द्र में भी आगे थे ।[3] यहाँ भी घुड़सवारों के उचित रिजर्व न होने के कारण भाऊ को हानि उठानी पड़ी, क्योंकि वह अर्जित लाभ को आगे न बढ़ा सका और सफलता को पूर्णता तक नहीं ले जा सका । अब तक उसकी पूरी फौजें लड़ाई में जुट चुकी थीं । दोपहर आ गई थी और मराठे भूखे और थके हुए थे । इस नाजुक समय जब अब्दाली के सामने हार थी, उसके अधीन कमाण्डरों और दस्तों ने बहुत बढ़िया हाथ दिखाया ।[4] सैनिकों की भागने की बात सुनकर उसने अपनी सैनिक पुलिस मसकची को उन्हें रोकने के लिए भेजा । इस प्रकार लगभग 8000 आदमी इकट्ठे किये गए । इनमें 4000 ताजे दस्ते और जोड़े गए । इनमें से 3000

1- हरीराम गुप्ता, मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 382.

2- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 180.

3- ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य, जिल्द 1, पृ0 162.

4- भाऊ साहेबाची बखर, पृ0 97.

को दाहिने बाजू में रूहेलों के पास और बाकी को केन्द्र में दुर्रानी वजीर के पास भेजा गया । वहाँ ये लगभग डेढ़ बजे पहुँचे । बाजुओं को आदेश दिया गया था कि वे हर बार जब शाह वलीखाँ हमला करे, वे बराबर से मराठों को केन्द्र में दबाएँ । भूखे और थके मराठे केन्द्र में घटकर कुल 10000 रह गये थे और उनका सामना संख्या में इतने ही ताजे दस्ते से था ।[1] मराठा सेना के दाहिने ओर होल्कर, जनकोजी और अन्ताजी अपने स्थानों पर खड़े रहे । इन्हें दुर्रानियों ने हाल में ही हर मुठभेड़ में हराया था । इसलिए इनका मनोबल बहुत ऊँचा नहीं था । इस प्रकार मराठों का पूरा दाहिनाबाजू एकदम निष्क्रिय रहा और युद्ध के खतरनाक क्षणों में भी वह शत्रु के सीधे-सीधे सम्पर्क में नहीं आया ।[2] फिर भी परोक्ष रूप से, अफगानों को उस मोर्चे पर आगे बढ़ने से वे रोके रहे । जिस समय मराठों की किस्मत का फैसला हो रहा था, होल्कर युद्ध भूमि छोड़कर चला गया । इस प्रकार जनकोजी का पार्श्व उखड़ गया ।[3] तब तक शाहपसन्द खाँ और नजीब मराठों के अग्र-मोर्चे के बहुत निकट पहुँच चुके थे । उन्होंने इस पार्श्व पर हमला किया । जनकोजी घायल हो गया और उसकी सेना तेजी से पीछे हट गई । इस हमले के फलस्वरूप मराठों की दाहिनी बाजू साफ हो गयी और उसका अस्तित्व भी समाप्त हो गया ।[4]

केन्द्र में भाऊ ने हार नहीं मानी और वह लगभग एक घण्टे तक लड़ता रहा । उसने तीन प्रत्याकरण किए और हर बार स्वयं नेतृत्व किया । थके हुए मराठों की पंक्तियाँ तेजी से बिखरती रही थीं । अब्दाली ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया । उसने अपने निजी दस्तों में से लगभग 6000 सैनिकों के तीन स्क्वाड्रन भेजे और भाऊ को तीन तरफ से घेर लिया । एक स्क्वाड्रन ने दाहिनी तरफ से गोली बारी की और बाईं ओर झपटकर स्थिति सम्भाल ली ।[5] दूसरी ने

1- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 198·
2- सियार उल मुतखारीन, जिल्द 3, पृ0 67·
3- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासी साधने, जिल्द 1, पृ0 225·
4- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 193·
5- पुरन्दरे दफ्तर, जिल्द 1, पृ0 391·

बाईं ओर से वैसा ही किया और दाईं ओर जा जमी। तीसरी स्क्वाड्रन ने भी यही तरीका अपनाया। इस भयानक गोलाबारी ने मराठों को पूरी तरह उखाड़ दिया। लगता था कि वे चारो तरफ से घिर गये हैं। भारी गड़बड़ी फैल गई। गतिशील ऊटों पर रखी तोपों ने भयानक कहर ढाया और मामले का फैसला कर दिया।[1] विश्वासराव लगभग दो बजे मारा गया। अपने भतीजे की मृत्यु के बारे में सुनकर और निश्चित पराजय को सामने देखकर, लगता है, भाऊ सेनापति के रूप में अपने कर्त्तव्य को भूल गया और एक मामुली घुड़सवार की भाँति आचरण करने लगा। वह अपने आदमियों का उत्साह बढ़ाता रहा और उसने शत्रु पर आखिरी हमले का नेतृत्व किया।[2] कुछ का कहना है कि वह लड़ाई में मारा गया। कुछ अन्यों का कहना है कि वह बच निकला और साधू के रूप में लम्बे समय तक अज्ञातवास करता रहा।

मराठे बिना नेताओं के लड़ रहे थे और हर कोई तेजी से पीछे हट रहा था। तभी लगभग 2000 मुसलमान विद्रोही बन उठे और उन्होंने शिविर को लूटना शुरू किया। इसने अन्तिम भगदड़ और निकट ला दिया, लगभग 4 बजे लड़ाई रूक गई और मुकाबला पूरी तरह समाप्त हो गया।[3]

जब मराठे भाग रहे थे तो अफगानों और उनके साथियों ने लगभग 20 मील तक उनका पीछा किया। इसके बाद एक नर-संहार शुरू हो गया। लड़ाई रात में बहुत देर तक चलती रही, क्योंकि चाँद बहुत देर में छुपा। अब्दाली अपनी जगह टिका रहा और उसने अपने आदमियों को नियंत्रण में रखा। कम से कम 30000 मराठे युद्ध भूमि पर हताहत हुए।[4] अगले दिन पानीपत की ओर बढ़ने

1- देहली क्रोनिकल, वैण्डल, पृ0 79-80.

2- तारीखें हुसेनशाही, पृ0 52-53.

3- इमाद उल सहादत, पृ0 76-77.

4- मिसकिन कृत तहमासा खाँ के संस्मरण, पृ0 210.

के लिए आदेश दिये गये और कत्लेआम के हुक्म जारी हुए । पानीपत में और उसके आसपास लगभग 50,000 लोगों को काट डाला गया । लगभग 10,000 भारवाही पशु छोड़ गये । जिनमें 3000 ऊँट और 300 हाथी सामिल थे । भारी मात्रा में साज-सामान, शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद और किमती चीजें छूट गई ।[1] मराठा शिविर में खुली लूट मची । हजारो घायल तेज ठण्ड से युद्ध-भूमि में ही मर गये । इसदिन महाभारत की तरह योद्धाओं की पूरी एक पीढ़ी समाप्त हो गई । अफगानों के लगभग 20,000 आदमी मरे" ।[2]

अब्दाली ने 29 जनवरी, 1761 ई0 को दिल्ली में प्रवेश किया, उसने शाहआलम को भारत का सम्राट् व नजीब खाँ को मीर बख्शी घोषित तकया, किन्तु अब अहमदशाह की सेना ने खुला विद्रोह कर दिया, क्योंकि उसे 17 महीने से वेतन नहीं मिला था और न तो दिल्ली से धन प्राप्ति की आशा ही थी और न अन्य साधनों से ।[3]

जनवरी के अन्त में पेशवा को किसी साहूकार का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था कि दो मोती गल गए, 90 मोहरें खो गई और चाँदी और ताँबे की तो कुछ गणना ही नहीं है । उन शब्दों से सदाशिवराव, विश्वासराव, सरदारों तथा सेना के दुर्भाग्य का समाचार मिल गया । पेशवा को उस भयानक पराजय से गहन मानसिक आघात लगा ।[4] वह शीघ्र ही पूना की ओर अग्रसर हुआ, जहाँ जून, 1761 ई0 के अन्त में उसका देहावसान हो गया ।

मराठों की पराजय के कारण -

पानीपत में मराठों की पराजय के कारणों का विश्लेषण करते समय सर्वप्रथम भाऊ साहब, होल्कर, गोविन्द पन्त आदि कुछ व्यक्तियों को इसके लिए

1- तारीखें मुजफ्फरी, पृ0 179.
2- कर्नल गौतम शर्मा, भारतीय सेना और युद्धकला (प्राचीन काल से आज तक), पृ0 101-104.
3- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 160.
4- मुजमित उल तवारीख बाद नादिरिया, पृ0 127.

उत्तरदायी माना जाता है। कहा जाता है कि भाऊ का सेनापतित्व, सामरिक योजना एवं उसका व्यवहार दोषपूर्ण था। इसका समुचित मूल्यांकन करते हुए सजवालकर महोदय ने लिखा है कि भाऊ को प्रथम श्रेणी का सेनापति स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह मानसिक दृष्टि से भी सेनापति नहीं था, जबकि अहमदशाह पूर्ण रूप से सैनिक था। यद्यपि भाऊ को अन्य मराठा सरदारों की भाँति सैनिक प्रशिक्षण प्रदान किया गया था, किन्तु वह कूटनीतिज्ञ अधिक और सेनापति कम था। उधर अहमदशाह अब्दाली को नादिरशाह के नेतृत्व में सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ था।[1]

अकुशल सामरिक योजना -

भाऊ साहब की सामरिक योजना की आलोचना की जाती है। उस समय तक कभी मराठे खाइयों के पीछे से नहीं लड़े थे और न ही उन्होंने सीधे युद्ध की प्रणाली को अपनाया था। आलोचकों का कहना है कि मराठा सैन्य प्रणाली संगठित नहीं थी। सेना में श्रेणीकरण और सामंजस्य का अभाव था। अब्दाली को रूहेला तोपखाने का लाभ भी प्राप्त हुआ था।[2] इधर इब्राहीम के नेतृत्व में मराठों के तोपखाने ने प्रारम्भ में तो निर्णायक संघर्ष किया, किन्तु अश्वसेना उसका लाभ नहीं उठा सकी, फिर भाऊ साहब की मुख्य शक्ति उसकी अश्वसेना में विद्यमान थी। यदि अश्वरोहीयों को तोपखाने के समर्थन के लिए पीछे रखा जाता, तो भाऊ को अफगान सेना के पार्श्व पर आक्रमण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।[3] दमाजी गायकवाड़, विट्ठल शिवदेव आदि को इब्राहीम खाँ के पीछे रखा गया था, किन्तु उसके तोपखाने द्वारा पूर्ण सफलता प्राप्त करने से पूर्व ही सरदार आगे दौड़ पड़े, जिससे कमजोर तोपखानों का यथेष्ट स्थान रिक्त हो गया। यदि भाऊ के आदेशों का ठीक से पालन किया जाता, तो उसकी अश्व सेना को दुर्रानी वजीर के साथ

1- टी0एस0 शेजवाकर, पानीपत, 1761, पृ0 106.

2- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 2, पृ0 127.

3- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 179.

आक्रमण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । अतः सामरिक योजना की असफलता का पूरा उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से भाऊ साहब पर नहीं डाला जा सकता । यह तो भाऊ का दुर्भाग्य था कि उसके सेनापति उसके योजना को पूरी तरह समझने में असमर्थ रहे ।[1]

मराठा सेनानायक भाऊ की भूलें – काशीराम व कुछ मराठा इतिहासकारों ने भाऊ के उग्र व हठी स्वभाव को पराजय के लिए उत्तरदायी माना है । सचमुच में उसमें ये अवगुण विद्यमान थे, किन्तु सर देसाई के अनुसार उसके ये अवगुण राष्ट्रीयता के मौलिक इच्छा के परिणाम थे । काशीराम और मराठा वृत्तान्तकार ने पानीपत के युद्ध में हुई पराजय के तुरन्त पश्चात् लिखा, अतः उनका ऐसा लिखना स्वाभाविक था, किन्तु 'पुरन्दरे दफ्तर' के भाऊ के व्यक्तिगत पत्रों के अध्ययन से इस आरोप का खण्डन हो जाता है ।[2] साखाराम बापू ने धोधोपन्त को भाऊ के सम्बन्ध में लिखा है –"भाऊ इज़ नाइदर प्राउड नॉर आइज़िल लेड बाई एनी बाडी"[3] वह पेशवा परिवार से सम्बन्धित था । अतः अन्यों से अपने को कुछ ऊँचा समझना स्वाभाविक था । दीवान पद पर रहते हुए उसने आर्थिक मामलों व प्रशासनिक क्षेत्र में यथेष्ठ योग्यता का परिचय दिया । उसने प्रशासनिक कठोरपन के कारण सभी निम्नस्थ अधिकारी कांपते थे । इस कठोरपन का पानीपत के युद्ध में प्रभाव पड़ा, क्योंकि उसके आदेश का पालन स्वेच्छा से नहीं अपितु भय के कारण किया जाता था ।[4] जबकि सेनापति का यह आवश्यक गुण है कि उसके सैनिक आदर करें, जो भाऊ के मामलों में सम्भव न था ।

यद्यपि भाऊ पर लगाये गए अधिकांश अपराध खण्डनीय हैं, तथापि उसकी कुछ भूलें अक्षम्य बनीं –

1- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 186.

2- काशीराज (सर्वोत्तम) देहली क्रोनिकल, नूरुद्दीन, पृ0 36-37.

3- राजवाड़े, मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 260.

4- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ़ द मराठाज़, भाग 2, पृ0 287.

दत्ताजी सिंधिया का उदाहरण सामने होते हुए भी भाऊ ने कुंजपुरा की ओर प्रस्थान से पूर्व महिलाओं व असैनिकों को भरतपुर या दिल्ली भेजने की व्यवस्था नहीं की ।

दोनों पक्षों के अक्टूबर, 1760 ई0 के अन्त में एक दूसरे के सम्मुख होने पर भाऊ को तुरन्त अब्दाली पर आक्रमण कर देना चाहिए था । दो मास के समय को निरन्तर खोने के बाद अन्त में निराहार की समस्या से विवश होकर आक्रमण करने का असफल प्रयास किया ।[1]

भाऊ ने "भारत भारतीयों के लिए है और भारतीयों द्वारा शासन किया जाना चाहिए" आदर्श को घोषित किया । उनके इस आदर्श को उनके कुछ निकट के मित्रों के अतिरिक्त अन्य सरदार नहीं समझ सके । होल्कर की तो स्पष्ट धारणा थी कि महाराष्ट्र के बाहर मराठा लाभ के लिए लड़ रहे हैं, न कि किसी आदर्श के लिए ।[2]

विश्वासराव की मृत्यु के बाद भाऊ साहब का अधीर होकर शत्रु पक्ष में घुस जाना मराठा सेना के नैराश्य का कारण रहा ।[3]

पदाधिकारियों की अयोग्यता - विश्वनाथ के रजवाड़े ने पानीपत के युद्ध में पराजय के लिए मल्हार राव होल्कर व गोविन्द पंत बुन्देले को उत्तरदायी माना है । होल्कर नजीब खाँ के आक्रमण को रोकने में असफल रहा और भाऊ द्वारा धन की माँग करने पर समय पर देने में असफल रहा । पेशवा का होल्कर पर संदेह था, जो युद्ध के क्षेत्र में भाग जाने से और भी पुष्ट हो गया, किन्तु श्री सजवालकर का मत है कि होल्कर का मूल्यांकन किसी घटना विशेष से न किया जाकर सम्पूर्ण रूप से किया जाना चाहिए ।[4] होल्कर ने उत्तर व दक्षिण में मराठा संघ की

1- तारीखें मुजफ्फरी, पृ0 178·

2- सियार उल मुतखारीन, जिल्द 3, पृ0 65·

3- होल्कर, कैफियत, पृ0 23·

4- होल्कर, शाही इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 152·

महत्वपूर्ण सेवाएँ की । उन्हें नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार राजवाड़े ने गोविन्द पंत पर आरोप लगाते हुए कहा कि वह शुजाउद्दौला के साथ मैत्री करने में असफल रहा, दोआब में यातायात का पूर्ण प्रबन्ध न कर सका, धन का प्रबन्ध नहीं कर सका, उसने शुजाउद्दौला पर आक्रमण नहीं किया, अन्यथा शत्रु सेना की शक्ति बँट जाती और अन्त में उसने अब्दाली की पूर्ति - पंक्ति को काटने का प्रयास नहीं किया ।[1] वस्तुत: गोविन्द पन्त में न तो सैनिक योग्यता थी और न ही उसके पास साधन विद्यमान थे, जिसके आधार पर उसे उत्तरदायी ठहराया जा सके, अत: पानीपत में मराठों की पराजय के लिए किसी व्यक्ति विशेष को कारण नहीं माना जा सकता, यह तो व्यवस्था का दोष था ।[2]

मराठा सैन्य व्यवस्था की कमजोरियाँ - मराठा सैन्य व्यवस्था और कमजोरियों की शिकार थी -

पानीपत में भाऊ की विशाल सेना के लिए यथेष्ठ खाद्य व सैन्य सामग्री की व्यवस्था नहीं की गई । उसे एक दिन की सूचना पर रवाना होने का आदेश दिया गया था । भाऊ जब यमुना नदी पर पहुँचा, तो उसने नावों की व्यवस्था करने का प्रयास किया, जिसमें पूरा माह लग गया । भाऊ ने पेशवा से भी खाद्य सामग्री भेजने की अपील की, किन्तु पेशवा भी इसमें असमर्थ रहा, अत: पराजय यथंभावी थी ।[3]

मराठों की गुप्तचर व्यवस्था अत्यन्त निम्नकोटी की थी । इसी के परिणाम स्वरूप गोविन्दराव के शिविर पर अचानक हमला हो गया और उसे पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया गया और उसकी आपूर्ति पंक्ति को प्रतिबन्धित कर दिया गया ।[4]

1- ग्राण्ट डफ, हिस्ट्री आफ द मराठाज़, पृ0 289.

2- मिसकिन कृत तहमास्व खाँ के संस्मरण, पृ0 209.

3- भाऊ साहेबांची बखर, पृ0 81.

4- सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 224.

सदाशिव राव पेशवा विभिन्न राज्यों की सहायता और सहानुभूति पर निर्भर थे, किसी राज्य ने पानीपत के युद्ध के समय मराठों की सहायता नहीं की, क्योंकि मराठों की लूट व अत्याचार से सभी आतंकित थे और वे मराठों की पराजय को अच्छा समझते थे। यहाँ तक कि माधोसिंह और विजय सिंह ने अब्दाली को आमन्त्रित किया था।[1]

मराठों के राजनीतिक प्रयास वैयक्तिक थे। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत उद्भव प्रगति था। इस प्रयास में यदि हानि हुई, तो मात्र नेता व सामान्यजन की। सामान्यजन को तो केवल अस्थाई तौर पर हाथ धोना पड़ा।[2] परंपरागत युद्ध प्रणाली का परित्याग भी मराठों की पराजय का कारण माना जाता है कि उन्होंने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को नहीं अपनाया, किन्तु यह तो केवल दक्षिण के पठारी क्षेत्रों के लिए ही उपयुक्त थी। उत्तर भारत के मैदान में यह प्रणाली प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो सकती थी।[3]

अफगानों की स्थिति - अफगान लोग भारत के बाहर से आये थे। उनके लिए इस संघर्ष में विजय के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था, अत: वे अधिक निश्चयात्मक ढंग से लड़े।[4]

इस प्रकार भाऊ की भूलें, मराठा व्यवस्था के दोष, मराठा राज्य की विचार धारा, नवीन युद्ध प्रणाली का उपयोग, सेना का दोषपूर्ण संगठन, गुप्तचर व्यवस्था का अभाव, खाद्य सामग्री की अपूर्णता, अफगान लोगों का निश्चय और अब्दाली का अच्छा सेनानायकत्व मराठों की पराजय के मुख्य कारण रहे।[5]

1- रानाडे, राइज़ आफ़ द मराठा पावर, पृ0 310·

2- काशीराज, देहली क्रोनिकल, इमाद उस सहादत, जिल्द 2, पृ0 188·

3- वैण्डल, पृ0 83·

4- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 212·

5- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 21, पृ0 188·

पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम -

मराठा शक्ति का सर्वनाश- रजवाड़े का विचार है कि पानीपत के तृतीय युद्ध से मराठा शक्ति का सर्वनाश हो गया और इसके कारण भारत में मराठा साम्राज्य की नींव हिल गई । पानीपत में मराठा विपत्ति के परिणाम मित्रों और शत्रुओं से बहुत दिनों तक गुप्त नहीं रहे । भारत में मराठों का प्रभुत्व अब सुरक्षित नहीं रह गया था । जब तक मराठे अपने शासन को शक्ति द्वारा सशक्त नहीं कर लेते, उत्तरी भारत के शासक उनकी अधीनता स्वीकार करने वाले न थे, दिल्ली, आगरा, दोआब, बुन्देलखण्ड तथा मालवा में मराठा साम्राज्य था ।[1] यहाँ छोटे शासकों के विद्रोह से, स्थानीय सेनाओं में उपद्रव से तथा पहाड़ी जातियों के हलचल से मराठा सेनायें संकुचित हो गई । थोड़े समय बाद तो वे चंबल के दक्षिण में चली गई । मराठों को भारी-जन की क्षति का और धन का सामना करना पड़ा । पेशवा के प्रभुत्व का अन्त हो गया । मराठों की एकता विलीन हो गई । उसमें आपसी करण और संघर्ष तीव्र हो गया ।[2] सरदारों में स्वतंत्रता की प्रवृत्ति जाग्रत हो गई ।

सर देसाई का पृथक् दृष्टिकोण- इनके अनुसार पानीपत की विपत्ति - वास्तव में प्रकृति का प्रकोप था । इसमें धन और जन दोनों का ही नाश हुआ, किन्तु फिर भी इसका कोई निर्णायक राजनीतिक परिणाम न हुआ । यह कहना कि पानीपत की विपत्ति ने मराठों के प्रभुत्व का अन्त कर दिया, परिस्थिति को गलत समझना है ।[3] मेजर इन्वास बैल का तो यहाँ तक कहना है कि पानीपत का युद्ध मराठों के लिए अपूर्व विजय तथा गौरव का विषय था । उन्होंने "भारत भारतवासियों के लिये है" की भावना से प्रेरित होकर युद्ध किया था, जबकि दिल्ली,

---

1- सियार उल मुतखारीन, जिल्द 3, पृ0 66.

2- होल्करशाही इतिहासांची साधने, जिल्द 1, पृ0 156.

3- मथुरालाल शर्मा, पेशवाओं का इतिहास, पृ0 153.

अवध व दक्षिण के मुसलमान शासक इस युद्ध से अलग रहे तथा षड्यन्त्रों में व्यस्त रहे ।[1] यद्यपि मराठों की पराजय हुई तथापि अफगान वापस चले गएऔर फिर कभी उन्होंने भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का साहस न किया । इस विचारधारा के समर्थकों का कहना है कि इस घटना ने मराठा आकांक्षाओं को सर्वदा के लिए पद-दलित करने के स्थान पर नवीन बल प्रदान किया, जैसा कि भारतीय महाद्वीप पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के उनके प्रयत्नों से ज्ञात होता है ।[2]

इसके दूरस्थ परिणाम स्वरूप शासक जाती के दो नेताओं नाना फड़नवीस व महादाजी सिंधिया का उदय हुआ । उन्होंने मराठा सत्ता को पुन: प्राचीन वैभव तक पहुँचाने का प्रयत्न किया । पानीपत के कुछ दिन बाद ही मराठा सत्ता यथापूर्व समृद्ध होने लगी तथा 40 वर्षा तक उसका उत्थान जारी रहा । यह तो स्वीकार करना होगा कि मराठों को पानीपत के युद्ध से राजनीति तथा युद्ध का अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ तथा उनके राष्ट्रीय गर्व और भावुकता की वृद्धि हुयी ।[3] पानीपत की इस घटना के साथ पुरानी पीढ़ी का लोप हो गया और उसका स्थान नई पीढ़ी ने ग्रहण किया, जो राष्ट्र की सेवा के लिये समर्पित हो कई । महाराष्ट्र के लगभग प्रत्येक परिवार ने इस विपत्ति को वैयक्तिक समझा और इससे प्रत्येक प्राणी को प्रेरणा प्राप्त हुई । इस युद्ध ने मराठों पर लगाये जाने वाले आरोपों का भी खण्डन कर दिया कि वे लुटेरे थे और निहित स्वार्थ के लिए युद्ध करते थे ।[4] इस युद्ध से स्पष्ट हो गया कि मराठा "भारत भारतीयों के लिए है" के सिद्धान्त की रक्षा के लिए लड़ रहे थे । यह सब कुछ होने पर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस पराजय का मराठा पर सर्वथा अनुकूल प्रभाव नहीं

1- सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द 27, पृ0 260.

2- पुरन्दरे दफ्तर, जिल्द 1, पृ0 393.

3- तारीखे हुसेनशाही, पृ0 73.

4- काशीराज, पृ0 128.

पड़ा था । वास्तव में इससे उत्तर भारत में मराठों की शक्ति प्रतिबन्धित हो गई । मराठा संघ को गहन आघात लगा और मराठों की प्रभाव वृद्धि के लिए गए बाद के प्रयास सामूहिक न होकर वैयक्तिक थे ।[1]

ब्रिटिश सत्ता के प्रवेश को आसानी- पानीपत के कारण ब्रिटिश सत्ता को सुविधापूर्वक प्रवेश करने का बल प्राप्त हुआ । पानीपत की विपत्ति ने अंग्रेजों को उनके दुष्ट पड़ोसियों की दासता से मुक्त कर दिया । और उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया । वजीर गाजीउद्दीन की तुच्छ महत्वाकांक्षा और उसके उग्र स्वभाव से शहजादा अली जौहर को दिल्ली पलायन के लिए बाध्य होना पड़ा ।[2] वजीर के मुर्खतापूर्ण कार्यों के फलस्वरूप अब्दाली का भारत पर आक्रमण हुआ । इसको उलझाने वाले संघर्ष के कारण वजीर और उसके मराठा मित्रों के लिए यह असम्भव हो गया कि वे उस राजनीतिक क्रान्ति की ओर ध्यान दे सकें जो प्लासी के युद्ध और इसके परिणामों द्वारा बंगाल में हो गयी । इस प्रकार अंग्रेज व्यापारी बंगाल और बिहार के राजनिर्माता का स्थान प्राप्त करने में सफल हो गये ।[3] भारतीय परस्पर युद्ध में संलग्न रहे, अत: वे उन घटनाओं का मूल्यांकन करने में असमर्थ रहे जो बंगाल और कर्नाटक में घटित हो रहे थे । पानीपत के प्रहार के कारण पेशवा का देहान्त हो गया तथा थोड़े से वर्षों के लिए क्षितिज पर अंग्रेज का कोई प्रतिस्पर्धी न रहा । वास्तव में पानीपत की इस घटना ने भारत में प्रभुता के लिए होनेवाले संघर्ष में एक नये भागीदार को प्रवेश दे दिया, जो यथार्थ में इस घटना का प्रत्यक्ष परिणाम है और इसी कारण यह भारत के इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना समझी जाती है ।[4]

हिन्दुस्तान में मराठों की शक्ति का प्रभाव- इस पराजय के परिणामस्वरूप

1- सर देसाई, मराठों का नवीन इतिहास, भाग 2, पृ0 290·

2- तारीखे मुजफ्फरी, पृ0 189·

3- भाऊ साहिबांची बखर, पृ0 112·

4- परसनिस, ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द 1, पृ0 14·

मराठों का प्रमुख शत्रु अब्दाली भीषण संहार करके बिना रोक-टोक तथा दण्डित हुए अपने घर वापस लौट सका ।[1] इसी प्रकार दूसरा शत्रु नजीब भी कुचला नहीं जा सका, अपितु 10 वर्ष तक दिल्ली का तानाशाह बना रहा ।[2] दत्ताजी की योजनाएँ अपूर्ण ही रह गईं तथा इलाहाबाद, बंगाल और बिहार मराठा साम्राज्य में नहीं मिलाये जा सके । इसी पराजय के कारण न तो अवध उसका करदायी राज्य बन सका और नही वे बंगाल, बिहार पर पुन: चौथ वसूल करने की माँग को ही प्रस्तुत करने का साहस कर सके ।[3]

पंजाब का मराठों का हाथ से निकल जाना- इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि पंजाब सदैव के लिए मराठों के हाँ से निकल गया, क्योंकि "जो जाति सिन्धु नदी पर दृढ़ता के साथ पहरा नहीं दे सकती थी, वह सीमा प्रान्त शासन करने का दावा कैसे कर सकती थी" । इसपर कालान्तर में सिक्खों का अधिकार हो गया ।[4]

दिल्ली में मराठा प्रभाव की क्षति- मराठों की पराजय के परिणाम स्वरूप दिल्ली का मुगल साम्राज्य भी, जिसके मराठा संरक्षक थे, अत्यन्त लघु हो गया । 1722 ई0 में जब उन्होंने दिल्ली पर वापस अधिकार किया तो इसके अधीन केवल मेवात और हरियाणा ही शेष थे ।[5] मराठों ने अपनी प्रशंसात्मक महत्वाकांक्षाओं के लिए राजपूताना और बुन्देलखण्ड में संघर्ष किए । सरकार लिखते हैं कि "इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों के हृदय में सदा के लिए मराठों के लिए घृणा घर कर गई ।[6]

1- नूरूद्दीन, पृ0 52.

2- हरीराम गुप्ता, मराठा एण्ड पानीपत, पृ0 392.

3- दामोदर तामसकर, मराठों का उत्थान और पतन, पृ0 317.

4- देहली क्रोनिकल, इमाद उस सहादत, पृ0 182.

5- राजवाड़े, मराठांच्या इतिहासांची साधने, जिल्द 21, पृ0 210.

6- पुरन्दरे दफ़्तर, जिल्द 1, पृ0 387.

मराठों की शक्ति का अविश्वास- इस पराजय का एक परिणाम यह भी हुआ कि उत्तर में भारतीय शासकों का संकट के समय मराठा शक्ति पर निर्भर रहने का विश्वास पूर्णतः हिल गया। अब इन शासकों ने स्वयं के संकट अथवा मराठा संकट के समय मराठों पर निर्भर रहना या मराठों की रक्षार्थ उन्हें सहायता देना उचित नहीं समझा।[1] पानीपत के निर्णायक युद्ध में इन शासकों के समक्ष मराठा शक्ति की वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया। श्री सरकार के शब्दों में, "1761 ई0 में वे अपनी ही रक्षा नहीं कर सके तो फिर औरों की रक्षा क्या कर सकते थे"।[2]

रघुनाथराव के महत्व में वृद्धि- पेशवा की जल्दी मृत्यु तथा पानीपत की घोर विपत्ति के कारण मराठा इतिहास में सबसे अधिक कलंकित और निन्दनीय पात्र रघुनाथराव का भी कुत्सित महत्वाकांक्षाओं के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया।[3]

सिक्खों का उत्थान- इस युद्ध का एक और अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि इसने पंजाब में सिक्खों के उत्थान में सहयोग प्रदान किया। पंजाब मार्ग से आगमन का सिक्खों ने इस प्रकार प्रतिरोध किया कि वह धीरे-धीरे अपने उन समस्त प्रदेशों को खो बैठा, जिन्हें उसने 90 वर्षों के संघर्ष के पश्चात् प्राप्त किया था।[4]

मराठों के शत्रुओं का अभ्युदय- पानीपत में मराठा पराजय की परिणाम, सेतु माधवराव के शब्दों में, प्रथम तो यह हुआ कि "इसने समस्त मराठा प्रदेश में गड़बड़ी पैदा करने का अवसर प्रदान किया"।[5] द्वितीय उसने दक्षिण में मराठों के शत्रुओं का अभ्युदय किया जैसे निजाम, हैदरअली, अंग्रेज।

1- तारीखे हुसैनशाही, पृ0 57.

2- सर यदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 206.

3- सर देसाई, न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज़, भाग 2, पृ0 290.

4- एम0ए0मकॉलिफ, सिख रिलीजन, भाग 5, पृ0 28.

5- आर0वी0 नादकर्णी, मराठा साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ0 184.

पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु- सरकार के अनुसार तृतीय पेशवा की मृत्यु भी पानीपत की पराजय के कारण ही हुई ।[1] सर देसाई भी पेशवा की मृत्यु को पानीपत का परिणाम मानते हैं, किन्तु शोजवाल्कर इस मत से पूर्णत: असहमत है । उनका कहना है कि पेशवा का स्वास्थ्य तो पहले से ही गिर रहा था ।[2] इसके अतिरिक्त पारिवारिक झगड़ों तथा अति-भोगवादी जीवन ने उसे मृत्यु की ओर धकेला । शजवाल्कर तो यहाँ तक लिखते हैं कि, "यदि मराठे पानीपत में विजयी होते भी तब भी पेशवा अधिक दिनों तक नहीं रहता" ।[3]

इस प्रकार पानीपत के तृतीय युद्ध ने मुगलों व मराठों दोनों की शक्ति को ह्रास पहुँचाया, जिससे उत्पन्न हुए रिक्त स्थान की पूर्ति से अंग्रेजों का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की ।

1- सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ0 210.

2- सर देसाई, मराठा रियासत, (मध्य विभाग), पृ0 317.

3- एस0आर0 शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 620.

उपसंहार

सत्रहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य अपनी शक्ति, वैभव एवं प्रतिष्ठा के चरमोत्कर्ष पर था। साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से जब मुगल दक्षिण की ओर अपने कदम बढ़ा रहे थे उसी समय महाराष्ट्र में शिवाजी के नेतृत्व में मराठे एक निर्णायक शक्ति के रूप में बराबर बढ़ते जा रहे थे। दक्षिण में मुगलों और मराठों दोनों की शक्ति का विस्तार बहमनी साम्राज्य के पतन के बाद उत्पन्न हुए मुस्लिम राज्यों (बीजापुर, गोलकुण्डा, खान देश और अहमदनगर) के अस्तित्व की कीमत पर होना था। और यहीं से मुगल - मराठा सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ। आरंभ में यह सम्बन्ध मराठों की ओर से मुगलों के प्रति सहयोगात्मक था किन्तु बाद में ज्यों-ज्यों दोनों के बीच प्रतिद्वन्दिता बढ़ती गई त्यों-त्यों मराठों का रूख आक्रामक होता गया, और 1674 में शिवाजी सारी बाधाओं को पार करके एक स्वतंत्र सार्व भौम मराठा राज्य की स्थापना करने में भी सफल हो गया। इस बीच मराठों को दबाने के लिए मुगलों की ओर से किए गये सभी प्रयास निष्फल रहे। किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के बाद मराठों की स्वच्छन्दता और विस्तार को लगाम देने वाली शक्ति भी समाप्त हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि मराठा शक्ति पुन: संगठित होकर दक्षिण ही नहीं उत्तर भारत के लिए भी नियामक बन बैठे। मुगल सम्राट् मराठों का कठपुतली मात्र था। अपनी इन उपलब्धियों ने मराठों को अत्यधिक दम्भी बना दिया। वे अपने आगे मुगलों ही नहीं अपितु जाट, राजपूत आदि उत्तर भारत की अन्य शक्तिओं को तुक्ष समझते थे। और यहां तक कि 1760-61 में उत्तर पश्चिम सीमा की ओर से हुए अब्दाली के आक्रमण के समय उसका प्रतिरोध करने वाले मराठे ही थे न कि मुगल अथवा जाट।

सहायक ग्रन्थ-सूची

(क) मूल ग्रन्थ

फारसी -

अलवी, अब्दुल करीम	- तारीखे अहमद, मुस्तफी प्रेस, कानपुर, 1849.
अली, अब्राहिम खाँन	- तारीखे जनको भाऊ, वाराणसी, 1787.
अंसारी, मुहम्मद अलीखाँन	- तारीखे मुजफ्फरी, 1812.
आजाद, गुलाम अलीखाँन,	- खजाने अमीर, 1763.
	- इमाद-उल-मुल्क - गजउद्दीन, अब्दुल मंसूर खाँन, सफ्दरजंग आलमगीर सानी, शाहआलम,
आजाद, मुहम्मद हूसैन	नजीरस्ताने फारस, लाहौर, 1922.
अवाली, नाजीउद्दौला, शाह दुर्रानी	- काशीराज राज लाईब्रेरी, रामपुर
अवाली नाजीउद्दौला	- बिहारी लाल, पाण्डु० नं० 90, सरकार संग्रह, कलकत्ता, अनुवाद यदुनाथ सरकार, इस्लामि कल्चर
अखबारात,	- सरकार संग्रह राष्ट्रीय संग्रहालय, कलकत्ता
अखबाराते, दरबारी मौला	- पाण्डु० नं० 36, सरकार संग्रह, राष्ट्रीय संग्रहालय, कलकत्ता
अखबाराते, मुहम्मद	- मोहब्बत खाँन बी०एम० नं०
आईन-ए-अकबरी	- अबुलफजल, ब्लोचमेन और जैरेट कृत 3 खण्ड का अंग्रेजी अनुवाद । कलकत्ता 1948, 1949; हिन्दी अनुवाद हरिवंश राय शर्मा, दो खण्ड -इलाहाबाद, 1966.
अफसानये शाहान	- शेख मोहम्मद कबीर, एस०बी०पी० निगम कृत हिन्दी अनुवाद ।
अबीबुस्सियर	- ख्वांदमीर, गयासुद्दीन बिन हमासुद्दीन द्वारा संपादित, भाग 4.

बादशाहनामा	- मिर्जा अमीनाई काजवीनी
बाबरनामा	- बाबर रा०पां०वि०प्र० पा० सं० 2859
दौरराम	- मुंशी चितमन कायस्थ, नं० 202, अब्दुलसलाम, अलीगढ़
इमाद-उल-मुल्क	- ताजकीरे इमाद उल मुल्क - 1754 से 1758 की घटनाएँ हैं ।
फतुहाते आरमगीरी	- ईश्वरदास नागर, ब्रिटिश म्यूजियम नं० 23, 884.
हरचरन दास	- छहरगुलजारे शुजाई, 1784 ए०डी०
हदीकतुल आलम	- मीर आलम कृत, लिथो, हैदराबाद संस्करण
काशीराज	- अवाले जंगे भाऊ वा अहमदशाह दुर्रानी, जेम्ब ब्राउन का अंग्रेजी अनुवाद, 1791.
	- सर यदुनाथ सरकार का अनुवाद - हिस्टारिकल क्वाटर्ली, जून 1934.
मुहम्मद वक्श आशोब	- तारीखे ख्वाजेनादीर शाह वा हिन्दुस्तान, दो भाग ।
मराशीलात-ए	- नजीबुद्दौला वा हफीज रहमत खाँन, पाण्डु० नं० 203, अब्दुल सलाम, अलीगढ़
मदन-ए-अखबारे-अहमदी	- अहमद बिन वहवल निगम कृत हिन्दी अनुवाद
मलफुजात-ए-तैमूरी	- इलियट कृत अंग्रेजी अनुवाद
मासिर-ए-रहीमी	- मुल्ला अहमद बाकी नहाबंदी, मुल्ला हिदायत हुसैन द्वारा संपादित, एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, 1924.
मासिर उल उमरा	- नवाब शम्सुद्दौला शाहनवाज खान, मौलाना, अब्दुर्रहीम और मौलवी मिर्जा अस्करी द्वारा संपादित, भाग2, ऐशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल कलकत्ता, 1890.

मिरआत ए सिकंदरी - सिकंदर बिन मोहम्मद, एस0सी0 मिश्रा द्वारा संपादित, बड़ौदा 1961.

मुन्तखब उल लुबाब -मो0 हाशिम खाफी खाँ, मौलवी कबीरुद्दीन द्वारा संपादित, भाग 1, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1869.

मुन्तखबुल-लुबाब - यूसुफ मुहम्मद खाँ कृत, आन्ध्रा

मआसिर उल उमरा - शाहनवाज खाँ कृत, बिब्लियोथिका इंडिका

मिराते अहमदी - मुहम्मदअली खाँ कृत, बिब्लियोथिका इंडिका

नुसखा-ए-दिलकुशा - भीमसेन इंडिया आफिस नं0 94.

नफायसुल मआसिर - अलाउद्दौला कजवीनी, रिजवी कृत हिन्दी अनुवाद

रोजनामचा, - मिर्जामुहम्मद, यदुनाथ सरकार संग्रह, खुदाबख्श संग्रह

सिरूल-मुताखरीन - गुलाम हुसैन कृत, लिथो, लखनऊ संस्करण ।

तबारीख-ए-अहमद - गुरुसहाय अब्दुलसलाम, अलीगढ

तारीखे अहमदशाही - रिव्यू0 खण्ड 3, ब्रिटिश म्युजियम, 1941

तारीखे आलमगीर सानी - पाण्डु0, सरकार संग्रह, कलकत्ता

तारीखे फर्रुखाबाद - वलीउल्लाह पाण्डु0 189, अब्दुलसलाम, अलीगढ

तारीखे इमादुल मुल्क - अब्दुल कादिर, पाण्डु0 176, खुदाबख्श लाइब्रेरी, पटना

तारीखे रशीदी - मिर्जा हैदर, इलियस एंड रास कृत अंग्रेजी अनुवाद

तारीखे फरिश्ता - अबुलकासिम हिंदूशाह फरिश्ता, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ 1322, हि0 1867 ई0

तारीखे खानजहानी - ख्वाजा नियामतुल्ला, डा0 एस0एम0 इमामुद्दीन द्वारा संपादित, भाग 1, ढाका, 1960.

तारीखे दाऊदी - अब्दुल्ला शेख अब्दुर्रशीद द्वारा संपादित, अलीगढ़, 1954

तारीखे शाही - अहमद यादगार - हिदायत हुसैन द्वारा संपादित, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता 1939

तारीखे अल्फी - मुल्ला अहमद तथा आसफ खान आदि, रिजवी कृत हिन्दी अनुवाद

तारीखे सिंध - मीर मासूम, डा० यू०एम० उददपोता द्वारा संपादित, पूना, 1937.

तारीख-ए-सलातीन-अफगान - अहमद यादगार, (नादिरशाह और अहमदशाह के आक्रमणों का अच्छा वर्णन है) 1835.

तारीखे आलम आराये - मुंशी सिकंदरा, रा०प्रा०वि०प्र० पा० सं० 2908 तथा रा०सं०पा० सं० 894, 895, 896.

तारीखे मुजफ्फरशाही - ब्रिटिश म्यूजियम पां०ड० सं० 26279.

तजकिरात-ए-सलातीन-चगताई - मोहम्मद हादी, रा०प्रा० वि०प्र० पा०सं० 2888.

तजकिरात उल वाकेआत - जहूर आफ्ताबची, लंदन 1832, कलकत्ता 1904, मूल प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लंदन, रा०प्रा०वि०प्र० पा०सं० 2887, अनुवाद स्टीवर्ट

तुजुक-ए-जहांगीरी - जहांगीर, सैयद अहमद द्वारा संपादित, अलीगढ 1864. हिन्दी अनुवाद- ब्रजरत्न दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि०सं० 2014

तवारीखे दौलते शेरशाही - हसन अली खान, निगम कृत हिन्दी अनुवाद

तारीखे जहांकुशा-ए-नादरी - मिर्जा मुहम्मद मेहदी कृत, लिथो, तेहरान संस्करण।

वक्काए भरतपुर - पं० शंकरनाथ नादिर 1833 में लिखित, पंजाब विश्वविद्यालय व लाइब्रेरी, पं० 179

वाकेआते मुश्ताकी - शेख रिजकुल्लाह मुश्ताकी, रिजवी कृत हिन्दी अनुवाद

विदेशी यात्रियों एवं योरोपीय भाषाओं के ग्रन्थ -

ए०जे०ए० ड्यूबोई,	- हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरोमनीज, आक्सफोर्ड, 1894
ए० आई० चिचरोव	- इण्डिया इकोनामिक डेवलप्मेंट इन द सिक्सटिन्थ टू एट्टीन्थ सेंचुरी, मास्को
एडवर्ड	- ए वायज टू ईस्ट इण्डिया, लन्दन, 1977
डेलावेले,	- ट्रेवेल्स इन इण्डिया (1623-24), दो खण्ड, हैकलाट सोसायटी, लन्दन, 1892.
फास्टर एवं फोसेट	- इंगलिश, फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1618-1669
फिंचे	- विलियम फास्टर की प्रविष्टियाँ
फ्रांसिस्को पेलेसार्ट	- द रिमास्टेन्ट, अंग्रेजी अनुवाद - जहाँगीर्स इण्डिया, मोरलैण्ड व जील, कैम्ब्रीज, 1925.
फ्रांकोइस बर्नियर	- ट्रेवेल्स इन द मुगल इम्पायर (1656-1668), संपा० ए० कांस्टेबिल, द्वितीय संस्करण, बी०ए० स्मिथ, लन्दन, 1916.
फ्रायर	- न्यू एकाउंट आफ द इस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया, (संपा० कुक), हैकलाट सोसायटी, लन्दन, 1909.
जार्ज फास्टर,	- ए जर्नी फ्राम बंगाल टू इंगलैण्ड, दो खण्ड, लन्दन, 1798
जी० सी० मुण्डी	- पेन एण्ड पेंसिल स्केचेज बिंग द जर्नल आफ ए टूर इन इण्डिया, दो खण्ड
जे० ओविंगटन	- ए वोसेज टू सूरत इन द इयर 1686, (संपा० रालिंसन), आक्सफोर्ड, 1929
जे० बी० ट्रेवर्नियर	- ट्रेवेल्स आफ जे०बी० ट्रेवर्नियर, (अनु० बी० बाल), दो खण्ड, लन्दन, 1886 .
जान मार्शल	- जान मार्शल इन इण्डिया, नोट्स एण्ड आब्जरवेशंस इन बंगाल, (1668-1672), संपा० शफात अहमद खाँ, कैम्ब्रज विश्वविद्यालय, लन्दन, 1927.

मनुची, – स्टोरिया डो मोगोट {1553-1708}, इटालियन, अंग्रेजी अनुवाद – विलियम इर्विन, खण्ड 1-4 तक, लन्दन, 1907-1908.

पीटर मुण्डी, ट्रेवेल्स – ट्रेवेल्स आफ, 1608-1667, खण्ड दो, {सं0 टेम्पल एवं एन्स्टी}, हाकलाट सोसायटी, लन्दन, 1914.

रेगनाल्डहर्बर – नैरेटिव आफ् ए जर्नी टू द आवर प्राविंसेज आफ इंडिया, तीन खण्ड.

रेनाल – ए फिलासीफिकल एण्ड पालिटिकल हिस्ट्री आफ् द सेटिलमेंट्स एण्ड ट्रेज आफ् यूरोपियन्स इन द ईस्ट एण्ड वेस्ट इंडीज़, अनु0 जे0 जस्टे मण्ड, खण्ड 1, एडिनबर्ग, 1776.

थामस बाओरी – ए जागराफिकल एकाउंट्स आफ् द कंट्रीज, राउण्ड द वे आफ बंगाल, 1669-79, सम्पा0 रिचर्ड टेम्पल, हाकलाट सोसायटी, 1905.

थामस कोरियाट – द अर्ली ट्रेवल्स इन इण्डिया, {सम्पा0 विलियम फास्टर}, लन्दन, 1905.

विलियम फास्टर – द अर्ली ट्रेवल्स इन इंडिया {सम्पादित}, लन्दन, 1921.

{ख} आधुनिक ग्रंथ

हिन्दी ग्रंथ –

भार्गव, वी0एस0 – राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, जयपुर 1971

भटनागर, वीरेन्द्र स्वरूप – सवाई जयसिंह, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1984.

चन्द्रावत, डॉ० प्रकाशचन्द्र - महाराज सूरजमल और उनका युग, जायसवाल एजेंसीज, दहतोरा, आगरा, 1982.

दिवाकर, वी० एम० - राजस्थान का इतिहास, अजमेर, 1972.

ठाकुर, देसराज - जाट इतिहास, क्रान्ति प्रेस, कान्ति, 1938; मारवाड़ का जाट इतिहास, नागौर, 1954.

गुप्त, डॉ० भगवानदास - महाराज छत्रसाल, आगरा, 1958.

गोलवलकर, एम० एस० - श्री गुरूजी समग्र दर्शन, भाग 6, नागपुर, 1964.

गौड़, राजेन्द्र सिंह - दक्षिण के देशरत्न, इलाहाबाद, 1963.

हार्डिकर, श्रीनिवास बालाजी - मराठा राज्य की स्थाना अथवा छत्रपति शिवाजी पराक्रमी पेशवा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979

जोशी, तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री - राजवाड़े लेख संग्रह, आगरा, 1964

जोशी, श्रीपाद - वीर शिवाजी, होशियारपुर, 1961.

किनकैड, सी० ए० - हिन्दी अनुवाद - विद्रोही महावीर, दिल्ली, 1965.

कुलकर्णी, म० तु० - राष्ट्रगुरू समर्थ जीवन दर्शन, दिल्ली, 1963.

केलकर, न० चि० - मराठे और अंग्रेज, इलाहाबाद, 1963.

मैनी, डॉ० धर्मपाल - सन्तों के धार्मिक विश्वास (शोध ग्रन्थ), मालेर, कोटला, 1967.

मित्तल, सतीशचन्द्र - मराठा शक्ति का उदय, सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977

मित्तल, एस० सी० - (हिन्दी लेख) शिवाजी का राज्याभिषेक, छत्रपति शिवाजी कारोनेशन ट्री-सेंचुरी वाल्यूम, नई दिल्ली, 1974

नाहर, डॉ० रतिभानु सिंह - भक्ति आन्दोलन का अध्ययन (शोध-ग्रन्थ), इलाहाबाद

पांगारकर, लक्ष्मण रामचन्द्र - श्री तुकाराम चरित्र, गोरखपुर, 1966.

परिहार, जी० आर० - मराठा मारवाड़ सम्बन्ध, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1984.

राणावत, मनोहर सिंह - भरतपुर महाराजा जवाहर सिंह जाट, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1973.

शर्मा, डॉ0 गोपीचन्द - राजस्थान का इतिहास

शुक्ल, डॉ0 प्रेम नारायण - संत साहित्य (शोध ग्रन्थ), कानपुर, 1965.

सरदेसाई, जी, एस0 - मराठों का नवीन इतिहास, भाग 3.

- राजा शिवाजी, आगरा, 1962.

सहस्त्रबुद्धे, प्र0 ग0 - छत्रपति शिवाजी, 2 भाग.

सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर - श्री छत्रपति शिवाजी महाराज की राजनीति, अर्जुन 2, शिवाजी अंक, सितम्बर, 1924.

सावरकर, वी0 डी0 - हिन्दूपद पादशाही, दिल्ली, 1964.

सरकार, यदुनाथ - शिवाजी का राजवंश, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1973.

श्रीवास्तव, आर्शीबादीलाल - अवध के प्रथम दो नवाब, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, प्रा0 लि0, आगरा, 1957.

सिंह, नटवर - महाराजा सूरजमल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.

शरण, परमात्मा - मुगलों का प्रान्तीय शासन, लखनऊ, 1990.

सरकार, यदुनाथ - मुगल साम्राज्य का पतन, शिवलाल एण्ड कं0, आगरा, 1964

शर्मा, मथुरालाल - पेशवाओं का इतिहास, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर, 1978

शर्मा, यू0 एन0 - जाटों का नवीन इतिहास, जयपुर, 1970.

सिंह, गंगा - यदुवंश, खण्ड 1, भरतपुर, 1967.

सतीशचन्द्र - उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1974.

तामसकर, श्री गोपाल दामोदर - मराठों का उत्थान और पतन, सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर, 1930.

बोरा, डॉ0 राजमल - भूषण और उनका साहित्य, आगरा, 1968.

भूषण - भूषण ग्रन्थावली ।

मराठी ग्रन्थ -

अत्रे, मुरलीधर मल्हार - "मल्हार राव होलकर-सुभेदार" (नवीन किताब खान, पुणें)

अठावले, रावजी हरी - आंग्रे घराण्याचा इतिहास (रावजी हरी आठवले, अलीबाग)

बेहरे, नारायण केशव - "पहिले बाजीराव पेशवे" (मंगश नारायण कुलकर्णी - भारत-गौरव-ग्रंथमाला)

भागवत, राजाराम रामकृष्ण- राठ्यांविषयीं चार उद्गार व व्याख्यानें, (निर्णय सागर प्रेस, मुंबई),

भावे, विनायक लक्ष्मण - महाराष्ट्र धर्म (रा0 रा0 भागवत, शके 1817)

भावे, विनायक लक्ष्मण - रूमाल, 1 व 2, (मराठी दफ्तर), (विनायक लक्ष्मण भावे ठाणें)

केलकर, नरसिंह चिंतामण - "इतिहासविहार" (काशीनाथ नरसिंह केलकर, पुणे)

खरे, वासुदेव वामन - नाना फडणीस (यशवन्त वासुदेव खरे, मिरज), ऐतिहासिक लेख संग्रह (भा० 1 से 2), (यशवन्त वासुदेव खरे, मिरज)

नातू, विष्णू रघुनाथ - महादजी शिंदे (विष्णू रघुनाथ नातू)

पारसनीस, द0 बा0 - ब्रह्मेंद्र स्वामी धावडशीकर यांचे चरित्र व पत्र व्यवहार (काव्येतिहास संग्रह)

राजवाड़े, विश्वनाथ काशीनाथ- मराठ्यांच्या इतिहासांची साधनें, भग 1 से 22, (विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े)

- ऐतिहासिक प्रस्तावना, (भारत इतिहास संशोधक मंडल पुणें)

- संकीर्ण लेख संग्रह (विष्णू गोविंद वीजापुरकर, पुणे)

सरदेसाई, गोविंद सखाराम - मुसलमानी रियासत, भाग 1 व 2, (दामोदर सांवलाराम आणि मंडली, 1910)
- मराठी रियासत (पूर्वार्ध) (दामोदर सांवलाराम आणि मंडली, 1915)
- मराठी रियासत (मध्य विभाग 1) (गणेश महादेव आणि मंडली, 1925)
- मराठी रियासत (मध्य विभाग 2) (दामोदर सांवलाराम आणि मंडली, 1921)
- मराठी रियासत (मध्य विभाग 3) (गणेश महादेव आणि मंडली, 1922)

शिंदे, कर्नल नाना साहेब गणपतराव - मराठ्यांच्या प्रसिद्ध लढाया (कर्नल नाना साहेब शिंदे, पुणे)

अंग्रेजी ग्रंथ -

आर्विन, एस० जी० - द फाल आफ द मुगल इम्पायर, लंदन, 1912.

अल, एम० अतहर - द मुगल नोबेलटी अण्डर औरंगजेब, दिल्ली, 1971

ऐक्वथ, एच० ए० - बैलेंस आफ द मराठाज़, लांगमेन्स ग्रीन एण्ड कं०, 1894.

आप्टे, बी० के० - द मराठा डिफेन्स आफ़ वार बुलेटिन डक्कन कालेज रिसर्च इंस्टीच्यूट, नं० 1-2, 1958.

एट्किंसन, एडविन टी० - एन० डब्लू, गजेटियर फर्रुखाबाद गजेटियर - 150-169, बरेली गजेटियर, पृ० 656-67.

बालकृष्ण, - शिवाजी द ग्रेट, पूना, 1952.

बसु, मेजर बी० डी० - वार विद द मराठाज़, बाम्बे, 1938.

बेवरी, एच० - द कंप्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, सिविल, मिलिट्री एण्ड सोशल, खण्ड 2, लन्दन.

बेनी प्रसाद - हिस्ट्री आफ़ जहांगीर, लन्दन, 1930.

ब्रिग्स जोन,	- नाना फड़नीस के संस्मरण, खण्ड 4, नं0 3.
चटर्जी, एल0 एन0	- मीरमासिम, इलाहाबाद, 1935
डफ, ग्राण्ड	- हिस्ट्री आफ द मराठाज़, बम्बई, 1826.
डिघे, जी0 वी0	- बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेंसन, बम्बई, 1944.
द्विवेदी, प्रो0 गिरीश चन्द्र	- " द जाट्स ", आरनाल्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1989.
इलियट एण्ड डाउसन	- हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5 व 7 व 8.
एलिफिस्टन	- हिस्ट्री आफ इंडिया, लंदन, 1911.
फेरियर, जे0 वी0	- हिस्ट्री आफ अफगान्स, लंदन, 1858.
फारेस्ट,	- सलेक्शन्स अफ्राम द स्टेट पेपर्स, मराठा सीरीज़
घोषाल, आर0 पी0	- मुगल किंगशिप एण्ड नोवेलटी, इलाहाबाद, 1934.
गुप्ता, हरीराम	- स्टडीज़ इन द मुगल हिस्ट्री, हिस्ट्री आफ द पंजाब, लाहौर, 1944.
गंडा सिंह	- अहमद शाह दुर्रानी, फादर आफ माडर्न अफगानिस्तान, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1959.
हबीब, इर्फान	- द एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इंडिया, अलीगढ़, 1963.
हुसैन, यूसुफ	- द फर्स्ट निज़ाम, बम्बई, 1963.
इर्विन, सर विलियम	- लेटर मुगल्स, भाग 2, कलकत्ता, 1922.
	- द आरमी आफ द इंडियन मुगल्स, लंदन, 1903.
करक, डी0 एफ0	- शिवाजी, बम्बई, 1969.
किनकेड, सी0ए0 एण्ड डी0बी0 पारसनीस	- हिस्ट्री आफ द मराठा पिपुल, भाग 1 से 4; दिल्ली, 1968.
लेनपूल, स्टेनले	- मेडिवल इंडिया अंडर मोहम्डन रूल, लंदल, 1929.
लोकाक एण्ड एन0 एस0 केलुस्कर	- लाइफ आफ शिवाजी, बम्बई, 1921.
मकुलिफ, एम0 ए0	- सिक्ख रिलिज़न, भाग 1 से 5 तक, बम्बई, 1909.
मजुमदार, आर0 सी0 संपादक	- द डेलही सल्तनत, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इंडियन पिपुल, भाग 6, बम्बई, 1952.
मोरलैण्ड, डब्ल्यू0 एच0	- फ्राम अकबर टू औरंगजेब, लन्दन, 1923.

पाण्डेय, ए0 बी0 – लेटर मेडुवल इण्डिया, इलाहाबाद, 1963.

रानाडे, महादेव गोविन्द – राइज आफ द मराठा पावर, दिल्ली, 1961.

राविल्सान – शिवाजी, द मराठा, लंदन, 1913.

राम प्रसाद त्रिपाठी – सम ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, 1959.

सर देसाई, जी0 एस0 – मेन करेन्ट्स आफ द मराठाज, भाग 1 से 3, कलकत्ता, 1930

सरकार, जे0 एन0 – शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, कलकत्ता, 1928.

– हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग 1 से 5, कलकत्ता, 1924

– हाउस आफ शिवाजी, कलकत्ता, 1940.

– मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, कलकत्ता, 1935.

– फाल आफ द मुगल इम्पायर, भाग 1 व 2, कलकत्ता, 1932.

– हिस्ट्र आफ जैपुर, कलकत्ता, 1937.

स्काट, जान्थन – हिस्ट्री आफ दक्कन, पूना, 1942.

सेन, एस0 एन0 – एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ द मराठाज, कलकत्ता, 1928.

सिंह, डा0 रघुवीर – मालवा इन ट्रांजिसन, उज्जैन, 1936.

सिन्हा, एच0 एन0 – राइज आफ द पेशवाज, इलाहाबाद, 1931.

श्रीवास्तव, ए0एल0 – फर्स्ट टू नवाब्स आफ अवध, दिल्ली, 1936.

– शुजाउद्दौला, खण्ड 1, 1961.

शर्मा, एस0 आर0 – द फाउंडिंग्स आफ मराठा फ्रीडम, बाम्बे, 1964.

सक्सेना, बी0पी0 – हिस्ट्री आफ शाहजहाँ आफ देहली, इलाहाबाद, 1938.

सरकार जे0 एन0 – इण्डिया आफ औरंगजेब, सन्याल एण्ड कं0, 1901.

रोजवलकर, टी0 एस0 – पानीपत, 1761, पूना, 1946.

वैद्य, सी0 वी0 – शिवाजी द फाउण्डर आफ द मराठा स्वराज्य, बी0आई0एस0 मंडल पुरस्कृत ग्रंथमाला, सं0 26.

जेड0 फारूकी, एम0 – औरंगजेब एण्ड हिज टाइम, बम्बई, 1935.

उर्दू ग्रंथ -

अहमद, बशीरूद्दीन - वाकियात दारूल हुकूमत - दिल्ली, 3 खण्ड, 1919

देहलवी, बशीरूद्दीन अहमद - क्यू वाकियात-ए-दारूस-सल्तनते - देलही

हुसैन, आज़ाद मुहम्मद - आबे हैयात, सरफ्रान प्रेस, लखनऊ

मुंशी, गोकुल प्रसाद - मिरातुल सलातिन (उर्दू अनुवाद सियर-उल-मुताखिरीन), 3 खण्ड, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ

...